मध्य-प्रदेश और बरार का इतिहास

लेखक

श्रीयुत योगेन्द्रनाथ शील

अनुवादक

श्रीयुत देवीदत्त शुक्ल

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२२

प्रथम बार] [मूल्य १॥।)

Published by
Apurva Krishna Bose,
at The Indian Press, Ltd ,
Allahabad

Printed by
Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd ,
Benares-Branch

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. उपोद्घात	१
२ हिन्दू-काल	
पहला अध्याय—प्रारम्भिक युग	१३
दूसरा अध्याय—बरार पर हिन्दू राजाओं का अधिकार	२७
तीसरा अध्याय—हिन्दू-शासन काल में बरार की साधारण अवस्था	४२
चौथा अध्याय—चेदि में हिन्दुओं का शासन	५१
पाँचवाँ अध्याय—महाकोशल (छत्तीसगढ़) में हिन्दू-शासन	६१
छठा अध्याय—हिन्दू-शासन में प्रजा तथा देश की (चेदि और महाकोशल की) साधारण दशा	७३
३ गोंड-काल	
पहला अध्याय—गोंड जाति का सङ्गठन	८६
दूसरा अध्याय—चाँदा-राज-वंश	६५
तीसरा अध्याय—खेरला-वंश	१०८
चौथा अध्याय—देवगढ़ वंश	११६
पाँचवाँ अध्याय—गढ़ामण्डला राजवंश	१२१
छठा अध्याय—गोंडों के शासन में प्रजा की साधारण अवस्था	१३६

	विषय	पृष्ठ
४	मुसलमानी जमाना	
	पहला अध्याय—बरार प्रान्त में मुसलमानी शासन	१४८
	दूसरा अध्याय—मुसलमानी शासन-काल में बरार की साधारण अवस्था	१६६
५	मरहठा-काल	
	पहला अध्याय—भोसला राजवंश	१७४
	दूसरा अध्याय—पण्डित वंश	१६५
	तीसरा अध्याय—मरहठा-शासन में प्रजा की दशा का साधारण विवरण	२००
६	अँगरेजी काल	
	पहला अध्याय—मध्यप्रदेश के बनने के पहले का अँगरेजी शासन	२१२
	दूसरा अध्याय—मध्यप्रान्त के बन चुकने के बाद का अँगरेजी शासन	२३३
७	देशी रियासतें	२५०—३२०

उपोद्घात

१—प्राचीन भौगोलिक विवरण

मध्यप्रदेश का इतिहास लिखने के पहले उसके प्राचीन भूगोल का उल्लेख करना आवश्यक है। इस प्रदेश में जो शहर तथा जिले, नदी तथा पहाड विद्यमान हैं वे प्राचीन काल में विभिन्न नामों से प्रसिद्ध थे। अतएव उन नामों के अनुसार उनकी स्थिति का पता लगाना सरल काम नहीं है। मुसलमान इतिहासकार इस प्रदेश को गोंडवाना कहते थे।

महाकोशल—प्राचीन काल में मध्यप्रदेश का पूर्वी भाग (अर्थात् छत्तीसगढ कमिश्नरी) महाकोशल या दक्षिणकोशल के नाम से प्रसिद्ध था। इसका यह नाम उत्तरकोशल से भिन्नता प्रकट करने के लिए रक्खा गया था। आधुनिक अवध का नाम उत्तरकोशल था।

वकटक—महाकोशल के पश्चिम का देश, जिसके अन्तर्गत चाँदा, नागपुर और सिवनी के जिले हैं, वकटक-प्रान्त के नाम से प्रसिद्ध था। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग ने जो सन् ६३९ ई० में भारत आया था, अपने समय के सम्पूर्ण महत्वपूर्ण देशों तथा नगरों का मनोहर विवरण लिखा है। उसने दक्षिणकोशल के राज्य का घेरा ६००० ली या १०००

मील बताया है । उसका इतना विस्तार तभी हो सकता है जब वकटक प्रान्त भी उस राज्य के अन्तर्गत मान लिया जाय ।

दाहल या चेदि—उत्तरी जिले अर्थात् जबलपुर, दमोह, मण्डला और नरसिंहपुर चेदि-देश या दाहल के नाम से प्रसिद्ध थे । चेदि-राज-घराने के कलचुरि राजाओ का शासन दाहल पर था । किसी समय चेदि-राज-घराने के राजाओ का राज्य महाकोशल पर भी हो गया था, अतएव महाकोशल भी चेदि-देश के नाम से प्रसिद्ध हो गया था ।

अवन्ती—मालवा का राज्य अपनी राजधानी उज्जैन क सहित पाचीन भारत मे अवन्ती के नाम से विख्यात था ।

अनूप—आधुनिक मण्डला जिला तथा उसके आस पास का देश अनूप के नाम से प्रसिद्ध था ।

माहिष्मती—आधुनिक मण्डला माहिष्मती माना जाता है । यह अनूप देश की राजधानी थी । कार्तवीर्यार्जुन या सहस्रार्जुन माहिष्मती राज्य का सस्थापक कहा जाता है । परन्तु डाक्टर फ्लीट ने प्रमाणित कर दिया है कि नीमार जिले का मान्धाता ही सस्कृत-साहित्य की माहिष्मती है । सम्भवत मण्डला मण्डल का अपभ्रश है ।

त्रिपुर—तिअर इस समय एक साधारण गॉव है । यह जबलपुर और भेडाघाट के मार्ग के बीचोबीच स्थित है । यह गॉव तथा उसका पडोसी कस्बा करनवेल पश्चिमी चेदि-देश,

दाहल या पश्चिमी देश की प्राचीन राजधानी था। उन दिनों यह त्रिपुर के नाम से प्रसिद्ध था।

श्रीपुर या सिरपुर—सिरपुर राजिम के पश्चिमोत्तर महानदी के किनारे एक छोटा सा गाँव है। यह महाकोशल की राजधानी था। यही गाँव बभ्रुवाहन की राजधानी चित्राङ्गद-पुर माना गया है।

सुक्तिमती—महानदी ही प्राचीन भारत की सुक्तिमती नदी मानी जाती है।

मेखल—सतपुडा की पहाडियाँ मेखलपर्वत के नाम से प्रसिद्ध थीं।

दण्डकारण्य—गङ्गा से लेकर गोदावरी तक दण्डकारण्य फैला था। इस वन का तथा इससे होकर राम का सुतीक्ष्ण की कुटी तक के जाने का हाल रामायण में लिखा है।

भण्डक—भण्डक एक प्राचीन नगर है। चाँदा के निकट उसके खँडहर हैं। यह प्राचीन वकटक राज्य की राजधानी था।

सरभपुर या सावरपुर—डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने आधुनिक सम्भलपुर को प्राचीन समय का सरभपुर माना है।

विदर्भ—प्राचीन भारत में बरार विदर्भ के नाम से प्रसिद्ध था। विदर्भ का राज्य अपनी उन्नति के शीर्ष स्थान को पहुँच कर कृष्णा के किनारे से लेकर नर्मदा के किनारे तक फैला था।

पैथान या प्रतिष्ठान—आधुनिक पैथाना या पठाना

नाम का कस्बा गोदावरी नदी के किनारे पर स्थित है। प्राचीन भारत में यह प्रतिष्ठान के नाम से प्रसिद्ध था। पैथान शब्द संस्कृत के प्रतिष्ठान का अपभ्रंश है। टालेमी ने इसे पैथाना या वैथाना बताया है। कुछ समय तक यह विदर्भ की राजधानी रहा था।

कल्याण—आधुनिक बरार के निकट कल्याण नाम का एक कस्बा था। यह चालुक्य-राजवंश की राजधानी था।

दशार्ण—प्राचीन भारत में मालवा का पूर्वी भाग दशार्ण के नाम से प्रसिद्ध था। विदिशा (आधुनिक भिलसा) दशार्ण की राजधानी थी।

२—अनार्य

मध्यप्रदेश, जिसका नाम मुसलमान इतिहासकारों ने गोंडवाना लिखा है गोंडों तथा दूसरी अनार्य जातियों की निवास-भूमि के रूप में प्रसिद्ध है। अनार्यों के कोई ग्रन्थ या लेख नहीं प्राप्त हैं, अतएव यह अनुमान करना कठिन है कि वे लोग कब और कैसे भारत में आ बसे। परन्तु यह बात निश्चित है कि आर्यों के आगमन के बहुत पहले भारत में मध्यप्रदेश के भीतर तक ऐसी जातियाँ आबाद थीं जो लोहे का उपयोग नहीं जानती थीं। वे चकमक पत्थर के कुल्हाड़े तथा पत्थर के दूसरे हथियारों से शिकार और युद्ध करती थीं। उनके वे हथियार उसी प्रकार के होते थे जैसे उत्तर

योरप में खोद निकाले गये हैं। वे जातियाँ भी उन असभ्यतर जातियो के बाद यहाँ आकर बसी थीं जिनके पत्थर के चाकू तथा चकमक पत्थर के भद्दे हथियार नर्मदा की तराई मे पाये गये हैं। विद्वानो को पता लगा है कि भारत के अनार्य तीन बडे दलों के हैं। उनके नाम तिब्बती-बर्मी, कोलर लोग और द्रविड हैं। आर्यों के आगमन पर, जो अपने मूल-स्थान मध्य-एशिया से भारत में आये थे, अनार्यों को देश के जङ्गली भागो मे भाग जाना पडा था। भारत की आर्य-बस्तियो का आरम्भिक इतिहास आर्यों और अनार्यों के बीच विद्वेष तथा युद्ध का इतिहास है। जिन वैदिक ऋचाओं से हम इन युद्धों का विवरण एकत्र करते हैं उनमे इन आदिम जातियो के लिए अनेक घृणाव्यञ्जक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उन ऋचाओ में वे दस्यु या डाकू तथा दास, यज्ञ-विध्वसक, मांसभक्षक, कच्चा खाने वाले, अन्यायी इत्यादि शब्दों से याद किये गय हैं। गङ्गा की तराई में यहाँ तक कि बनारस तथा उत्तरी बिहार मे आर्यों के उपनिवेश तथा बस्तियो के स्थापन का कार्य सामरिक युग अर्थात् ईसा के १००० वर्ष पूर्व ही समाप्त हो गया था। मध्यप्रदेश के अनार्य दो बडे समूहो के हैं। उनके नाम कोलर या मुण्ड तथा द्रविड है। नृतत्त्व विशारदों की कमेटी ने मध्यप्रदेश में रहने वाले अनार्यों की इस तरह गणना की और उन्हे श्रेणीबद्ध किया है—

कोलर या मुण्ड द्रविड

कोल	गाड
कुरकू	भाटह गाड
भील	मारी गोंड
विनजावर	मारी या गोत्तावर
भुजीय	धुरवे गोंड़
भूमिया	कटोलवर गोंड
बैना	अघरिया गोंड
धनगर	हलवे
गुदवा	खोड
कनवार	कोई
नाहर	वनवर
मनजी	नटिल
महतो	पनका

सौरा
गोली } (सन्देहात्मक)
अधरे

कोलर या मुण्ड लोग भारत के प्राचीनतम निवासी मालूम पडते हैं। डाकृर ग्रियर्सन ने लिखा है कि मुण्ड-भाषा उसी स्रोत से निकली है जिससे भारत तथा प्रशान्त सागर के द्वीपों और मलय पायद्वीप में बोली जाने वाली भाषाएँ निकली हैं। मुण्ड, मलय प्रायद्वीप के जङ्गली मानखमर तथा नीकोबार के निवासी जो बोली बोलते हैं उन सबके एक ही स्रोत से निकलने

का पता लगाया जा सकता है, यद्यपि ये लोग एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। अस्तु मुण्ड लोग पहले पहल दक्षिण-पूर्व से भारतीय द्वीप-पुञ्ज तथा मलय प्रायद्वीप से भारत में आये। भारत उनका मूल स्थान नहीं था। यहाँ तो उन्होंने अपने उपनिवेश कायम किये थे। मिस्टर भेट लिखते हैं—भूगर्भ शास्त्री हमें बताते है कि भारतीय प्रायद्वीप पहले उत्तर एशिया से समुद्र द्वारा अलग था। वह एक ओर मडागास्कर तथा दूसरी ओर मलय द्वीपपुञ्ज से थल द्वारा संयुक्त था। यह सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि भारत उस समय मनुष्यों से आबाद था, तो भी हम जानते हैं कि वह Paleolithic काल मे आबाद था और उस समय हिमालय के आगे के देशो की अपेक्षा पूर्वोत्तरी तथा दक्षिण-पश्चिमी देशो के साथ उसका सम्बन्ध जारी रखना शायद अधिकतर सरल था। वर्तमान समय मे दक्षिण में मुण्ड लोगो का चिह्न तक नहीं है। वे लोग केवल छोटानागपुर और मध्यप्रदेश में हैं। वे मध्यप्रदेश मे गोडो या दूसरी द्रविड जातियो से पहले आये थे, इस बात मे सन्देह नहीं है।

किसी समय यह विश्वास था कि द्रविड लोग पूर्व ऐतिहासिक काल मे पश्चिमोत्तर की ओर से भारत में आये थे। परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वे लोग वास्तव मे उधर ही से आये थे। उनकी अपनी निजी सभ्यता थी, और जब आर्य लोग दक्षिण पहुँचे तब उनसे द्रविड

लोगो का परिचय हुआ । उस समय द्रविड लोग नगरो मे रहते थे और उनकी शासन-व्यवस्था नियमबद्ध थी । अपना काम चलाने के लिए हम उन्ही को दक्षिण के मूल निवासी समझ सकते हैं । जान पडता है, वे लोग यहाँ से उत्तर भारत के देशो मे फैले थे । उनकी भाषा बिलकुल भिन्न है । दूसरी भाषाओ के साथ उसका सम्बन्ध प्रमाणित करना बिलकुल असम्भव है । द्रविड जाति काकेशस तथा हबशी जाति के मिश्रण से बनी है । अभी तक लोगो का यही विश्वास है कि द्रविड जाति की उपजाति गोंड लोग इस प्रान्त मे आर्यों या हिन्दुओं के आगमन के पहले रहते थे । परन्तु मिस्टर क्रम्प ने इस पर सन्देह किया है । इतिहास से प्रकट होता है कि मध्यप्रदेश में हिन्दू-शासन बारहवीं सदी तक कायम रहा । हिन्दू-राज-घरानो को गढामण्डला, खेरला, चादा और देवगढ के गोंड-राज-घरानो ने स्थानच्युत किया था । यह अनुमान किया जाता है कि इन गोंड घरानों के संस्थापक इस प्रदेश के बाहर से आये थे । यह भी बहुत सम्भव है कि हिन्दू-शासन बाहरी बर्बरो के आक्रमण से विनष्ट हुआ हो । उनकी प्रजा उनके वशीभूत थी, इसलिए उसे राजा से विद्रोह करने में सफलता मिलना सम्भव नहीं जान पडता ।

सारे प्रान्त में गोंडो के राज्य स्थापित हो गये थे । केवल रत्नपुर का हैहय राजपूत-घराना बच गया था ।

सम्भवत दसवीं सदी से लेकर तेरहवीं सदी तक ही गोडो के आक्रमण हुए हैं। इस बात के समर्थन में एक दूसरा मत भी है। पहले समय के संस्कृत-साहित्य में हमें गोड जातियों का उल्लेख नहीं मिलता। ऐत्तरेय ब्राह्मण तथा महाभारत में दस्यु या उत्सवसङ्केतों की सात जातियों का उल्लेख किया गया है। प्राचीन भारत मे जो सात जातियाँ प्रसिद्ध थीं उनके नाम ये हैं—

ऐत्तरेय	महाभारत	वररुचि
आन्ध्र	कम्बोज	द्रविड
पौण्ड्र	शक	उत्कल
मवर	मवर	[illegible]
पुलिन्द	किरात	[illegible]
मुतिव	बर्बर	[illegible]
किरात		
बर्बर		

कम्बोज और शक लोग असल में [illegible] थे। वे मुख्य भारत की सीमाओं के बाहर रहते थे। [illegible] में वे लोग दस्यु जातियो मे माने गए हैं क्योंकि [illegible] तक वे आर्य-हिन्दू-जाति के अन्तर्गत नहीं [illegible] थे। आन्ध्र [illegible] द्रविड थे। उन्होंने [illegible] को. [illegible] का राज्य स्थापित किया और [illegible] वर्ष पूर्व [illegible] शक्तिशाली हो गये थे। मवर और पुलिन्द तो [illegible]

रहते थे। सवरो का उल्लेख महाभारत मे हुआ है। अमरसिंह, वराहमिहिर तथा वाण ने भी अपने ग्रन्थो मे उनकी चर्चा की है। वाण के श्रीहर्षचरित मे लिखा है कि सवर जाति के लोग विन्ध्यगिरि के जङ्गलो मे रहते हैं। वराहमिहिर सवरों को पर्ण सवर के रूप मे उल्लेख करते हैं। कादम्बरी से भी हमे पता लगता है कि सवर लोग भारत के इसी प्रदेश मे रहते थे। टालेमी ने लिखा है कि सवर और पुलिन्द लोग नर्मदा के किनारो पर रहते हैं। सवर लोग छत्तीसगढ की सारङ्गगढ रियासत मे इस समय भी रहते हैं। उनकी दो उपज़ातियाँ हैं। एक का नाम लरिया और दूसरी का उडिया है। सारङ्गगढ के राजा के पास सवर राजाओ का एक ताम्र-पत्र है। सवर लोग कोलर जाति के हैं, जिन्हें वररुचि ने अभीरक के नाम से लिखा है। वे लोग सम्भवत उस प्रदेश के रहनेवाले अभीर या गावली लोग हैं। इस तरह हमे पता लगता है कि गोड लोग उन प्राचीन अनार्यों मे से नहीं हैं जिनका उल्लेख सस्कृत-साहित्य मे हुआ है।

३—नाग और गोवली

उपर्युक्त अनार्य जातियो के सिवा नाग और गोवली नाम की दूसरी दो जातियाँ हैं, जिनका इस प्रदेश के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। नाग लोग भारतीय शक लोगो की एक उपशाखा थे। इनका मूल-स्थान मध्य-एशिया था, जिसे यूनानी

लोग सीदिया के नाम से पुकारते थे। ईसा के पहले छठी सदी के लगभग नाग लोग मध्य-एशिया से निकले और दूसरे अनेक विदेशियों की भाँति उन्होंने भारत पर चढ़ाई की और मध्य-भारत में आबाद होगये। नागपुर शहर, नाग नदी और छोटा-नागपुर प्रदेश का नाम नाग जाति के नाम से पड़ा है। ये लोग नागपूजक थे। शक, हूणादिक दूसरी सीदियन जातियों की भाँति नाग जाति भी आर्यों में मिलगई और बिलकुल हिन्दू हो गई। ईसा के पहले दूसरी सदी में शक लोगों ने दूसरी बार चढ़ाई की। उन्होंने बैक्ट्रिया-राज्य को उलट-पुलट दिया और भारत पर भी चढ़ाई की। शक-राज कनिष्क ने अपना साम्राज्य विन्ध्यगिरि से लेकर अल्ताई पर्वत तक फैला दिया। सन् ७१ ई० में उसका राज्याभिषेक हुआ। शकाब्द नाम का संवत् इसी दिन से कायम किया गया। कनिष्क कट्टर बौद्ध था। चाँदा जिले में प्राचीन सीदियन आक्रमणों के अगणित चिह्न हैं। वे वहाँ Cromlechs and Kistayes के रूप में पाये जाते हैं। मालूम होता है कि गोंडों के समुन्नत होने के पहले गावली नाम की एक दूसरी जाति इस प्रदेश में बहुत अधिक समुन्नत हो चुकी थी। इस बात का पता परम्परागत कथाओं से लगता है। देवगढराजघराने के खेरला के गोंडों ने उस गावली घराने का, जो उस समय देवगढ पर शासन कर रहा था, स्थानच्युत करके अपनी प्रभुता स्थापित की थी। डाक्टर भाऊदाजी ने आभीरों के एक उत्कीर्ण लेख के आधार

पर पुराने समय के आभीरों को गोविन्द माना है। वररुचि ने भी आभीरों का उल्लेख किया है। उसने इन्हें दस्यु जातियों में माना है और लिखा है कि ये लोग आर्यों के अन्तर्गत नहीं थे।

मध्य-प्रदेश और बरार का इतिहास

हिन्दू-काल

पहला अध्याय

प्रारम्भिक युग

पौराणिक काल—सामरिक युग की समाप्ति के समय अर्थात् ईसा के लगभग १००० वर्ष पूर्व आर्य लोग गङ्गा की तराई में आबाद हो चुके थे। यह अभी तक अनिश्चित है कि आर्य लोगों ने विन्ध्याचल की पहाड़ियों को कब पार किया और भारत के इस भाग में कैसे अपनी सभ्यता का प्रचार किया। उन्होंने यहाँ सबसे पहले अपने उपनिवेश कैसे स्थापित किये, इसकी झलक हमें रामायण, महाभारत तथा दूसरे पुराण ग्रन्थों में मिलती है। पहले पहल जब पुराणों का अनुवाद अँगरेज़ी में हुआ था तब उनकी उपयोगिता के विषय में बड़ी बड़ी आशाएँ की गई थीं। परन्तु बाद को कुछ योरपीय विद्वानों ने उन ग्रन्थों को केवल कहानी और क़िस्सों से परिपूर्ण बताया। कट्टर हिन्दुओं का विश्वास है कि जो कुछ उनमें वर्णन

किया गया है सब अक्षर अक्षर सत्य है। सच तो यह मालूम होता है कि उन ग्रन्थों में कल्पित कथा के रूप मे बहुत कुछ ऐतिहासिक महत्व की बाते हैं। वे कुछ तो पौराणिक है और कुछ ऐतिहासिक। इस बात मे उनकी तुलना मध्ययुग के योरपीय धर्माचार्यों द्वारा लिखित जगत के इतिहास के विवरणों के साथ की जा सकती है। प्रत्येक धर्माचार्य ने अपने विवरण का प्रारम्भ ससार की सृष्टि से किया और ऐतिहासिक बातो के साथ साथ अमानुषीय कर्मों तथा गाथाओं को एकत्र गूँथ दिया। इस दृष्टि से पुराणो का अध्ययन करके विद्वानों ने ऐतिहासिक तथ्य एकत्र किया है। पुराणो मे लिखा है कि एक बार विन्ध्याचल ज्यादा ऊँचा बढने लगा। वह यहाँ तक बढा कि उसने सूर्य के मार्ग का अवरोध कर दिया। देवता लोग भयभीत होगए और उन्होने अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की। जब अगस्त्य उक्त पहाड के सम्मुख जाकर खडे हुए तब मुनि को प्रणाम करने के लिए वह झुक गया। अगस्त्य ने कहा, "जब तक मैं न लौटूँ तब तक इसी स्थिति मे खडे रहो।" यह कह कर उन्होने पहाडी पार की और दक्षिण की ओर चले गये, किन्तु फिर वापस न आये।

महाभारत मे भी यही कथा है। इससे यह निष्कर्ष हम बेखटके निकाल सकते हैं कि अगस्त्य मुनि ही ने पहले पहल विन्ध्याचल पहाडियों का अतिक्रम करके दक्षिण मे आर्य-सभ्यता का प्रचार किया। उनका आश्रम दण्डकारण्य मे था। दण्डकारण्य गङ्गा के किनारे से गोदावरी तक फैला हुआ था। अगस्त्य-सर्ग

और आगस्त्य-वर्ग से हमें पता लगता है कि उन्होंने द्रविड-भाषा में एक व्याकरण और एक चिकित्सा-ग्रन्थ की रचना की थी। द्रविड-भाषा में और भी कई चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थ अगस्त्य के बनाये कहे जाते हैं। इससे मालूम होता है कि उन्होंने द्रविड-भाषा पढ़ी थी और दक्षिण के अनार्यों में आर्य-सभ्यता तथा आर्य साहित्य का प्रचार किया था।

रामायण से भी इस मत का समर्थन होता है। रामायण के अरण्यकाण्ड में इस तरह अगस्त्य का उल्लेख किया गया है, "यह आश्रम अगस्त्य मुनि का है, जिन्होंने मानव-जाति की भलाई के लिए दक्षिण में रहनेवाले दस्युओं को पराभूत किया और उस देश को बसने योग्य बनाया। जब से ये महात्मा यहाँ आबाद हो गये हैं तब से दस्यु लोग शान्त हो गये हैं और उन्होंने अपना लड़ाका भाव परित्याग कर दिया है। अब विन्ध्याचल पहाड़ भी ऊँचा नहीं बढ़ता है।"

जब राम ने दण्डकारण्य की यात्रा की तब दक्षिण में अगस्त्य मुनि आर्य-सभ्यता फैला रहे थे। वे वातापी और इल्वल नाम के दो राक्षसों को अपने साथ संस्कृत में बात चीत करते देख बहुत ही चकित हुए थे। रामायण में दण्डकारण्य के अनार्य निवासियों का अत्यन्त करुणा-जनक चित्र अङ्कित किया गया है। यही लोग आर्य तपस्वियों के यज्ञ और हवनों को अपवित्र किया करते थे। डाक्टर भण्डारकर का मत है कि दक्षिण प्रवेश करने पर आर्यों ने विदर्भ

(आधुनिक बरार) को अपने उपनिवेश स्थापित करने के लिए उपयुक्त स्थान पाया था और पहले पहल यहीं वे बसे थे । क्योंकि मध्य-प्रदेश जङ्गलों और पहाडियों से व्याप्त था, अतएव वह केवल अगस्त्य, सुतीक्ष्ण तथा दूसरे महात्माओं के आश्रम के उपयुक्त समझा गया । इस बात में किसी तरह का सन्देह नहीं हो सकता कि इस प्रदेश में आर्यों के उपनिवेश की स्थापना दक्षिण के दूसरे भागों की अपेक्षा बाद को हुई थी । माहिष्मती (आधुनिक मण्डला) इस प्रदेश में आर्यों की सर्व प्रथम बस्ती थी ।

रामायण के उत्तर काण्ड में यह लिखा है कि राम की मृत्यु के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र कुश ने विन्ध्याचल की पहाडियों के दक्षिण एक राज्य स्थापित किया । वह कुशावती के नाम से प्रसिद्ध हुआ । रामायण में एक शूद्र की तपस्या की कथा भी लिखी है । कहा जाता है कि एक शूद्र तपस्या कर रहा था । इस कारण किसी ब्राह्मण के लडके की अकाल मृत्यु होगई । उस समय शूद्रों को उन धार्मिक कृत्यों के करने की आज्ञा नहीं थी जो हिन्दू-शास्त्रों में निर्दिष्ट थे । उस दुःखित ब्राह्मण ने राम से प्रार्थना की । राम वहाँ गये और उस शूद्र को मार डाला । इससे उसके पाप छूट गये । जिस स्थान पर यह घटना हुई थी वह स्थान कामठी के पूर्वोत्तर, १७ मील पर, रामटेक नाम की पहाडी माना जाता है । इससे भी हम अनुमान कर सकते हैं कि आर्य-सभ्यता इन प्रदेशों में रामायण के

समय मे प्रचलित की जा रही थी। रामायण में दक्षिण के जिन देशों का उल्लेख है वे ये हैं—उत्कल (आधुनिक उडोसा), कलिङ्ग (उत्तरीसरकार), दशार्ण (मालवा का पूर्वी भाग जिसकी राजधानी विदिशा या आधुनिक भिलसा थी), विदर्भ (बरार), सौराष्ट्र (काठियावाड), पाण्ड्य (तिनावेली), चोल (कर्नाटक) और केरल (कनारा)।

महाभारत मे दक्षिण के इन देशो का वर्णन है—चेदि, माहिष्मती (मण्डला या मान्धाता), सौराष्ट (काठियावाड), दण्डकारण्य, कर्नाटक, पाण्ड्य (तिनावेली), द्रविड (कारो-मण्डल का किनारा), आन्ध्र (तैलङ्गान्त), कलिङ्ग (उत्तरी-सरकार), मूसिक, वनवासिक, महिष्क, कुन्तल (हैदराबाद का दक्षिण-पश्चिमी भाग) और विदर्भ (बरार)। इस तरह महाभारत में माहिष्मती, चेदि और विदर्भ नामक तीन राज्यों का वर्णन है। उनकी स्थिति भारत के इसी भाग (मध्यप्रदेश) में मानी जा सकती है। महाभारत मे लिखा है कि चित्राङ्गदा मे उत्पन्न अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन चेदिदेश का राजा था। चित्राङ्गदा के पिता का नाम चित्रवाहन था। उसकी राज-धानी चित्राङ्गदपुर थी। महानदी पर स्थित सिरपुर ही यह स्थान माना गया है। राजिम, सिरपुर और आरङ्ग मे (जो इन प्रदेशो के निस्सन्देह प्राचीनतम स्थान हैं) प्राप्त हुए प्राचीन शिलालेखो से हमे पता लगता है कि इन स्थानों के सबसे प्राचीन शासक अपने को पाण्डव कहते थे। वे लोग अपनी

उत्पत्ति स्पष्टतया बभ्रुवाहन से बतलाते थे, जो अर्जुन का पुत्र होने के कारण पाण्डव था। महाभारत मे चेदि के एक दूसरे राजा शिशुपाल का भी वर्णन है।

माहिष्मती मे हैहय-वंश-वालो ने एक राज्य महाभारत के समय मे स्थापित किया था। हैहय लोग सोमवंशी यादव थे, जो अत्रि और यदु द्वारा अपने को चन्द्रमा से उत्पन्न मानते हैं। यदु से हैहय उत्पन्न हुआ था और उससे कार्तवीर्यार्जुन। कहा जाता है कि कार्तवीर्यार्जुन को परशुराम ने कामधेनु लेलेने के कारण मार डाला था। सारे प्राचीन शिलालेखो मे उसका नाम इस राज-वंश के पूर्वपुरुष के रूप मे खुदा है।

यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि रामायण और महाभारत किस समय मे बनाये गये थे और उनमे वर्णित घटनाएँ किस काल से सम्बन्ध रखती है। वर्तमान ग्रन्थों में अधिकाश प्रक्षिप्त हैं। कुछ योरपीय विद्वानो की सम्मति है कि महाभारत मे भारतीय इतिहास के प्रथमतर काल का वर्णन है और दोनो ग्रन्थों मे वर्णित चरित्र कल्पित कथाएँ हैं।

हिन्दू-मत तो यह है कि रामायण की रचना महाभारत से बहुत पहले हुई है। कुछ भारतीय विद्वानो ने रामायण को ईसा के ५५०० वर्ष पूर्व का निश्चित किया है। परन्तु योरपीय विद्वान् वैदिक मन्त्र को भी ईसा के २००० वर्षों से पूर्व

नहीं मानते हैं। उनका मत है कि महाभारत का महायुद्ध ईसा के १२५० वर्ष पूर्व हुआ था। यह मानना अधिक भ्रम पूर्ण न होगा कि रामायण और महाभारत सामरिक युग में ईसा के १४०० वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के १००० वर्ष पूर्व के बीच रचे गये थे।

इस तरह यह मालूम होता है कि इस प्रदेश में सबसे पहले आर्यों का उपनिवेश रामायण के समय में स्थापित हुआ था और महाभारत के समय में इसकी आबादी इतनी अधिक बढ़ गई थी कि दो आर्य-राज्य, एक माहिष्मती में और दूसरा चित्राङ्गदपुर में स्थापित हो गये थे। कार्तवीर्यार्जुन द्वारा प्रतिष्ठित माहिष्मती में हैहय वंश के राजा शासन करते थे। चित्राङ्गदपुर में पाण्डव वंश का आधिपत्य था। ये लोग अपनी उत्पत्ति अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन से बतलाते थे। महाभारत के समय में विदर्भ एक बड़ा और शक्तिशाली राज्य था। यह रुक्म द्वारा शासित होता था। उसकी रुक्मिणी नाम की एक सुन्दर बहन थी। रुक्मिणी की सगाई पहले चेदि के राजा शिशुपाल से की गई थी, परन्तु बाद को उसका विवाह कृष्ण के साथ हुआ था। नल और दमयन्ती की प्रेमकथा की लीला-भूमि भी यही था।

बौद्ध-युग—ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सबसे पहले के जो लेख इस प्रदेश में पाये गये हैं वे बौद्ध-युग के हैं। बौद्ध-राज महान् अशोक का एक आदेश (शिलालेख) जबलपुर

जिले की सिहोरा तहसील के रूपनाथ मे पाया गया है। इससे प्रकट होता है कि उस महान् सम्राट् ने देश के इस भाग को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया था। उसकी प्रमुख प्रभुता उत्तर मे वैक्ट्रिया की सरहद से लेकर दक्षिण में कृष्णा के किनारे तक सब देश अङ्गीकार करते थे। विदर्भ उसके साम्राज्य का एक भाग बन गया था। परन्तु यह बात निश्चित नहीं है कि उसके अधिकारी प्रत्यक्ष रीति से उसका शासन करते थे या वह पुलिन्द जाति के राजाओं के अधिकार में एक सरक्षित राज्य बन गया था। अशोक ने चौदह आदेश निकाले थे। सब आदेशों में उसने अपना नाम पियादासी अर्थात् "देवताओ का प्यारा" रक्खा है।

भण्डक और सिरपुर के पहले राजा बौद्ध थे। अजन्ता की पहाडियो की प्रसिद्ध गुफाएँ जैसे बौद्ध-युग की हैं वैसे ही ब्राह्मण-युग की भी हैं। मौर्यवश के बाद सुङ्गवश का आधिपत्य हुआ। सुङ्गो का राज्य विदर्भ तक बढ गया था। आन्ध्र-वश के इतिहास का वर्णन दूसरे अध्याय मे किया जायगा। इस वश की एक शाखा ने अपना राज्य विदर्भ मे प्रतिष्ठित किया था। शक-राज कनिष्क ने अपने राज्य को विन्ध्याचल की पहाडियों तक बढा लिया था। उसने अपनी राजधानी पेशावर में स्थापित की और भारतीय सीमा के बाहर काशगर, यारकन्द और खुतन का भी शासन किया। वह कट्टर बौद्ध था। यह बात मानी जाती है कि उसने सन ७८ ईस्वी में एक शक सवत्

प्रचलित किया जो शकाब्द कहलाता है । सन् १५० ईस्वी मे इस राजा की मृत्यु हुई ।

गुप्त-युग—आन्ध्र वंश के बाद मगध के गुप्त राजा शक्तिशाली हुए । उन्होंने अपनी शक्ति भारत के इस भाग की ओर बढाई । उनकी राजधानी पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) में थी । इस वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम था जो सन् ३२० ई० में सिंहासन पर बैठा । इसने भी एक संवत् चलाया था । इसका पुत्र समुद्रगुप्त बड़ा भारी योद्धा था । उसने अनेक देश विजय किये और प्रसिद्ध अश्वमेध यज्ञ किया । उसके विजय का इतिहास इलाहाबाद की प्रसिद्ध लाट पर खुदा है । इस लेख के अनुसार उसने दक्षिणकोशल (आधुनिक छत्तीसगढ) के राजा महेन्द्र को जीता था । उसने भारत के इस भाग के पहाड़ी स्थानों के राजाओं को भी पराभूत किया था । इन राजाओं में एक का नाम व्याघ्रराज था । परन्तु समुद्रगुप्त ने अन्त में सब विजित राजाओं को स्वतन्त्र कर दिया और उन्हें अपने सामन्त राजा बना लिये । यह बात आरंग मे प्राप्त एक शिलालेख से प्रमाणित हुई है । इस शिलालेख में गुप्त संवत् की तिथि है और यह ईसा की छठी सदी के अन्त का है । हरस्वामी और बापस्वामी नामक दो व्यक्तियों को भटपल्लिका ग्राम माफी में दिया गया—यही इस शिलालेख का अभिप्राय है । रायपुर जिले की कौंडिया जमीन्दारी का बरपकी गाँव भटपल्लिका हो सकता है । इस शिलालेख मे

उन राजाओं के वंश की वंशावली खुदी है जो सम्भवत गुप्त-राजाओं के सामन्त थे। समुद्रगुप्त का अधिकार सागर और दमोह जिलों पर हो गया था। यह बात उसके शासन-काल के एक शिलालेख से सिद्ध होती है, जो सागर जिले की खुरई तहसील के एरन गाँव में है। एरन ही प्राचीन एराकीना हो सकता है। समुद्रगुप्त अपने पुत्र (और उत्तराधिकारी) चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए एक विशाल साम्राज्य छोड़ गया था। वह पूर्व में हुगली नदी से लेकर पश्चिम में यमुना और चम्बल नदियों के किनारे तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा के किनारे तक फैला हुआ था। द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिक्के हरदा, जबलपुर और बालाघाट जिले के सकसटर गाँव में पाये गये हैं।

गुप्त-वंश का दूसरा राजा बुद्धगुप्त था। उसने इस प्रदेश के कुछ भागों पर अपनी प्रमुख प्रभुता स्थापित रक्खी। बुद्धगुप्त की तिथि उस ४७ फुट ऊँचे शिला-स्तम्भ पर खुदी है जो एरन में एक मन्दिर के सामने स्थापित है। यह तिथि १६५ गुप्त संवत् = ४८४-८५ ईसवी सन् है। उसमें लिखा है कि जब बुद्धगुप्त का सामन्त महाराज सुरसमणिचन्द्र, कालिन्दी (यमुना) और नर्मदा के बीच के देश का शासन कर रहा था तब विष्णु देवता के एक ध्वजस्तम्भ को मातृविष्णु नाम के एक राजा तथा उसके कनिष्ठ भ्राता धन्यविष्णु ने स्थापित किया था। एरन में एक और उत्कीर्ण शिला-स्तम्भ है। वह भी इसी

वश का है। उसपर १९१ गुप्त सवत्—५१० ईसवी उत्कीर्ण है। इनसे स्पष्ट है कि गुप्तराजाओं ने अपना आधिपत्य भारत के इस भाग तक बढाया था।

गुप्त राजाओं के सामन्त शासकों के दो वश थे, एक वश का नाम परिव्राजक महाराज और दूसरे का उच्छकल्प महाराज था। इन्होंने इस प्रदेश के पश्चिमी भागो मे अपने राज्यो को स्थापित किया था। पहले वश के राजाओं की राजधानी मुरवारा तहसील के विजयराघवगढ के आस पास किसी स्थान मे थी। दूसरे वश की राजधानी उचहरा मे थी जो अब इलाहाबाद और जबलपुर के बीच रेल की सडक पर एक स्टेशन है। परिव्राजक एक प्रकार के साधु को कहते हैं। लोगो का विश्वास है कि इन राजाओं का ऐसा नाम इस लिए पडा कि इनकी उत्पत्ति राजर्षि सुशर्म्मा से हुई थी। इनकी वशावली इस तरह है—

सुशर्म्मन के वश मे उत्पन्न—

महाराज देवाढ्य
|
महाराज प्रभञ्जन
|
महाराज दामोदर
|
महाराज हस्तिन्
|

महाराज संक्षोभ

इस वंशवृक्ष के पिछले दो राजाओं के उत्कीर्ण लेख प्राप्त हैं। इनसे प्रकट होता है कि उन्होंने सन् ४७५ से लेकर सन् ५२८ के बीच तक शासन किया था। ये उत्कीर्ण लेख खोह और बैतूल में मिले हैं। इनमें इस बात का उल्लेख है कि महाराज हस्तिन् दाहल-राज्य (आधुनिक जबलपुर) के शासक हैं। इस राज्य को उन्होंने दक्षिण कोशल के अन्तर्गत अठारह जङ्गली राज्यों के साथ, पैतृकाधिकार से, प्राप्त किया था। यह बात बैतूल के ताम्रपत्र से अधिक स्पष्ट है कि त्रिपुरी परिव्राजकों के राज्य में शामिल थी।

उच्छकल्प महाराज भी गुप्त सम्राटों के सामन्त थे। ये परिव्राजकों के समकालीन थे। इनकी राजधानी उचहरा में थी। यह स्थान अब इलाहाबाद और जबलपुर के बीच रेल का स्टेशन है। इनकी वंशावली इस प्रकार बनाई जा सकती है—

महाराज ओघदेव (महादेवी कुमारदेवी से विवाह किया)
|
महाराज कुमारदेव (महादेवी जयस्वामिनी से विवाह किया)
|
महाराज जयस्वामी (रमादेवी से विवाह किया)
|
महाराज व्याघ्र (अजितदेवी से विवाह किया)
|

महाराज जयनाथ (महादेवी मुरमदेवी से विवाह किया)

|

महाराज सर्वनाथ

इनमें अन्तिम दो राजाओं के उत्कीर्ण लेख मिलते हैं, जो मुरवारा के समीप कारीतलई ग्राम मे और नागोद-राज्य के खाह ग्राम में पाये गये हैं। यह बहुत सम्भव है कि सर्वनाथ का पितामह महाराज व्याघ्र वही व्याघ्रराज हो जिस समुद्रगुप्त ने पराभूत किया था।

श्वेत हूण—गुप्त-साम्राज्य भङ्ग होने के कारणों में एक कारण श्वेत हूणो का आक्रमण भी था। इनका नेता तोरामन था। उसने सन् ५०० के पहले मालवे पर अपना अधिकार जमाया था। सागर जिले मे एरन गॉव के समीप विष्णु के वराहावतार की लाल पत्थर की एक विशाल मूर्ति है। वह दश फुट ऊँची और पन्द्रह फुट लम्बी है। उसकी गर्दन के चारो ओर जो माला खुदी हुई है उसमे छोटे छोटे मनुष्यों के स्वरूप हैं। उस मूर्ति पर श्वेत हूणराज तोरामन का एक लेख खुदा है। तोरामन की मृत्यु सन ५१० मे हुई थी। उसके बाद उसका राज्य उसके पुत्र मिहिरगुल के अधिकार में आया। मिहिरगुल ने इस प्रदेश में अपने बाप के अधिकार को अक्षुण्ण रक्खा। यह बात सिवनी मे पाय गये उसके एक सिक्के से स्पष्ट होती है। अन्त मे जब हूण-शासन असह्य हो गया तब सब हिन्दू राजा मगध-नरेश बालादित्य और मध्य

भारत के राजा यशोवर्मन के नेतृत्व मे एकत्र हुए और सन् ५२८ के लगभग मिहिरगुल को घोर रूप से पराजित कर उसे उसके देश, पजाब, की ओर खदेड दिया ।

गौड़-राजा—गौड के राजाओ ने भी अपना राज्य पश्चिम ओर इस प्रदेश के एक भाग तक बढाया था। उनका राज्य सतपुडा की उच्चसमभूमि तक पहुँच गया था। गौड के एक राजा का नाम शशाङ्क था। उसकी राजधानी मुर्शिदाबाद के समीप कर्णसुवर्ण मे थी। उसके समय मे राज्यवर्द्धन बडा यशस्वी और प्रख्यात राजा था। वह उत्तर भारत मे शासन करता था। शशाङ्क ने राज्यवर्द्धन को पराजित किया और मार भी डाला। उसके थोड़े दिन पहले राज्यवर्द्धन १०,००० घुडसवारो को लेकर मालवे पर चढ आया था और उसने अपनी बहन राज्यश्री को कैद से छुडाया था। राज्यवर्द्धन का भाई हर्षवर्द्धन सन ६०६ मे थानेश्वर के सिंहासन पर बैठा। इसने शशाङ्क को भी पूर्ण रीति से पराभूत कर दिया। धर्मपाल नामक पाल-वंश का दूसरा गौड-राजा सातवीं सदी के अन्त मे अपने साम्राज्य को देश के इस भाग तक बढा लाया था। जनरल कनिंघम ने सम्भवत इन्हीं बातों से अनुमान किया है कि 'गोंडो' ने अपना नाम गौड से ही रक्खा था। चाहे जो हो, पर यह बात भी युक्ति-युक्त प्रतीत होती है।

दूसरा अध्याय

बरार पर हिन्दू-राजाओं का अधिकार

सुङ्गवंश—मध्य प्रदेश के दूसरे भागो की अपेक्षा बरार का इतिहास अधिक प्राचीन है। अतएव पहले हम बरार का वर्णन करेंगे और तब इस प्रदेश के उत्तरी भाग का अर्थात् चेदि और महाकोशल का। इतिहास मे अशोक के बाद विदर्भराज्य का उल्लेख सबसे पहले विदिशा के राजा अग्निमित्र के शासन-काल में हुआ है। अग्निमित्र सुङ्गवंश का राजा था। वह अन्तिम मौर्य सम्राट् वृहद्रथ के सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र था। पुष्यमित्र ने अपने स्वामी को ईसा के १८४ वर्ष पूर्व मार कर मगध के सिंहासन पर अधिकार कर लिया और सुङ्गवंश का आधिपत्य स्थापित किया। उसने अपने राज्य को विदर्भ तक बढाया। ईसा के १०० वर्ष पूर्व उसके पुत्र पुष्यमित्र ने विदिशा में शासन किया। कालिदास ने अग्निमित्र का नाम अपने प्रसिद्ध नाटक मालविकाग्निमित्र मे अमर कर दिया है। उस समय विदर्भ यज्ञसेन द्वारा शासित होता था। यज्ञसेन का अपने भतीज माधवसेन के साथ कोई घरेलू झगडा था। अग्निमित्र ने माधवसेन की बहन मालविका के साथ विवाह कर के माधवसेन का पक्ष लिया और यज्ञसेन को पराजित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि विदर्भ-राज्य दो भागों

में बँट गया । उन दोनों भतीजों में से एक वर्धा नदी के इस पार शासन करने लगा और दूसरा उस पार।

आन्ध्रभृत्यवंश—इस के बाद विदर्भ के राजाओं का फिर उल्लेख आन्ध्रभृत्यवंश के शासन काल में हुआ है । जैसा हम पहले कह आये हैं आन्ध्र लोग वस्तुत हिन्दूधर्म के अन्तर्गत नहीं थे । जब उन लोगों ने धीरे धीरे हिन्दू-धर्म को स्वीकार किया तब वे हिन्दू माने गये । उन्होंने तैलङ्गदेश में एक राज्य स्थापित किया, जिसकी राजधानी धन्यकटक थी । ईसा के ७३ वर्ष पूर्व इस वंश के संस्थापक ने, जिसका नाम सिन्धुक या सिमक बतलाया जाता है, कण्ववंश का मूलोच्छेद कर डाला । कण्ववंश की उस समय मगध में प्रभुता थी और वह अत्यन्त शक्तिशाली था । कण्ववंश के बाद आन्ध्रवंश ने ही प्रधान शक्ति प्राप्त की । इसी वंश की एक शाखा ने विदर्भ में भी शासन किया । प्रतिष्ठान् या पैठन इस वंश की राजधानी था। प्रधान शाखा के राजा धन्यकटक में शासन करते थे । विदर्भ में शासनकरनेवाले आन्ध्रराजाओं की इस नई शाखा के नाम और सन् निम्नानुसार हैं—

श्रीपुलुमयी	सन् १३०—१५४
यज्ञश्री	,, १५४—१७२
मधरिपुर	,, १७३—१९०

श्रीपुलुमयी बड़ा प्रतापी और प्रख्यात राजा था। वह राजाधिराज गौतमीपुत्र का पुत्र था । उसने सन् १३० से १५४

तक प्रतिष्ठान् मे शासन किया। इसके बाद वह धन्य-कटक के सिंहासन का उत्तराधिकारी हुआ। वहाँ उसने सन् १५४ से १५८ तक राज्य किया। प्रसिद्ध भूगोल शास्त्री टोलमी से हम मालूम होता है कि उसके समय मे पश्चिमी किनारे से इधर भीतर का देश दो भागो में बँटा था। इनमे उत्तरी भाग का शासन सिरो पालीमियस करता था। टोलमी के इस कथन का मतलब इसी राजा से है।

क्षत्रप या सत्रप-वंश—उत्कीर्ण लेखों और सिक्कों से यह विदित होता है कि क्षत्रप राजाओ के (जो कि सम्भवत. फारसी सत्रप का सस्कृत रूप है। सत्रप = राज-प्रतिनिधि) एक वंश ने उस समय मालवा और विदर्भ पर शासन किया था। उन लोगों की उत्पत्ति शकों स थी। शक लोगो ने उत्तरी भारत मे शक्ति-शाली राज्य स्थापित किये थे। हम यह बात पूर्व-अध्याय में बतला चुके हैं। उन लोगो न मालवा और पश्चिमी किनारे पर शासन करने को सत्रप या राज-प्रतिनिधि की नियुक्ति की थी।

नहापान क्षत्रप—इस वंश के राजाओं में एक नहापान क्षत्रप था। उसने विदर्भ का राज्य किया। उसकी राजधानी जुनुआर थी। अनुमान किया जाता है कि उसका राजत्व-काल सन् १२४ के इधर उधर था। महाराज गोतमी-पुत्र ने नहापान के उत्तराधिकारी को मार कर क्षत्रप-वंश का

उच्छेद कर दिया और इस तरह देश के इस भाग पर आन्ध्र-वंश की शक्ति को फिर स्थापित किया ।

रुद्रमन—सन् १४९ में रुद्रमन नाम का एक दूसरा शक्तिशाली चत्रप राजा उठ खडा हुआ । जूनागढ के उत्कीर्ण लेख से पता लगता है कि सब जातियो के नेता रुद्रमन के पास एकत्र हुए और अपनी सरचा के लिए उसे अपना राजा वनाया । कहा जाता है कि उसने अपने उच्छिन्न राज्य की फिर स्थापना कर महा-चत्रप की पदवी धारण की । उसने अकरवन्ती, अनूप, सौराष्ट्र और अपरान्त तथा उन दूसरे प्रान्तो का विजय किया जिनको गोतमीपुत्र ने छीन लिया था । इस तरह उसने दिग्विजय का आरम्भ किया ।

आन्ध्रवंश के विनाश और चालुक्यो के उदय के बीच का समय—

सन् २३६ के लगभग आन्ध्रवंश का अन्त हुआ । इस समय से लेकर चालुक्यों के शक्तिशाली होने के समय तक दक्षिण का इतिहास बहुत अव्यवस्थित है ।

इस समय के ही लगभग आभीर या गोपाल-जाति के राजा शक्तिशाली हुए । नासिक की गुफा में वीरसेन आभीर का एक शिलालेख है । भण्डक के वकटक राजाओ ने इसी समय विदर्भ तक अपना राज्य फैलाया था । वकटक के राज्य में नागपुर, वर्धा, चाँदा, सिवनी और छिंदवाडा के आधुनिक जिले शामिल थे । वहाँ के राजाओ की उत्पत्ति यवनो से है ।

प्राचीन भारत मे बैक्ट्रिया के यूनानी यवन कहलाते थे। परन्तु वे लोग पूर्णरूप से हिन्दू बना लिये गये थे।

वकटक के राजाओ के नाम तथा उनका सम्भवित शासनकाल नीचे लिखे अनुसार है—

विन्ध्यशक्ति		सन् २४४
इसके वंशधर	१४६ वर्षो तक	
प्रवरसेन प्रथम		सन् ४००
रुद्रसेन प्रथम		सन् ४४५
पृथ्वीसेन प्रथम		सन् ४५०
रुद्रसेन द्वितीय		सन् ४७५
प्रवरसेन द्वितीय		सन् ५००
नरेन्द्रसेन		
पृथ्वीसेन द्वितीय		

इस वंश के चार ताम्रपत्र सिवनी जिले के पिंडाई, अमरावती जिले के चम्पक, छिंदवाडा जिले के डुडिया और बालाघाट में क्रमपूर्वक पाय गये हैं। इनमे से तीन प्रवरसेन द्वितीय के शासन काल के हैं और चौथा महाराज पृथ्वीसेन द्वितीय क समय का है। ब्राह्मणों को दिये गये ग्रामो या भूमि के ये चारो दानपत्र हैं। परन्तु इनसे यह ऐतिहासिक वृत्तान्त एकत्र किया जा सकता है कि रुद्रसेन प्रथम भारशिवगोत्र के प्रसिद्ध भवनाग का दौहित्र था। उन लोगो का भारशिव नाम शायद इसलिए पड गया क्योंकि वे शिव की मूर्ति को धारण किये रहते

उच्छेद कर दिया और इस तरह देश के इस भाग पर आन्ध्र-वश की शक्ति को फिर स्थापित किया।

रुद्रमन—सन् १४८में रुद्रमन नाम का एक दूसरा शक्तिशाली क्षत्रप राजा उठ खड़ा हुआ। जूनागढ के उत्कीर्ण लेख से पता लगता है कि सब जातियों के नेता रुद्रमन के पास एकत्र हुए और अपनी सरक्षा के लिए उसे अपना राजा बनाया। कहा जाता है कि उसने अपने उच्छिन्न राज्य की फिर स्थापना कर महा-क्षत्रप की पदवी धारण की। उसने अकरवन्ती, अनूप, सौराष्ट्र और अपरान्त तथा उन दूसरे प्रान्तों का विजय किया जिनको गौतमीपुत्र ने छीन लिया था। इस तरह उसने दिग्विजय का आरम्भ किया।

आन्ध्रवश के विनाश और चालुक्यों के उदय के बीच का समय—

सन् २३६ के लगभग आन्ध्रवश का अन्त हुआ। इस समय से लेकर चालुक्यों के शक्तिशाली होने के समय तक दक्षिण का इतिहास बहुत अव्यवस्थित है।

इस समय के ही लगभग आभीर या गोपाल-जाति के राजा शक्तिशाली हुए। नासिक की गुफा में वीरसेन आभीर का एक शिलालेख है। भण्डक के वकटक राजाओं ने इसी समय विदर्भ तक अपना राज्य फैलाया था। बकटक के राज्य में नागपुर, वर्धा, चाँदा, सिवनी और छिदवाड़ा के आधुनिक जिले शामिल थे। वहाँ के राजाओं की उत्पत्ति यवनों से है।

प्राचीन भारत में वैक्ट्रिया के यूनानी यवन कहलाते थे। परन्तु वे लोग पूर्णरूप से हिन्दू बना लिये गये थे।

वकटक के राजाओं के नाम तथा उनका सम्भवित शासनकाल नीचे लिखे अनुसार है—

विन्ध्यशक्ति		सन् २४४
इसके वंशधर	१४६ वर्षों तक	
प्रवरसेन प्रथम		सन् ४००
रुद्रसेन प्रथम		सन् ४२५
पृथ्वीसेन प्रथम		सन् ४५०
रुद्रसेन द्वितीय		सन् ४७५
प्रवरसेन द्वितीय		सन् ५००
नरेन्द्रसेन		
पृथ्वीसेन द्वितीय		

इस वंश के चार ताम्रपत्र सिवनी जिले के पिड़ाई, अमरावती जिले के चम्पक, छिंदवाड़ा जिले के डुडिया और बालाघाट में क्रमपूर्वक पाये गये हैं। इनमें से तीन प्रवरसेन द्वितीय के शासन काल के हैं और चौथा महाराज पृथ्वीसेन द्वितीय के समय का है। ब्राह्मणों को दिये गये ग्रामों या भूमि के ये चारों दानपत्र हैं। परन्तु इनसे यह ऐतिहासिक वृत्तान्त एकत्र किया जा सकता है कि रुद्रसेन प्रथम भारशिवगोत्र के प्रसिद्ध भवनाग का दौहित्र था। उन लोगों का भारशिव नाम शायद इसलिए पड़ गया क्योंकि वे शिव की मूर्ति को धारण किये रहते

थे। यह बात महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे यह प्रमाणित होता है कि आजकल अपने शिर पर या वगल में रौप्य या ताम्र का शिवलिङ्ग धारण किये रहने की जो प्रथा दक्षिण भारत के लिङ्गायतों मे प्रचलित है वह ईसा की आठवीं सदी के प्रारम्भ मे भी थी। रुद्रसेन द्वितीय का विवाह मगध के बलशाली सम्राट् देवगुप्त की पुत्री के साथ हुआ था। इस वश के सम्बन्ध में एक दूसरी ध्यान देने योग्य बात, जो हमें इन ताम्रपत्रों से ज्ञात होती है, यह है कि प्रवरसेन द्वितीय के पुत्र नरेन्द्रसेन ने अपने बडे भाई को सिहासन से उतार कर राज्य पर अधिकार कर लिया था। उसने कुन्तल के राजा की कन्या के साथ विवाह किया। वह कोशल, मेखल और मालव के राजाओ का अधिपति बन गया। अमरकण्टक पहाड से मिले हुए देश का नाम मेखल है। चम्पक और दुडिया के ताम्रपत्रों से यह बात भी मालूम पडती है कि प्रवरसेन द्वितीय ने इन लेखों को प्रवरपुर से ही निकाला था और बालाघाट-वाले ताम्रपत्र से यह बात प्रकट होती है कि वह राजा के निवास-स्थान वेम्बर से प्रचारित हुआ था।

अतएव इससे यह प्रतीत होता है कि राजधानी प्रवरपुर से वेम्बर को उठ गई थी।। परन्तु अभी तक इन दोनों स्थानो का पता नहीं लगा है।

चालुक्य—अब हम चालुक्य राजाओ के अधीन वरार के इतिहास की ओर झुकते हैं। अग्निवशी चार राजपूत जातियो

में चालुक्य लोग भी एक हैं। पुराणों में लिखा हुआ है कि एक बार वशिष्ट ने आबू पहाड़ पर पवित्र अग्नि उत्पन्न की। उन्होंने देवताओं से यह प्रार्थना की कि दस्युओं या अनार्यों के साथ युद्धों में वे ब्राह्मणों की सहायता करें। देवताओं ने उनकी प्रार्थना सुनी। उस पवित्र अग्नि-कुण्ड से एक एक करके चार योद्धा निकल आये। उन योद्धाओं के नाम चालुक्य या सोलङ्की, पृथ्वीधर या परिहार, प्रमार और चहुमान हैं। अयोध्या चालुक्य-वंश का मूलस्थान था। धीरे धीरे इसकी एक शाखा दक्षिण में आ बसी। कहा जाता है कि ये लोग सप्त मातृकाओं की सरक्षा में रहे थे और कार्तिकेय देवता ने उन्हें सुखसम्पन्न किया था। इनका राज्य कृष्णा नदी से नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। अन्त में इसी वंश के महाराज पुलकेशी प्रथम ने अपनी राजधानी वैतापी में स्थापित की। बीजापुर जिले का आधुनिक बदामी ही यह स्थान है। इस वंश के राजाओं की सूची और उनके सम्भाव्य सन् इस प्रकार हैं—

१ जयसिंह—सन् ४७०
२ रणरङ्ग
३ पुलकेशी प्रथम—(सत्याश्रय श्री पुलकेशी वल्लभ)
४ कीर्तिवर्मा प्रथम—सन् ५६७—५६१,
५ मङ्गलीश—सन् ५६१—६१०
६ पुलकेशी द्वितीय—(ह्वेन्साङ्ग सन् ६३६ में इससे मिला था)

७ विक्रमादित्य प्रथम—(सन् ६८० मे शासन समाप्त)
८ विनयादित्य—सन् ६८०—६९७
९ विजयादित्य—सन् ६९७—७३३
१० विक्रमादित्य द्वितीय—सन् ७३३—७४७
११. कीर्तिवर्मा द्वितीय—(सन् ७५३ मे राज्य छीन लिया गया)

जयसिंह—यह इस व श का पहला राजा था। इसी ने अपने वश को दक्षिण मे प्रख्यात किया। जो राष्ट्रकूट-वश उस समय इस भाग मे शासन कर रहा था उससे इसने कई लडाइयॉ लडीं और उसे पराजित कर इस देश का राज्य प्राप्त कर लिया। इसके बाद रणरङ्ग ने शासन किया। कहा जाता है कि वह वडा शूर और तेजस्वी एव दीर्घकाय पुरुष था।

पुलकेशी प्रथम—यह इस वश का तीसरा राजा था। यह वडा यशस्वी था। इसने अश्वमेध यज्ञ किया और सत्याश्रय श्री पुलकेशी वल्लभ की पदवी ग्रहण की। इसने वैतापी—वीजापुर जिले के आधुनिक वदामी—को अपनी राजधानी वनाया और अपने राज्य से वौद्ध-धर्म का उच्छेद कर दिया।

कीर्तिवर्मा—(सन् ५६७—५९१)—पुलकेशी के कीर्तिवर्मा और मङ्गलसेन नामक दो पुत्र थे। उसकी मृत्यु के वाद कीर्तिवर्मा उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने नल नामधारी नामक वश के राजाओं को अपने वश मे किया, जो मौर्य लोग

उत्तरीय कोंकण में शासन करते थे उनको पराभूत किया और उत्तरी किनारे के वनवासी के कदम्ब लोगों को भी पराजित किया ।

मङ्गलीश—कीर्तिवर्मा के तीन पुत्र थे। जब वह मर गया तब वे सब छोटे थे। अतएव उसकी मृत्यु के बाद मङ्गलीश सिंहासन पर बैठा। उसने कलचुरि-वंश के महाराज बुद्ध को सन् ५५० में हराया। कहा जाता है कि उसने पूर्वी और पश्चिमी समुद्र के किनारों तक आक्रमण किये थे। पश्चिमी किनारे के रेवा द्वीप को उसने जीता था। रेडी का पुराना नाम रेवती था। यह द्वीप वेंगलोमी के दक्षिण कई मील की दूरी पर स्थित है।

बदामी के गुफा-मन्दिर के एक उत्कीर्ण लेख से यह प्रतीत होता है कि यह राजा हिन्दूधर्म का बड़ा पृष्ठ-पोषक था। उसने इस मन्दिर में विष्णु की मूर्ति स्थापित की और नारायण-बलि नामक कृत्य के करने के लिए एक ग्राम भी लगा दिया। हम पहले कह आये हैं कि कीर्तिवर्मा के तीन पुत्र थे—पुलकेशी, विष्णुवर्मा और जयसिंह। अपने पिता की मृत्यु के समय ये बहुत छोटे थे, अतएव मङ्गलीश ही गद्दी पर बैठा था। अपने शासन के पिछले वर्षों में मङ्गलीश एक षड्यन्त्र रचने लगा। वह अपने भतीजे पुलकेशी को राज्य का उत्तराधिकारी नहीं करना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि मेरी मृत्यु के बाद सिंहासन का अधिकारी मेरा पुत्र हो। परन्तु वह अपने प्रयत्न

में विफल हुआ। राज कुमार पुलकेशी बडा योग्य था। उसने अपने चाचा के सारे षड्यन्त्रों को विफल कर दिया। अन्त में सन ६१० में उसके चाचा की मृत्यु हो गई।

पुलकेशी द्वितीय—अपने चाचा की मृत्यु के बाद यह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा। इसी समय अप्पैक और गोविन्द नाम के दो राजाओ ने उस पर चढाई कर दी। अप्पैक पराजित हुआ और भाग निकला। गोविन्द ने आत्म-समर्पण कर दिया और पुलकेशी का सहायक बन गया। गोविन्द राष्ट्रकूट वश का राजा था। इसके बाद पुलकेशी ने कदम्बों पर चढाई की। उसने इनकी राजधानी वनवासी को जा घेरा और उस पर अधिकार कर लिया। चेरा (आधुनिक मैसूर) और अलूपा देश के राजाओ को भी उसने हराया। ये लोग भी उसके सहायक बन गय।

इसके बाद पुलकेशी दिग्विजय करने को निकला। लाट, मलय, और गुर्जर आदि देशों को उसने जीत लिया। उन दिनो कन्नौज का महाराज हर्षवर्द्धन उत्तर भारत का सम्राट् था। हर्षवर्द्धन ने अपना साम्राज्य नर्मदा नदी के आगे बढाने के विचार से एक सेना दक्षिण की ओर भेजी। महाराज पुलकेशी ने इस सेना को पराजित कर महाराज हर्षवर्द्धन के हाथियों की सेना का नाश कर डालने में सफल हुआ। इस जीत से उसको बडी प्रसिद्धि हुई। इस घटना के बाद उसने 'परमेश्वर' की पदवी धारण की। कोशल और कलिङ्ग के राजाओ ने भी

उसका आधिपत्य स्वीकार किया। उसने काञ्चीपुर या काञ्जीवरम नगर का भी अवरोध किया। कावेरी नदी को पार कर चोल, पाण्ड्य और केरल देशों पर उसने चढ़ाई की। इस तरह सम्पूर्ण दक्षिण मे अपनी प्रभुता स्थापित कर उसने शान्तिपूर्वक अपने राज्य का शासन किया। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन्साङ्ग के सन ६३९ मे भारत मे आने से पहले ही उसके दिग्विजय का कार्य समाप्त हो चुका था। ह्वेन्साङ्ग ने पुलकेशी और उसके देश का वर्णन इस तरह किया है—वह सटली (क्षत्रिय) जाति का है। उसका नाम पुलकेशी है। उसके विचार गहरे और गम्भीर हैं और सभी उसकी दया और कृपा के पात्र हैं। उन दिनो भारत दो सम्राटों के बीच बँटा सा था। हिमालय से लेकर नर्मदा तक हर्षवर्द्धन का शासन था और सारे दक्षिण भारत पर पुलकेशी की प्रभुता स्थापित थी। पुलकेशी की कीर्ति विदेशों मे भी पहुँच गई है। एक अरबी पुस्तक मे लिखा है कि उसने फारस के बादशाह खेसरोज के पास, जिसने सन् ५९१ से सन् ६२८ तक राज्य किया, अपना राजदूत भेजा था।

विक्रमादित्य प्रथम—पुलकेशी द्वितीय का उत्तराधिकारी उस का पुत्र विक्रमादित्य प्रथम हुआ। शिलालेखो में उसका उल्लेख पुलकेशी के प्रिय तनय के नाम से हुआ है। पुलकेशी ने अपना राज्य अपने दोनो पुत्रो मे बाँट दिया था। उसके प्रबन्ध के अनुसार विक्रमादित्य मुख्य राजधानी के सिंहासन

पर बैठा और ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रादित्य को राज्य के छोर का एक प्रदेश प्राप्त हुआ। अपने पिता की भाँति विक्रमादित्य भी बडा भारी योद्धा था। उसने काञ्ची, चोल, पाण्ड्य और केरल के राजाओ को युद्ध मे हराया। इन लोगो ने उसकी वश्यता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। इस राजा के शासन-काल मे चालुक्य-वश की एक शाखा गुजरात में स्थापित हुई। विक्रमादित्य के बाद उसका पुत्र विनयादित्य राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। इसका शासन-काल सन् ६८० से सन् ६९६ तक था। इसने भी अपने पितामह की भाँति उत्तर-भारत के किसी बडे राजा से, जिसके नाम का पता नहीं लगता, युद्ध कर उसे पराजित किया था।

विक्रमादित्य द्वितीय-(सन् ७३३-७४७)-विजयादित्य के बाद उसका पुत्र विक्रमादित्य द्वितीय सिहासन पर बैठा। अपने राज्यभिषेक क बाद शीघ्र ही उसे अपने खान्दानी शत्रु पल्लव राजाओं पर चढाई करनी पडी। इस समय के पल्लव-राज का नाम नन्दिपोत वर्मा था। वह पराजित हुआ और युद्ध-भूमि से भाग गया। चालुक्यराज विक्रमादित्य ने काञ्ची-नगर मे प्रवेश किया, परन्तु उसे विनष्ट नहीं किया। इसके विपरीत उसने ब्राह्मणों और असहाय लोगो को बहुत धन दान किया। उसकी महारानी ने इस विजय की स्मृति मे कलदगी जिले के पत्तादकल मे एक मन्दिर बनवाया।

कीर्तिवर्मा द्वितीय—उसके पुत्र कीर्तिवर्मा द्वितीय ने

सन् ७४७ मे शासन करना आरम्भ किया। महाराष्ट्र देश से चालुक्यो का प्रभाव इसी राजा के शासन में हटा दिया गया था और उस का शासन राष्ट्रकूट राजाओं के हाथों मे चला गया था।

आठवीं सदी के मध्य में प्राचीन राष्ट्रकूट वंशी दन्तिदुर्ग ने कीर्तिवर्मा को पराभूत किया। उसने पश्चिमी चालुक्यवंश की मुख्य शाखा का उच्छेद कर उसके दक्षिण के राज्य पर अधिकार जमा लिया। उसके उत्तराधिकारी लगभग सवा दो सदियो तक इस पर अधिकार किये रहे। अन्तिम राष्ट्रकूट राजा महाराज काका द्वितीय को चालुक्य वंशी तैल द्वितीय ने सन् ६७३ मे युद्ध मे हराया। उसकी राजधानी कलिओनी में थी। यह इस समय हैदराबाद-राज्य के बीदर जिले मे एक कस्बा है। परन्तु तैल द्वितीय उस राज्य के उत्तरी प्रदेशो में अपना अधिकार पूर्ण रूप से स्थापित करने में समर्थ न था। उन पर राष्ट्रकूटो का ही शासन बना रहा। मालवा के प्रमार-राज वाक्पति द्वितीय, मुञ्ज, के साथ जब तैल की पहले की लड़ाइयाँ हुई थीं उस समय मालवा और दक्षिण के राज्यों के बीच गोदावरी नदी सीमा थी और बरार प्रदेश मालवाराज्य के अन्तर्गत था। परन्तु सन् ६६५ के लगभग तैल ने मालवा के राजा को पराजित किया और एक बार फिर बरार पर चालुक्यों का अधिकार हो गया। बारहवीं सदी के अन्तिमार्द्ध मे चालुक्यों की प्रभुता विप्लव हो जाने के कारण

नष्ट हो गई थी और उसी सदी के अन्तिम भाग मे उनके राज्यों का अधिकाश भाग उत्तर ओर देवगिरि के यादवो ने और दक्षिण ओर द्वारसमुद्र के हयशालों ने ले लिया था।

देवगिरि के यादव—यादव वश का सस्थापक भिल्लम था। वह चालुक्य राज्य का एक सामन्त राजा था। सन् ११६१ में हयशाल-वशी त्रिभुवनमल्ल वीर वल्लाल द्वितीय ने उसे युद्ध मे मार डाला। इस वश का तीसरा राजा सिगन था। इसने सन् १२१० से सन् १२४७ तक राज्य किया। इसकी चालुक्य तथा राष्ट्रकूट राजाओं से अपने अपने राज्य के विस्तार के लिए वडी स्पर्धा थी। इस वश का एक दूसरा राजा महादेव उग्र सार्वभौम था। वह महाराज सिहन का पौत्र था। सन् १२६० से लेकर सन् १२७१ तक उसने शासन किया। उसके एक ब्राह्मण मन्त्री का नाम हेमाद्रि था। वरार और उसके पडोस के पुराने हिन्दू-मन्दिर उसी के बनवाये हैं। उस जवार के उन मन्दिरों की कारीगरी का नाम हेमद-पन्थी पड गया है। हेमाद्रि के ही आश्रय मे वोपदेव रहता था। वोपदेव ने हरिलीला, सतश्लोकी और मुक्तिफल नामक पुस्तकें बनाई हैं। मुग्धवोध व्याकरण भी उसी का वनाया कहा जाता है।

महादेव के वाद उसका उत्तराधिकारी उसका भतीजा रामचन्द्र हुआ। मुसलमान इतिहासकारो ने इसे रामदेव के नाम से लिखा है। देवगिरि-राज्य का यही अन्तिम स्वतन्त्र राजा था।

मुसलमानों की चढ़ाई—दिल्ली के बादशाह फिरोज-शाह खिलजी के दामाद और भतीजे अलाउद्दीन ने सन् १२९४ में चँदेरी और एलिचपुर के मार्ग से दक्षिण पर चढ़ाई की। यादव-राज रामचन्द्र को देवगिरि के युद्ध में हरा कर उसने राजा के पुत्र को भी, जिसने उस पर चढ़ाई की थी, पराजित किया। निस्तार-मूल्य के रूप में एक भारी रकम के पाने पर अलाउद्दीन ने देवगिरि राज्य का परित्याग किया। उसे एलिचपुर का राजस्व भी अर्पण किया गया था। परन्तु उस इलाके का प्रबन्ध हिन्दुओं के ही हाथों में रहा। हिन्दुस्तान लौट आने पर अलाउद्दीन ने अपने चाचा को कड़े में मार डाला और सिंहासन पर खुद कब्जा कर लिया। अपने शासन काल में वह दक्षिण पर लगातार चढ़ाइयाँ करता रहा, परन्तु उसकी मृत्यु के पीछे सन् १३१६ में जो गड़बड़ हुआ था उससे लाभ उठा कर रामचन्द्र के दामाद हरपालदेव ने विद्रोह कर दिया। सन् १३१७-१८ में कुतुबुद्दीन मुबारक शाह ने हरपाल-देव को पराजित किया। कैद कर लिए जाने पर जीते जी उसकी खाल खिंचवा लीगई और देवगिरि के एक फाटक में काँटों में चिपका दी गई। उसका राज्य दिल्ली-साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। इस तरह बरार पहले पहल मुसलमानों के अधिकार में आया और तब से अङ्गरेजों के हाथ आने तक वह मुसलमानों के द्वारा शासित होता रहा।

तीसरा अध्याय

हिन्दू-शासन काल में बरार की साधारण अवस्था

हमने पूर्व अध्याय में ईसा के १७० वर्ष पूर्व से लेकर तेरहवीं सदी तक का विदर्भ की राजनैतिक घटनाओं का क्रम-बद्ध इतिहास वर्णन किया है। किसी प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ-प्रणेता द्वारा लिखित इस काल का कोई इतिहास नही मिलता है। उस समय का हाल हम केवल तत्कालीन सिक्कों, चट्टानों और ताम्रपत्रों के लेखो से जान सकते हैं।

सौभाग्यवश भारत के इस भाग के राजाओं ने उत्कीर्ण लेख अधिक सख्या मे निकाले हैं। विद्वानों ने उन्हे पढ लिया है और उस सामग्री का उपयोग कर एक क्रमबद्ध इतिहास लिखना सम्भव हो गया है। अब हम आगे इस समय के लोगों की अवस्था का वर्णन करते हैं। इसका पहला भाग बौद्धयुग है। यह सन् ५०० मे समाप्त होता है। इसका अन्तिम भाग पौराणिक युग है। हिन्दू-काल में विदर्भ देश इस प्रदेश का अत्यन्त धनाढ्य और सभ्य भाग था।

धर्म—बौद्धयुग मे बौद्ध-धर्म का विदर्भ मे अच्छा प्रचार था। भण्डक और सिरपुर के राजा बौद्ध थे। चालुक्य राजा बौद्ध और हिन्दू दोनों धर्मों के अनुयायी थे। वे लोग सभी

धर्मों के साथ सहानुभूति रखते थे। चालुक्य राज पुलकेशी द्वितीय कट्टर बौद्ध था। हम पहले ही लिख चुके हैं कि सातवीं सदी में सम्पूर्ण भारत दो बड़े भारी राजाओं के बीच बँटा हुआ था। हर्षवर्द्धन उत्तर भारत में राज्य करता था और पुलकेशी दक्षिण भारत में।

चालुक्य राजाओं के शासन-काल में जैन धर्म भी उन्नत था। जिस जैनी कवि रविकीर्ति ने ऐहोला के उत्कीर्ण लेख की रचना की थी वह पुलकेशी द्वितीय और विक्रमादित्य द्वितीय के आश्रय में रहता था। राष्ट्रकूट और यादवों के शासनकाल में पौराणिक हिन्दू देवताओं की पूजा प्रचलित हुई। इनके समय में मन्दिरों के बनने का ताँता बँधा और शिव तथा विष्णु की पूजा होने लगी।

महानुभव पन्थ—प्रचलित हिन्दूधर्म के विरुद्ध एक सम्प्रदाय का अस्तित्व बरार में है। यह मनभव कहलाता है। परन्तु इसका शुद्ध नाम महानुभव है। इस पन्थ के अनुयायी इस नाम को अभिमान के साथ ग्रहण करते हैं। यह नाम 'महा' बड़ा और 'अनुभव' ज्ञान से बना है। किसी कानूनी कार्रवाई के सम्बन्ध में पूने के अध्यापक आर० जी० भण्डारकर ने इस पन्थ की धार्मिक पुस्तकों तथा कागजों की जाँच पड़ताल की। उनसे यह प्रमाणित हुआ कि इस पन्थ को करहद जाति के चक्रधर नाम के एक ब्राह्मण ने चलाया था। यह ब्राह्मण कृष्णराज यादव का (सन् १२४७-६०) समकालीन था।

उससे भयभीत रहती हैं। परन्तु केवल इस राज्य के ही लोग उससे पराभूत नहीं हुए हैं।

स्थापत्य और मूर्ति-निर्माणकला—गृह और मूर्ति-निर्माण की कलाओं से विदर्भ सम्पन्न है। डाकृर फर्गुसन ने बतलाया है कि बौद्ध-हिन्दुओं ने अपनी गृह-निर्माण-कला को बहुत प्रारम्भिक काल से उन्नत किया था और इस बात के लिए वे किसी दूसरी जाति के कृतज्ञ नहीं हैं। शुद्ध भारतीय शैली की गृह-निर्माण-कला के श्रेष्ठतम और अत्यन्त मनोहर नमूने विदर्भ में विद्यमान हैं। अजन्ता पहाड़ियों के प्रसिद्ध गुफा-मन्दिर (विहार) उसी कला के नमूने हैं। ये मन्दिर बौद्ध-मठों के सुन्दर नमूने हैं और उनका महत्व अतुलनीय है। उनकी दीवारों पर आज भी ऐसे चित्र अंङ्कित हैं जिनकी बराबरी के चित्र भारत के किसी विहार में नहीं मिलते। उन मन्दिरों का १६ नम्बर का विहार ६५ फुट लम्बा चौड़ा है। इसमें २० खम्भे हैं। भिक्षुकों के रहने के लिए इसके दो ओर १६ कोठरियाँ बनी हैं। बीच में एक बहुत बड़ा कमरा है। सामने बरामदा और पीछे एक देवालय बना है। सब दीवारों पर बुद्ध के जीवन-सम्बन्धी या साधुओं की गाथाओं के आधार पर चित्र अङ्कित हैं। १७ नम्बर का विहार बनावट में १६ नम्बर के विहार के ही सदृश है। वह राशिमण्डल की गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। लोगों ने भूल से बौद्ध-चक्र की मूर्ति को राशि-मण्डल के चिह्न समझ लिये हैं। ये विहार ईसा

की पाँचवीं सदी में पत्थर काट कर बनाये गये थे। उस समय गुप्त लोग भारत के सम्राट् थे। अब अजन्ता की गुफायें निज़ाम-राज्य के अन्तर्गत हैं और ये उसके पश्चिमोत्तर भाग में स्थित हैं।

इलोरा नाम का एक दूसरा रमणीक स्थान है। इसमें तीन मन्दिर हैं। इनकी बनावट में वह अन्तर विद्यमान है जिनसे यह स्पष्ट होजाता है कि बौद्ध-तक्षणकला किस तरह हिन्दू-तक्षणकला में धीरे धीरे परिणत हुई थी। पहले मन्दिर का नाम दोतल है। यह दो-मञ्जिला एक बौद्ध विहार है। दूसरे का नाम तीनतल है। यह दोतल के ही सदृश है। यद्यपि इस मन्दिर में बौद्ध नक़्क़ाशी विद्यमान है तथापि उसमें सादेपन का इतना अधिक अभाव है कि उसका ब्राह्मणों द्वारा अपनाया जाना न्यायसङ्गत जँचता है और ब्राह्मणों ने उसे अपने अधिकार में कर भी लिया है। तीसरे मन्दिर का नाम दशावतार है। यह मन्दिर यद्यपि निर्माण-कला में उपर्युक्त दोनों मन्दिरों से मिलता-जुलता है, परन्तु निर्माण कला की दृष्टि से यह एक हिन्दू-मन्दिर ही सिद्ध होता है। जब हिन्दुओं ने बौद्ध-धर्म पर धीरे धीरे पूर्ण विजय प्राप्त कर लिया तब कैलाश नाम का प्रसिद्ध मन्दिर बना था। इसी मन्दिर के कारण इलोरा भी भारत के आश्चर्य्यपूर्ण स्थानों में परिणत हुआ है। इस मन्दिर को राष्ट्रकूट-राज महाराज कृष्णराज ने सन् ७५३ और ७७५ के बीच बनवाया था। कहा जाता है कि जब यह मन्दिर

बन कर तैयार हुआ तब जिस शिल्पकार ने इसे बनाया था वह इसे देख कर आश्चर्य्य से चकित हो गया। उसीके मुँह से एकाएक यह निकल पडा, "आश्चर्य्य है। नही जानता कि मैंने इसे कैसे बना लिया।" २७० फुट लम्बा और १५० फुट चौडा एक बडा भारी गड्ढा एक ठोस चट्टान से काट निकाला गया है। इस आयताकार स्थान के केन्द्र मे ८० से ६० फुट तक ऊँचा विमान सहित यह मन्दिर स्थित है। इसके सिवा इसी मन्दिर मे सोलह स्तम्भों की एक बडी डेवढी, पुल से सयुक्त एक पृथक् उसारा और एक सिंहद्वार बना हुआ है। यह मन्दिर पत्थर की पूरी चट्टान तराश कर काट निकाला गया है। इस मन्दिर की इमारत द्रविड ढङ्ग की है। चाँदा जिले के भण्डक से दक्षिण-पश्चिम लगभग डेढ मील दूर विजयसेन नाम की पहाडी मे विचित्र बनी हुई एक बौद्ध-गुफा है। अनुमान किया जाता है कि यह गुफा ईसा की दूसरी या तीसरी सदी मे बनायी गई होगी। देवगिरि के यादवराज महादेव और रामचन्द्र के शासन-काल मे धर्मशास्त्र का प्रसिद्ध प्रणेता हेमाद्रि प्रख्यात हुआ था। स्थापत्य का वह ढङ्ग जो हेमदपन्थी कहलाता है उसी का चलाया कहा जाता है। विदर्भ और महाराष्ट्र देश मे इस ढङ्ग के बहुत मन्दिर हैं।

व्यापार और उद्योग-धन्धे—पहले की अपेक्षा बौद्ध-युग म व्यापार समुन्नत था। पेरीपीज के प्रणेता के अनुसार पश्चिमी देशो से बरूगाजा या भरुकच्छ, आधुनिक भडौच को

जहाज आते थे और जो माल उनपर आता था वह वहाँ से देश के भीतरी भाग में पहुँचाया जाता था। अधिक परिमाण में गोमेदक पत्थर पैठन (बरार मे) से और साधारण रुई, मलमल, पकी रँगी रुई तथा स्थानिक दूसरी बनी बनाई चीजें टगौर से गाडियो मे बरूगाजा को लाई जाती थीं और तब वहाँ से उनका चालान पश्चिमी देशों को होता था।

साहित्य—संस्कृत-साहित्य के अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ-प्रणेताओं मे से कुछ विदर्भ देश मे भी पैदा हुए हैं।

प्रसिद्ध कवि भवभूति विदर्भ ही मे पैदा हुआ था। वह सन् ७०० मे विद्यमान था और कन्नौज के राजदरबार मे रहता था।

उन दिनों कन्नौज भारत की साहित्यिक राजधानी थी। भवभूति के मालती-माधव नामक नाटक मे विदर्भ का चित्र अङ्कित है। इसमें मालती और माधव की प्रेम कहानी का वर्णन है। चित्त वृत्ति-द्रावक और करुण-रस-पूर्ण भवभूति का दूसरा नाटक उत्तर-रामचरित है। कवि के रूप मे भवभूति कालिदास को छोड कर किसी से न्यून नहीं है।' मिताक्षरा का विद्वान् प्रणेता विज्ञानेश्वर चालुक्य राजाओं की राजधानी कल्याण का निवासी था। मिताक्षरा हिन्दुओं के प्रामाणिक धर्मशास्त्र याज्ञवल्क्यसंहिता की टीका है। विज्ञानेश्वर विद्याप्रेमी विक्रमादित्य द्वितीय के दरबार में रहता था। ग्यारहवीं सदी के अन्त में वह विद्यमान था।

चालुक्यराज सोमेश्वर द्वितीय स्वय बडा भारी विद्वान् था विक्रमादित्य द्वितीय के बाद वह सिंहासन पर बैठा था उसने विश्वकोष जैसे अभिलषितार्थ-चिन्तामणि नाम के एक ग्रन्थ की रचना की थी। वह सन् ११२७ मे जीवित था चतुर्वर्ग-चिन्तामणि का प्रसिद्ध प्रणता हेमाद्रि यादव राजाओ की राजधानी देवगिरि का अधिवासी था। वह देवगिरि के महाराज रामचन्द्र का मन्त्री था। यह राजा सन् १२७१ में विदर्भ का शासक था। हेमाद्रि बडा बुद्धिमान था चिकित्सा-शास्त्र के आयुर्वेद-रसायन और व्याकरण के एक ग्रन्थ का वह रचयिता था। विदर्भ के सारे प्राचीन मन्दिर जो हेमदपन्थी कहलाते हैं उसी के चलाये ढङ्ग के बने कहे जाते हैं। एक बडा प्रसिद्ध दूसरा ग्रन्थ-प्रणेता बोपदेव भी विदर्भ का निवासी था। वह हेमाद्रि का आश्रित था। उसने हरि-लीला नामक एक पुस्तक बनाई है। प्रसिद्ध व्याकरण मुग्ध-बोध उसी का बनाया हुआ है। वैष्णव धर्म की शिक्षाओं को प्रकट करनेवाली पुस्तक मुक्ति-फल की रचना का श्रेय भी उसी को दिया जाता है।

चौथा अध्याय

चेदि में हिन्दुओं का शासन

सन २४९ से ११८० तक

हमने उपोद्घात में बतला दिया है कि मध्य-प्रदेश के जिस उत्तरी भाग मे जबलपुर, दमोह, मण्डला और नरसिहपुर के जिले हैं वह प्राचीन काल मे चेदि-देश या दाहल कहलाता था। इसका शासन कलचुरि-राजपूत-वश के हाथ में था। अत्रि और यदु द्वारा वे अपनी उत्पत्ति चन्द्रमा से बतलाते हैं। यदु से हैहय उत्पन्न हुआ। हैहय के नाम से ही इस वश का नाम हैहय-वश पड गया। हैहय से कार्तवीर्यार्जुन की उत्पत्ति हुई। सभी उत्कीर्ण लेखो में कार्तवीर्यार्जुन ही इस वश का सस्थापक माना गया है। इस वंश की राजधानी या मुख्य स्थान त्रिपुर था। यह अब तिअर कहलाता है और जबलपुर तथा भडाघाट के आस पास में स्थित है। इस वश के राजाओं ने एक सवत् चलाया था। उसे चदि सवत् कहते हैं। इस सवत् का पहला वर्ष सन् २४८ से प्रारम्भ होता है। बहुत सम्भव है कि यह प्रारम्भिक तिथि उनके कालिञ्जर विजय की सूचक हो। इस वश के सबसे प्राचीन राजा का नाम शकगण तथा उसके पुत्र का बुद्ध है। इनका उल्लेख उत्कीर्ण लेखो मे हुआ है।

कहा गया है कि चालुक्यवशी महाराज मङ्गलीश ने वुद्ध को सन् ५५० मे हराया था। हमे इस वश के राजाओं की अविच्छिन्न वशावली कोकल्ल प्रथम से मिलती है। इसका शासन-काल सन् ८७५ से माना जाता है। इस वश के राजाओं की सूची और उनके सन् इस तरह हैं —

१	कोकल्ल प्रथम	सन्	८७५—९००
२	मुग्धतुङ्ग	,,	९००—९२५
३	केयूरवर्ष	,,	९२५—९५०
४	लक्ष्मण	,,	९५०—९७९
५	युवराज	,,	९७९—१०००
६	कोकल्ल द्वितीय	,,	१०००—१०१५
७	गाङ्गेयदेव	,,	१०१५—१०४०
८	कर्णदेव	,,	१०४०—१०८०
९	यशकर्णदेव	,,	१०८०—११२३
१०	गयकर्णदेव	,,	११२३—११५६
११.	नरसिंहदेव	,,	११५६—११६०
१२	जयसिंहदेव	,,	११६०—११७८
१३	विजयसिंहदेव	,,	११७८—१२२५

कोकल्ल प्रथम—सन् ८७५

चेदि देशी कलचुरियो के अधिकाश उत्कीर्ण लेख उनके पूर्व पुरुप, कोकल्ल की प्रशसा मे ही खोदे गये हैं। उसका समय सन् ८७५ से माना जाता है। उसने नहदेवी नाम की चन्देल

राजकुमारी के साथ विवाह किया था। अपनी पुत्री का विवाह उसने दक्षिण के प्रसिद्ध कृष्णराज के साथ किया था। वह कन्नौज के महाराज भोज का समकालीन था। बिल्हरी के उत्कीर्ण लेख से हमें पता लगता है कि उसने देश के इस भाग को जीत लिया और एक शक्तिशाली राज्य की सस्थापना की।

मुग्धतुङ्ग—सन् ९००—९२५

मुग्धतुङ्ग कोकल्ल प्रथम का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी था। एक उत्कीर्ण लेख मे उसकी उपाधि धवल दी हुई है। उसने कोशल देश के राजा से पाली नाम का एक इलाका छीन लिया था। दक्षिण के कृष्णराज के आमात्य कौडिन्य वाचस्पति ने उसे पराजित किया था। इस युद्ध मे रला और रोडोपदी नाम के दो इलाके राज्य से निकल गये। ये दोनों इलाके चेदि-राज्य के अन्तर्गत थे।

केयूरवर्ष—मुग्धतुङ्ग के बाद केयूरवर्ष उत्तराधिकारी हुआ। उसने चालुक्यवंशी नाहला नामक राजकुमारी के साथ विवाह किया। इस राजकुमारी ने एक शिवमन्दिर बनवाया और उसमें उसने कई गाँव लगा दिये। इनमें से एक का नाम पान्डी है। यह गाँव बिल्हरी से पश्चिमोत्तर ४ मील दूर आज भी स्थित है।

लक्ष्मण—सन् ९५०—९७९

लक्ष्मण केयूरवर्ष का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी था। उसने कोशल के राजा को हराया और उडीसा पर चढाई की।

वहा मे वह कालीय नामक साँप की एक मूर्ति ले आया। यह मूर्ति सौराष्ट्र में सोमेश्वर के प्रसिद्ध मन्दिर में शिव के पास स्थापित है। विल्हरी मे लक्ष्मण सागर नाम के जो पॉच बडे बडे तालाव हैं उनको उसी ने बनवाया था।

विल्हरी में एक महल के भग्नावशेष हैं। लोग कहते हैं कि ये खँडहर महाराज लक्ष्मण के महलों के हैं। चालुक्यवंशी विक्रमादित्य चतुर्थ ने इस राजा की पुत्री बनथादेवी के साथ विवाह किया था। मुरवारा तहसील के करीतलाई में एक उत्कीर्ण लेख है। इस प्रदेश में पाये गये कलचुरि-वंश के उत्कीर्ण लेखों मे यह लेख सब से पहले का मालूम पडता है।

जिस विष्णु-मन्दिर को सोमेश्वर मन्त्री ने बनवाया था उसी की व्यवस्था के लिए महाराज लक्ष्मण ने दीर्घसग्गिक नाम का एक ग्राम उसमे लगा दिया था। इसी बात का साराश पूर्वोक्त लेख मे दिया गया है। इससे यह भी पता चलता है कि महाराज लक्ष्मण के पुत्र तथा उसकी महारानी ने भी उसी मन्दिर म तीन गॉव लगाये थे। दीर्घसग्गिक वर्तमान दिग्घी गॉव मालूम होता है। यह करीतलाई से छ मील पूर्व है।

युवराज—सन् ९७९—१०००।

युवराज महाराज लक्ष्मण का छोटा पुत्र था। बडे का नाम शङ्करगण था। मालवा के महाराज भोज के चचा वाक्पति ने युवराज को हराकर त्रिपुर पर अधिकार कर लिया था। ये महाराज भोज धारानगरी पर शासन करनेवाले प्रमार-वंशी प्रसिद्ध

भोजराज थे। युवराज का एक शिलालेख बिल्हरी में मिला है। यह अब नागपुर के अजायब-घर में रक्खा है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग मे यह लिखा है कि इस राजा की दादी नादला ने एक शिव-मन्दिर बनवाया था और इसमें उसने सात गाँव लगाये थे। धगपाटक, पोडी, नागवल, खेलपाटक, विदा, सज्जपति और गोष्ठपति नाम के वे गाँव थे। उस लेख के दूसरे भाग में यह वर्णन है कि महाराज लक्ष्मण ने अपनी मा का यह मन्दिर उन साधुओ को दे दिया जो कदम्बगुह और मत्तमापुर मे रहते थे और त्रिपुर, सौभाग्यपुर, लवणनगर, दुर्लभपुर और विमानपुर के निवासियो को इस मन्दिर की मरम्मत की जाने के लिए धन-दान करते रहने का आदेश दिया।

कोकल्ल द्वितीय—सन् १०००–१०१५।

कोकल्ल द्वितीय युवराज का पुत्र और उत्तराधिकारी था। वह बडा वीर योद्धा था। वह सम्पूर्ण चेदि और कोशल देश का, जो मालवा से सम्भलपुर तक फैला हुआ है, राजा कहा गया है। उसी ने कोशल के पाण्डव-वंश का उच्छेद किया था।

गाङ्गेयदेव—१०१५–१०४०।

कोकल्ल द्वितीय का पुत्र और उत्तराधिकारी गाङ्गेयदेव था। वह बडा प्रसिद्ध और बलशाली राजा था। उसने विक्रमादित्य की पदवी धारण की। गङ्गा पार कर गङ्गा और यमुना के बीच के अधिकाश देश को उसने विजय किया। उन दिनो कन्नौज का राजा बहुत कुछ बलहीन हो गया था। उसने

महमूद गजनी की अधीनता विना युद्ध किये ही स्वीकार कर ली था। वह एक म्लेच्छ का सहायक बन गया था इसलिए पडोस के राजाओं ने मिलकर उसे मार डाला। इस अवस्था से लाभ उठा कर गाङ्गेयदेव ने उसका बहुत सा देश जीत लिया। पलसा से मिथिला तक सम्पूर्ण देश पर उसने शासन किया। एक नेपाली लेखक द्वारा मैथिली लिपि में लिखी हुई रामायण की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। उसे देख कर प्रोफेसर वेन्डल ने लिखा है कि उस प्रति में यह बात स्वीकार की गई है कि गागेयदेव सन् १०२९ मे शासन करता था। उसके घोर शत्रु चन्देलो तक ने उसे जगद्विजयी कहा है। उत्तर-पूर्व देश के बौद्ध-राज महिपाल का वह समकालीन था। सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्कों का चलन गाङ्गेयदेव ने ही चलाया। इन सिक्कों के मुँह पर चेदि के कलचुरियो का राजचिह्न चतुर्भुजा दुर्गा की मूर्ति अङ्कित है और उसके पीठ पर सोने के अक्षरों में श्रीमत् गाङ्गेयदेव खुदा है। इस राजा की मृत्यु प्रयाग (इलाहाबाद) में हुई थी।

कर्णदेव—सन् १०४०-१०८०

गाङ्गेयदेव का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कर्णदेव हुआ। उसने कर्णावती नगरी बसाई और बनारस मे एक विशाल मन्दिर बनवाया। तिअर के समीप कर्णवेल नामक एक ग्राम है। साधारण तौर पर यह अनुमान किया जाता है कि कर्णावती इसी स्थान पर थी। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। कर्णावती का ठीक

स्थान पदवेर के पूर्वोत्तर ११ मील कारीसताई में है। यहाँ अगणित मन्दिरों के सहित किसी पुराने नगर के भग्नावशेष पाये जाते हैं। इस स्थान का नाम भी करणपुर है। भेड़ाघाट के प्रसिद्ध उत्कीर्ण लेख में कर्णदेव पाण्ड्य, मुरल, कुङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, कीर, और हूणों का विजेता वर्णित है। जिस चेदिराज ने सर्वप्रथम त्रिकलिङ्गाधिपति की पदवी धारण की थी वह यही था। चन्देल राजकुमार कीर्तिवर्मा ने उसे बहुत बुरी तरह से युद्ध मे पराजित किया। वह कीर्तिवर्मा को बिल्हरी दे देने के लिए बाध्य हुआ। प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में कर्णदेव की इस पराजय का हाल लिखा है। यह नाटक कीर्तिवर्मा के दरबार में खेलने को लिखा गया था। सान्ध्यकरनन्दी के रामचरित्र मे हमे पता लगता है कि पालवश के विग्रहपाल तृतीय से कर्णदेव का युद्ध हुआ था। विग्रहपाल ने उसे पराजित कर उसकी पुत्री के साथ विवाह कर लिया। कर्णदेव ने एक हूण राजकुमारी अवल्लदेवी के साथ भी विवाह किया था। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र यशकर्णदेव हुआ। यह राजकुमार अवल्लदेवी से ही उत्पन्न हुआ था।

यशकर्णदेव—सन् १०८०-११२३

यशकर्णदेव ने आन्ध्र-देश पर चढाई की और गोदावरी नदी के समीप उसने वहाँ के राजा को हरा दिया। चम्पारण्य के विध्वस कर देने से भी उसकी प्रसिद्धि हुई। अपने शासन के अन्तिम समय मे उसे कन्नौज के राजा के हाथों से सन् ११२३

मे हार खानी पड़ी । नागपुर की प्रशस्ति से हमें यह भी मालूम होता है कि मालवे के लक्ष्मणदेव ने उस पर चढ़ाई की थी ।

गयकर्णदेव—सन् ११२३–११५६

यशकर्णदेव का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी गयकर्णदेव था । उसने मालवा के उदयादित्य को पौत्री अल्हणदेवी के साथ विवाह किया । इस स्त्री से उसके दो पुत्र नरसिंहदेव और जयसिंहदेव नामक हुए । ये उसके बाद क्रमानुसार सिंहासन पर बैठे । जबलपुर के समीप भेड़ाघाट का प्रसिद्ध चौंसठ योगिनी का मन्दिर महारानी अल्हणदेवी का बनवाया हुआ है । इस मन्दिर मे उसने इन्दुमाली महादेव की मूर्ति स्थापित की । एक मठ और एक व्याख्यान-शाला भी इसके साथ बना हुआ था । उसके प्रबन्ध के लिए दो गाँव भी उस मन्दिर में लगा दिये गये थे । जबलपुर से ३२ मील उत्तर बहुरीबन्द नाम के एक छोटे क़स्बे मे एक विशाल मूर्ति है । उस पर एक लेख उत्कीर्ण है । इस लेख से सूचित होता है कि यह मूर्ति भी उसी राजा के शासन काल मे स्थापित हुई थी । यह भी प्रकट होता है कि जबलपुर और उसके आस-पास का देश गुल्हणदेव नाम के एक राष्ट्रकूट राजा के शासन मे था । यह राजा गयकर्णदेव के अधीन था । यह मूर्ति किसी जैन देवता की मालूम पड़ती है । शायद वहाँ कोई जैन-मन्दिर भी रहा हो । समय के हेर फेर से उक्त मन्दिर नष्ट हो गया होगा । लोग देवता का नाम भूल गये, इस कारण उक्त मूर्ति

का नाम कर्णदेव प्रसिद्ध हो गया। राजा के पुत्र का नाम कर्णदेव था। अतएव यह बात बहुत सम्भव है कि जैन देवता की मूर्ति कर्णदेव की मूर्ति कहलाने लगी।

नरसिंहदेव—सन् ११५६-११६०

नरसिंहदेव के तीन उत्कीर्ण लेख मिले हैं। पहला तो भेडाघाटवाला प्रसिद्ध लेख है, जिससे उपर्युक्त महारानी अल्हणदेवी के देवोत्तर विधान के सम्बन्ध में हमने बहुत कुछ जाना। मन्दिर में लगाये गये गाँवों में एक का नाम जवलीपहल है। स्वर्गीय प्रोफेसर कालहार्न ने बतलाया है कि जबलपुर के आस-पास के देश का नाम जवलीपहल है। नरसिंहदेव को चन्देलराज कुमार मदनवर्मदेव ने बुरी तरह से हराया। फलतः अपने शासन के अन्तिम दिनों में उसे जान लेकर भागना पड़ा।

जयसिंहदेव—सन् ११६०–११७८

नरसिंहदेव के छोटे भाई जयसिंहदेव ने केवल दो या तीन वर्ष शासन किया। उसने गोशलदेवी के साथ विवाह किया। गोशलपुर गाँव इसी के नाम पर आबाद हुआ। इस राजा के दो उत्कीर्ण लेख मिले हैं। एक में यह पता लगता है कि उस ने अपना राज्य बाँदा, कलिञ्जर और महोबा तक बढ़ाया था और दूसरे में यह कि मालवा भी उसके राज्य के अन्तर्गत था।

विजयसिंहदेव—सन् ११७८–१२२५

जब जयसिंहदेव मर गया तब चेदि राज्य का शासन उसके पुत्र विजयसिंहदेव के सिर पर आया। उसके लेखे

उत्कीर्ण लेख मिले हैं जिन पर सन् नहीं अङ्कित है। इस के एक उत्कीर्ण लेख से हमें यह पता लगता है कि राजमाता गोशलदेवी ने एक ब्राह्मण को चोरलई ग्राम माफी में दिया। उसके पुत्र का नाम अजयसिंहदेव था। परन्तु वस्तुत राज्य पर उसका अधिकार नहीं था।

इस वंश का पराभव—विजयसिंह के बाद इस वंश का कोई उत्कीर्ण लेख नहीं मिलता। यही एक आखिरी बात है जो इस पुराने वंश के सम्बन्ध मे ज्ञात हुई है। किन कारणो से पश्चिमी चेदियों का पतन और पराभव हुआ यह बात केवल अनुमान द्वारा जानी जा सकती है। बहुत सम्भव है कि रीवाँ के बघेल तथा गढामण्डला राज्य का उदय इस वंश के पतन का बहुत कुछ कारण हुआ हो। क्योंकि इन दोनो की राजधानियाँ इस राज्य के बहुत ही समीप थीं।

पाँचवाँ अध्याय

महाकोशल (छत्तीसगढ) मे हिन्दू-शासन

पाण्डवराजा—पहले हम किसी अध्याय मे कह चुके हैं कि महाभारत के समय आर्यों ने महाकोशल मे एक राज्य स्थापित किया था। कहा जाता है कि अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन चित्राङ्गदपुर मे शासन करता था। सिरपुर ही चित्राङ्गदपुर माना जाता है। राजिम और सिरपुर के उत्कीर्ण लेखों स हमे पता लगता है कि ईसा की चौथी सदी मे एक राजवश सिरपुर मे शासन करता था। इस वश के लोग अपनी उत्पत्ति बभ्रुवाहन से बतलाते थे। ये लोग बौद्ध थे। जो बौद्ध राजा भण्डक मे शासन करते थे उन्हीं के ये वशज मालूम पडते हैं। इस वश का सर्व प्रथम राजा इन्द्रवल था। सिरपुर मे गन्धेश्वर का जो मन्दिर है उसकी फसील पर एक उत्कीर्ण लेख है। उसमे इस वश की वशावली उत्कीर्ण है।

इस वश के राजाओं के जो नाम और सन उस लेख में उत्कीर्ण हैं वे इस प्रकार हैं।

१	इन्द्रवल	सन् ३१९
२	नन्ददेव	” ३५०
३	तिवरदेव (चन्द्रगुप्त)	” ३७५
४	हर्षगुप्त	” ४००

५	शिवगुप्त	सन् ४२५
६	भवगुप्त	" ४५०
७	शिवगुप्त	" ४७५

चन्द्रगुप्त का पौत्र शिवगुप्त महाशिवगुप्त या बालार्जुन के नाम से प्रसिद्ध था। उसकी माता मगधराज की कन्या थी। जब वह विधवा हो गई तब उसने सिरपुर में ईंट का एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर बनवाया। यह लक्ष्मण-मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश के राजाओं ने अपनी राजधानी सिरपुर को सुन्दर मन्दिरों, मठों, क्षेत्रों और उपवनों से अलङ्कृत कर दिया और इस तरह इनसे उसका नाम चरितार्थ होगया। उन लेखों में से एक में यह बात उत्कीर्ण है कि बकटक के राजा ने इस वंश के अन्तिम राजा शिवगुप्त को अपना अधिपति स्वीकार किया है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन्साङ्ग ने सन् ६३९ में महाकोशल का परिदर्शन किया था। उसने अपने समय के भारत के इतिहास और भूगोल का पूरा वर्णन किया है। उसने लिखा है कि कोशल-राज्य ६००० ली या १,००० मील के घेरे में है। परन्तु विस्तार का यह परिमाण तभी ठीक आता है जब बकटक प्रदेश भी कोशल-राज्य के अन्तर्गत ले लिया जाय। वह लिखता है—इस देश का राजा क्षत्रिय है। वह बौद्ध-धर्म का बहुत आदर करता है। शिक्षा और कलाओं से उसका बड़ा प्रेम है। उसकी राजधानी में १०० सङ्घाराम हैं और

उनमें १०,००० साधु निवास करते हैं। वहाँ विधर्मियों की अच्छी संख्या है। उसमें देवताओं के मन्दिर भी हैं। दुर्भाग्य से ह्वेन्साङ्ग ने कोशल के राजा या उसकी राजधानी का नाम नहीं लिखा है। १०० मठों और १०,००० साधुओं से पूर्ण नगर कोई सामान्य नगर नहीं हो सकता। भण्डक में बौद्धों की इमारतों के खण्डहर और गुफायें बहुत हैं। अतएव भण्डक ही वह स्थान हो सकता है, जिसका उल्लेख उक्त चीनी यात्री ने अपने वृत्तान्त में किया है। उस समय सिरपुर की इतनी प्रसिद्धि नहीं थी।

जिस राजवंश ने सिरपुर के बौद्ध राजाओं को हटा बाहर किया था उसका हाल बिलकुल नहीं मिलता। सरभपुर के राजाओं द्वारा उत्कीर्ण लेखों में दो नाम मिले हैं। एक तो महाजयराज का और दूसरा उसीके उत्तराधिकारी महासुदेव-राज का। महाजयराज ने शिवगुप्त (बालार्जुन) के पुत्र को पदच्युत किया और उसके राज्य पर अधिकार जमाया। ये सोमवंशी थे और इनकी राजधानी सरभपुर थी। बहुत सम्भव है कि सिरपुर ही सरभपुर उत्कीर्ण कर दिया गया हो। परन्तु डाकृर राजेन्द्र लाल ने सम्भलपुर को सरभपुर माना है। हमें पता मिलता है कि ईसा की नवीं सदी में महाकोशल पर कलचुरी राजाओं के एक वंश का अधिकार था। यह वंश उस वंश की शाखा थी जिसकी राजधानी त्रिपुर में थी। कलचुरी राजाओं के मुख्य वंश का

इतिहास पहले दिया जा चुका है। प्रसिद्ध त्रिपुरराज महाराज कोकल्ल के अठारह पुत्र थे। उसका ज्येष्ठ पुत्र त्रिपुर का शासक था। उसने अपने दूसरे पुत्रों को भिन्न भिन्न मण्डलों का शासक बना दिया था। उसका नाम मुग्धतुङ्ग था। इसने कोशल के राजा से पाली छीन ली थी। जिस पहले चेदि-नरेश ने छत्तीसगढ मे प्रवेश किया वह यही था। मुग्धतुङ्ग के छोटे भाइयों में किसी एक भाई के पुत्र का नाम कलिङ्गराज था। उसने स्वयम् दक्षिण मे अपना राज्य अलग स्थापित किया था। इसकी राजधानी कोशल के अन्तर्गत तुमना नामक नगरी थी।

रत्नदेव, रत्नपुर का संस्थापक—

कलिङ्ग-राज के पौत्र का नाम रत्नदेव था। इसने रत्नपुर नामक नगर बसाया था और अन्त मे अपनी राजधानी तुमाना से हटा कर रत्नपुर में नियत की।

पृथ्वीदेव प्रथम—रत्नदेव के पुत्र पृथ्वीदेव (प्रथम) ने तुमाना मे एक शिव-मन्दिर बनवाया था। उसके नाम पर उसका नाम पृथ्वीदेवेश्वर रक्खा गया। उसने रत्नपुर मे एक बडा भारी तालाब भी बनवाया था। उसका विवाह राजल्ल के साथ हुआ था।

जाजल्ल देव प्रथम—सन् १११४

पृथ्वीदेव का पुत्र जाजल्लदेव उसका उत्तराधिकारी हुआ। सन् १११४ का इस राजा का एक उत्कीर्ण लेख मिला है। वह बडा योद्धा, धार्मिक और पुण्यात्मा

था। उसी के नाम पर पाली का नाम बदला जा कर जाजल्लपुर रक्खा गया। उसने जाजल्लपुर में एक मन्दिर और साधुओं के निवास के लिए एक मठ बनवाया था। दक्षिण कोशल, आन्ध्र, किमदी, वैरागढ, सजीभडारा, ललहरी, दण्डकपुर, नन्दवली और कुक्कुट के राजा उसे कर देते थे। उसके सामन्त राजा जगपाल ने रथतेरम और तमचल को जीत कर उसे समर्पित कर दिया था। ये नगर वर्तमान रायगढ-राज्य के उत्तरी भाग मे स्थित हैं। 'उसने सुवर्णपुर के राजा भुजबल को पराजित किया था। इस तरह उसका राज्य एक ओर अमरकण्टक से लेकर गोदावरी तक और दूसरी ओर बरार से लेकर उडीसा तक फैल गया था।

रत्नदेव (द्वितीय) और उसका सामन्त जगपाल—

जाजल्लदेव का पुत्र रत्नदेव (द्वितीय) था। उसने कलिङ्गराज चोडगङ्ग को पराजित करके अपना राज्य बगाल की खाडी तक फैलाया। उसके सामन्त जगपाल ने सिदुरमगू और तलहारी जीत कर उसे दे दिया।

पृथ्वीदेव (द्वितीय)—

रत्नदेव का पुत्र पृथ्वीदेव (द्वितीय) था। उसके शासन-काल में जगपाल ने सरहरगढ (यह या तो दुर्ग का मोरार या बिलासपुर का सरहर हो सकता है) और मोचकासिवा (धमतरी का सिहावा का इलाका) का विजय किया। इसके बाद उसने भ्रवरवादा देश (सम्भवत बस्तर राज्य के जगदल-

पुर का आस पास का देश) को जीता। इसके सिवा उसने काँकेर, कुसुमभोग, कन्द दोंगर और कक्करया (काँकेर) के जिले भी ले लिये।

जाजल्लदेव (द्वितीय)—सन् ११६५

पृथ्वीदेव का उत्तराधिकारी जाजल्लदेव (द्वितीय) हुआ। इसके शासन-काल मे इसके वश की एक शाखा के एक व्यक्ति ने शिवरीनरायन में सन् ११६५ मे एक मन्दिर बनवाया। एक उत्कीर्ण लेख में लिखा मिलता है कि वह व्यक्ति तुमना का शासक था।

रत्नदेव (तृतीय)—सन् ११८१—

जाजल्लदेव (द्वितीय) का पुत्र और उत्तराधिकारी रत्नदेव (तृतीय) था। इसके शासन-काल में देवीबागा नाम के एक व्यक्ति ने सम्बा में एक मन्दिर बनवाया था। सन् ११६० का उसका एक उत्कीर्ण लेख मिला है।

रत्नपुर और रायपुर के राजवंश की शाखाओं के बीच बँटवारा

रत्नपुर राज घराने के जो राजकुमार दूसरी जगहों मे बस जाते थे उन्हे जागीरें दे दी जाती थीं। इस तरह इस वश की जो शाखा रायपुर मे आबाद होगई थी वह कुछ कुछ शक्तिशाली तथा अर्द्ध-स्वतन्त्र भी हो गई थी। परन्तु रत्नपुर की पुरानी शाखा का प्राधान्य बना रहा और उसी दरबार की

सन् १७३७ मे सिंहासन पर बैठा। रघुनाथसिंह की उम्र ६० वर्ष के ऊपर थी। अतएव जिन परीक्षाओं और कठिनाइयों का सामना करने को वह सर्वथा अयोग्य था वही उस पर आपड़ीं।

हैहय-वंश के शासन की समाप्ति—सन् १७४० के अन्त में मरहठा सेनापति भास्करपन्त ने छत्तीसगढ़ पर आक्रमण किया। उस समय रघुनाथसिंह अपने पुत्र की मृत्यु के कारण शोक मे विकल था। वह अपने राज्य की रक्षा करने में बिलकुल असमर्थ था। शत्रुओं का सामना करने का कोई प्रयत्न नही किया गया। अतएव भास्करपन्त ने महल पर अधिकार कर लिया। क्योंकि रानियों मे से किसी एकने किले की फसील पर चढ कर सुलह का झंडा दिखला दिया था। इस तरह अपमानजनक ढङ्ग से हैहय-वंशी राजाओं के शासन की समाप्ति हो गई।

भास्करपन्त ने राजधानी के निवासियो पर एक लाख रुपया जुर्माना किया और जो कुछ धन राजकोष में था वह सब उसने स्वाधिकार कर लिया। भास्करपन्त की सेना मे मुख्यत ४०,००० घुड-सवार थे। इन लोगो ने सारे देश को लूट लिया। किन्तु रघुनाथसिंह पर किसी तरह का अत्याचार नहीं किया गया। उसे भोसला के नाम से अपने राज्य पर शासन करने का अधिकार दिया गया। सन् १७४५ मे रघुनाथसिंह मर गया। रत्नपुर-घराने का मोहनसिंह नाम का व्यक्ति राजा बनाया गया। वह नागपुर के राजा

पूर्ण अधिकारों तथा ऊँची पदवी से विभूषित होकर घर वापस आया।

कल्याणसहाय के समय का राजस्व का एक खाता मिला है। इससे छत्तीसगढ की दशा के सम्बन्ध मे अधिक वृत्तान्त प्राप्त हुए हैं। सीर मिलाकर राज्य की आमदनी नौ लाख रुपये था। कल्याणसहाय की प्रभुता आज कल के सम्पूर्ण छत्तीसगढ पर थी। सम्भलपुर, पटना, खरियार, बस्तर, खरोद, सारङ्गढ, सोनपुर, रायगढ, सक्ती और चन्द्रपुर के राजा उसके अधीन थे। उसकी सेना में १४,२०० सिपाही और ११६ हाथी थे।

लक्ष्मणसहाय से रघुनाथसिंह तक—कल्याणसहाय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र लक्ष्मणसहाय उत्तराधिकारी हुआ। न तो उसके ही शासन-काल मे कोई उल्लेख-योग्य घटना हुई और न उसके उत्तराधिकारियों के ही समय मे। यहाँ तक कि हम राजसिंह के शासन-काल में पहुँच जाते हैं। राजसिंह के कोई सन्तान नहीं थी। इस पर दीवान ने प्रधान रानी के पास किसी ब्राह्मण के भेजने का विचित्र प्रस्ताव उपस्थित किया। इस मूर्खता के कारण उस दीवान का सर्वनाश हुआ। अपनी मृत्यु-शय्या पर राजसिंह ने अपने बड़े चाचा सरदारसिंह को अपने बाद उत्तराधिकारी के पद के लिए नामाङ्कित किया। सरदारसिंह ने २० वर्ष तक राज्य किया। इसके भी कोई पुत्र न होने के कारण उसका भाई रघुनाथसिंह

सन् १७३२ में सिंहासन पर बैठा। रघुनाथसिंह की उम्र ६० वर्ष के ऊपर थी। अतएव जिन परीक्षाओं और कठिनाइयों का सामना करने को वह सर्वथा अयोग्य था वही उस पर आपड़ीं।

हैहय-वंश के शासन की समाप्ति—सन् १७४० के अन्त मे मरहठा सेनापति भास्करपन्त ने छत्तीसगढ पर आक्रमण किया। उस समय रघुनाथसिंह अपने पुत्र की मृत्यु के कारण शोक म विकल था। वह अपने राज्य की रक्षा करने में बिलकुल असमर्थ था। शत्रुओं का सामना करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। अतएव भास्करपन्त ने महल पर अधिकार कर लिया। क्योंकि रानियों में से किसी एकने किले की फसील पर चढ कर सुलह का झडा दिखला दिया था। इस तरह अपमानजनक ढङ्ग से हैहय-वशी राजाओ के शासन की समाप्ति हो गई।

भास्करपन्त ने राजधानी के निवासियो पर एक लाख रुपया जुर्माना किया और जो कुछ धन राजकोष मे था वह सब उसने स्वाधिकार कर लिया। भास्करपन्त की सेना मे मुख्यत ४०,००० घुड-सवार थे। इन लोगो ने सारे देश को लूट लिया। किन्तु रघुनाथसिंह पर किसी तरह का अत्याचार नहीं किया गया। उसे भोसला के नाम से अपने राज्य पर शासन करने का अधिकार दिया गया। सन् १७४५ मे रघुनाथसिह मर गया। रत्नपुर-घराने का मोहनसिंह नाम का एक व्यक्ति राजा बनाया गया। वह नागपुर के राजा

रघुजी (प्रथम) से पहले ही मिल गया था। उसने सन् १७५८ तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के बाद उसके राज्य पर मरहठों ने अधिकार कर लिया और रघुजी का पुत्र बिम्बाजी भोंसला छत्तीसगढ का शासक नियत किया गया। रायपुर की नई शाखा का उत्तराधिकारी अमरसिंह सन् १७५० तक अपने राज्य का प्रबन्ध करता रहा। परन्तु इसके बाद वह भी अपने राज्याधिकार से चुपचाप पदच्युत कर दिया गया। केवल उसके गुजर-बसर के लिए राजिम, पाटन और रायपुर के परगने दिये गये। परन्तु इनके लिये ७००० रुपये का वार्षिक कर उसे देना पडता था। उसकी मृत्यु के बाद मरहठों ने उन परगनो को भी जब्त कर लिया। क्योंकि उसका पुत्र शिवराजसिंह तीर्थयात्रा में होने के कारण अनुपस्थित था।

छठा अध्याय

हिन्दू-शासन में प्रजा तथा देश की (चेदि और महाकोशल की) साधारण दशा

धर्म—बौद्ध काल में बौद्ध धर्म की मध्यप्रदेश मे बडी भारी उन्नति हुई। जान पडता है कि अशोक ने इस प्रदेश के पश्चिमी भाग को अपने साम्राज्य मे अवश्य मिला लिया था। क्योंकि उसका एक शिलालेख जबलपुर जिले की सिहोरा तहसील के रूपनाथ में मिला है। इसमें ईसा के २३२ वर्ष पूर्व की तिथि पडी है। भण्डक और सिरपुर के राजा बौद्ध थे। जब सन् ६३९ मे ह्वेन्साङ्ग कोशल में आया तब उसने वहाँ के राजा और प्रजा को बौद्ध धर्मावलम्बी पाया।

ह्वेन्साङ्ग का वृत्तान्त—ह्वेन्साङ्ग कोशल का जो वृत्तान्त देता है वह यह है—इस देश का घेरा ६००० ली (१००० मील) से अधिक है। यह दलदल और पहाडो से घिरा हुआ है। इसकी राजधानी ४० ली के घेरे मे है। यहाँ की भूमि उर्वरा और उपजाऊ है। शहर तथा कस्बे पास पास बसे हैं, प्रजा सम्पन्न है। यहाँ के मनुष्यो का कद लम्बा और रङ्ग काला है। राजा जाति का क्षत्रिय और बौद्ध-धर्मावलम्बी है। यहाँ लगभग सौ बौद्ध मठ हैं, जिनमे महायान सम्प्रदाय के

कोई १०,००० साधु रहते हैं। शहर के दक्षिण श्रोर समीप ही अशोक के एक स्तूप के सहित एक प्राचीन मठ था। यहाँ बुद्ध ने अपना अलौकिक सामर्थ्य प्रकट करके तीर्थिकाओं को हराया था। इसी स्थान में नागार्जुन पुसा ने भी निवास किया था।

भारतीयों के चाल-चलन के सम्बन्ध में

भारतीयों की सरलता और सत्यशीलता के सम्बन्ध में जो कुछ ह्वेन्त्साङ्ग ने लिखा है, वह हमारे लिए एक आदरणीय प्रमाण है। वह लिखता है—यद्यपि वे लोग स्वभावत सरल चित्त के होते हैं तो भी उनका स्वभाव खरा और आदरणीय होता है। धन के मामलो में वे चालाक नहीं होते और न्याय में विचारवान होते हैं। वर्त्तमान जीवन के कर्मों का फल दूसरे जन्म में भोगना होगा, इस बात का भय उन्हें लगा रहता है। वे सांसारिक बातों को तुच्छ समझते हैं। वे धूर्त या धोखेबाज नहीं होते और अपनी शपथ एव वचनों पर सदा दृढ रहते हैं। अभाग्य से ह्वेन्त्साङ्ग ने इस देश के राजा और उसकी राजधानी का नाम नहीं दिया। वकटक के सहित महाकोशल उन दिनों एक विशाल राज्य रहा होगा। मालूम होता है कि ह्वेन्त्साङ्ग ने भण्डक को ही देखा था और यही बात अधिकतर ठीक जँचती है। उस समय वह एक महत्व-पूर्ण नगर रहा होगा।

पौराणिक काल मे बौद्ध-धर्म का अस्तित्व देश से मिट गया था। देश मे शिव और विष्णु की पूजा भिन्न भिन्न रूपों मे प्रचलित हो चुकी थी। प्राचीनता मे बौद्ध-धर्म का समकालीन जैन धर्म हिन्दू-धर्म के साथ साथ फलने फूलने लगा था। इस धर्म पर किसी भाँति की चोट नहीं हुई।

स्थापत्य और शिल्प—मध्यप्रदेश के हिन्दू काल का स्थापत्य, गुप्त-काल, माध्यमिक युग, ब्राह्मण-काल और हेमद पन्थी ढङ्ग जैसा है। गुप्त-शैली की इमारतों की छतें चपटी बनाई जाती थीं। सम्भवत यही छतें गुप्त-काल के प्राथमिक स्थापत्य का उदाहरण हैं। चट्टानो स तराश कर निकाली गई गुफाओ के बाहर गुफाओं के बनाने की शैली का उपयोग पीछे से किया गया था। ब्राह्मणों के स्थापत्य की पहचान इमारतों के कद और उसकी बारीक कारीगरी से होती है। सन ७०० से लेकर सन १२०० तक ब्राह्मणों के स्थापत्य का प्राधान्य रहा है। हेमद पन्थी ढङ्ग के मन्दिर गारे का उपयोग किय बिना पत्थरों के बड बडे टुकड एक दूसरे पर जमा कर बनाये जाते हैं। इस प्रकार के मन्दिर तान्त्रिक हेमाद्रि के बनाये कहे जाते हैं। कहा जाता है, एक ही रात मे उसने ऐसे ही (मैकडो) मन्दिर बना डाले थे। वस्तुत: हमने दूसरे अध्याय मे लिखा है कि विदर्भ के यादवराज महाराज रामचन्द्र का एक ब्राह्मण मन्त्री इस शैली का सञ्चालक था। एरन और सिरपुर का स्थापत्य गुप्त-शैली का है।

कवर्धा-राज्य के परकण्डी, मानधाता, शिवरीनरायन और भोरमदेव के मन्दिर ब्राह्मण-शैली के अच्छे नमूने हैं। अष्ट, लखनदैान, कटोल सैानीर और वैहार के मन्दिर हेमदपन्थी शैली के हैं।

सागर—सागर जिले की खुरई तहसील मे एरन नाम का एक ग्राम है। यहां प्राचीन स्थापत्य का एक मनोहर सग्रह है। इस ग्राम में एक बडी भारी मूर्ति है। यह मूर्ति विष्णु भगवान के वराहावतार की है। इसकी ऊँचाई १० फुट और लम्बाई १५ फुट है। इस मूर्ति के गर्दन के चारों ओर एक नर-मुण्ड माला तराशी हुई है और श्वेत-हूणराज तोरामन का एक लेख भी उस पर खुदा हुआ है। इस मूर्ति के पास के समुद्रगुप्त के एक शिला-लेख से यह सूचित होता है कि भारत में ब्राह्मण-शैली की प्राचीन-तम मूर्तियों में यह भी एक है। विष्णु भगवान के वराहावतार की पूजा बन्द हुए बहुत समय हो गया।

इस स्थान की दूसरी प्रसिद्ध वस्तु एक शिलास्तम्भ है, जो मन्दिर के सामने स्थित है। इसकी ऊँचाइ ४७ फुट हैं। इस स्तम्भ पर बुद्धगुप्त का एक लेख उत्कीर्ण है। यह लेख सन ४८४ का है।

जबलपुर—जबलपुर मे भी प्राचीन समय की कुछ इमारतें हैं। सिहोरा तहसील मे रूपनाथ नाम का एक गाँव है। इसमें एक प्रसिद्ध शिवलिङ्ग है, जो एक चट्टान की

दरार में स्थापित है। यहाँ कैमूर की पहाड़ी से एक झरना बहता है। परन्तु इस बात से इस स्थान का महत्व और भी अधिक हो जाता है कि यहाँ की एक चट्टान पर अशोक का एक लेख उत्कीर्ण है। मध्यप्रदेश का यह प्राचीनतम लेख है। इस पर ईसा के २८२ वर्ष पूर्व की तिथि पडी है। रूपनाथ से चार मील दूर तिगँवा में एक दूसरा मन्दिर है। इस मन्दिर का ढाँचा और इसकी साधारण बनावट उस मन्दिर से बहुत कुछ मिलती है जो साँची के बडे स्तूप के दक्षिण स्थित है और जो तीसरी सदी से पाँचवीं सदी के बीच किसी समय का बना अनुमान किया जाता है। लोगों की धारणा है कि जिस स्थान पर बहुरीवन्द आबाद है वहाँ पहले कोई बडा भारी नगर था। जिस स्थान का नाम टालेमी ने थोलोआना दिया है उस स्थान को कनिंघम बहुरीवन्द ही मानते हैं। वहाँ एक विशाल जैन-मूर्ति है। सम्भवतः यह मूर्ति किसी मन्दिर में स्थापित की गई थी। समय के फेर से मन्दिर नष्ट हो गया। लोग देवता का नाम भूल गये। उस मूर्ति का नाम कर्णदेव पड गया और यह नाम कलचुरिराज गयकर्ण के पुत्र का नाम था। इस तरह एक जैन-देवता की मूर्ति एक राजकुमार की मूर्ति कहलाने लगी। भेडाघाट में, जो जबलपुर से तेरह मील है और जहाँ नर्मदा का एक बडा जलप्रपात है, चौसठ योगिनी नाम का एक मन्दिर है। इसके बीच का मन्दिर तो आधुनिक मालूम पडता है, पर इसके घेरे की दीवार प्राचीन

समय की मालूम पडती है । मन्दिर मे जो वरामदा वना है उसके खम्भे एक दूसर के ठीक बराबर बराबर हैं । खम्भो के सामने दीवार में भी जवाबी चौकोर खम्भे बने है। इससे सारी दीवार भी चौकोर भागो में बँटी मालूम होती है । दीवार के इन प्रत्येक चौकोर खण्डों में मनुष्य के आकार के बराबर देवियो की मूर्त्तियाँ बनी हैं, परन्तु इनका अधिकाश भाग टूटी फूटी हालत मे है । गयकर्णदेव की राजमहिषी महारानी अल्हणदेवी ने इस मन्दिर का वनवाया था । इसमें इन्दुमाली देवता की मूर्ति प्रतिष्ठित है । मन्दिर से सटा हुआ एक मठ और एक व्याख्यानशाला भी बनी है । इसके खर्च के लिए दो गाव भी लगाये गय थे । भडाघाट के उत्कीर्ण लेख को पढकर प्रोफेसर हाल ने इस सम्पूर्ण विवरण को प्रकाशित किया है । सन् ११५१ से ११५५ के बीच इस मन्दिर का बनना अनुमान किया जाता है । नरसिंहपुर के दक्षिण-पूर्व बरेहटा मे प्राचीन इमारतों के कुछ चिह्न हैं । इनमें से कुछ नरसिंहपुर उठा लाये गये हैं और वे एक बाग मे रक्खे गये हैं । इस स्थान के अन्य दूसरे चिह्न योरप भज दिये गये हैं ।

खण्डवा—खण्डवा जैन-समाज का केन्द्र था। जैन मन्दिरों के सुन्दर नक्काशी किये हुए अनेक पत्थर के टुकडे इस शहर के घरों तथा दूसरी इमारतो में देखे जा सकते हैं। इस जिले मे मानधाता बहुत प्रसिद्ध स्थान है । शिव के प्रसिद्ध बारह ज्योतिर्लिङ्गों मे से एक लिङ्ग यहीं प्रतिष्ठित है । समय समय के बने

हुए भिन्न भिन्न ढङ्ग के यहाँ अनेक मन्दिर हैं। इन सब में सिद्धनाथ का मन्दिर उल्लेख-योग्य है। यह मन्दिर ऊँची कुर्सी पर बना है। विचित्र ढङ्ग से स्थित हाथी इसकी गच को सँभाले हैं। डाक्टर फ्लीट मानधाता को प्राचीन महिष्मती मानते हैं। मण्डला भी माहिष्मती माना जाता है।

चाँदा—चाँदे में हमें सीदियाई, बौद्ध, पौराणिक और गोंडी ढङ्ग की बनी हुई भिन्न भिन्न इमारतें और तक्षण कला के चिह्न मिलते हैं। इस पुस्तक के उपोद्घात में हमने क्रामलीचस् और क्रिस्टेइन्स पर विचार किया है।

चाँदा की सड़क पर वरोरा से १८ मील दूर भण्डक नाम का एक गाँव है। इस गाँव की इमारतों के भग्नावशेष बहुत ही पुराने समय के हैं और मनोरञ्जक भी हैं। भण्डक ही प्राचीन भद्रावती माना जाता है। इस गाँव के दक्षिण थोड़ी दूर पर भद्रनाथ या चन्द्रनाग का एक मन्दिर है। यह इमारत आधुनिक है। कुछ पुराने और कुछ नये मन्दिरों का मसाला लेकर यह मन्दिर नये सिरे से बनाया गया है। पत्थर की कारीगरी के अनेक प्राचीन नमूने मन्दिर के सामने की दीवार पर बने हैं। गणपति, विष्णु, लक्ष्मी नारायण आदि की अनेक मूर्तियाँ मन्दिर की फर्श पर इधर उधर बिखरी पड़ी हैं। यहाँ नागदेव की पूजा होती है। लोगों की धारणा है कि मेले के समय एक सफेद साँप यहाँ प्रकट होता है। उस गाँव के दक्षिण-पश्चिम डेढ़ मील के लगभग विजासन

(विद्यासन) नाम की पहाड़ी में एक गुफा है। इस गुफा की वनावट बड़ी विचित्र है। यह गुफा क्या है, पहाड़ी काट कर ७१ फुट लम्बी एक गली बनी है। इसके छोर पर एक मन्दिर बना है। मन्दिर मे पत्थर की एक बेंच पर बुद्ध की एक विशाल मूर्ति स्थापित है। इस गली के द्वार से दाहिने और बाये दोनो ओर इसी तरह की दूसरी गलियाँ बनी हैं और इसी तरह प्रत्येक गली के छोर पर एक एक मन्दिर बना है और उनमें बुद्ध की मूर्तियाँ स्थापित हैं। उस गाँव के पूर्व बड़ी सड़क के समीप हिन्दुओ का एक पुराना पुल है। इसमे भारी भारी दोहरी कोठियाँ बनी हैं। इनके ऊपर बहुत बड़ी बड़ी धरनें बेंडी और लम्बी जमाई हैं। पुल की पटाई घनी है। महाकाली कङ्कालिनी की एक बहुत मनोहर मूर्ति चण्डिकादेवी के टूटे फूटे मन्दिर के पास पड़ी है। इस मूर्ति के तीन सिर और छ हाथ हैं। वरोरा से दस मील उत्तर भटरा नाम का एक गाँव है। अनुमान किया जाता है कि यह गाँव भी प्राचीन भद्रावती नगरी का एक भाग है। यदि यह अनुमान सत्य हो तो सब तरह से यही परिणाम निकलेगा कि महाकोशल की राजधानी के सम्बन्ध मे जो विवरण ह्वेन्साङ्ग ने दिया है वह इसी नगर के सम्बन्ध का होना चाहिए। इस गाँव के समीप की लम्बी पहाड़ी पर एक बहुत ही सुन्दर तथा पुराने मन्दिर के भग्नावशेष विद्यमान हैं। यह मन्दिर ऊँचा तथा अच्छी दशा मे रहा होगा। इसमे शिव, विष्णु इत्यादि पौराणिक देवताओ की मूर्तियाँ हैं।

भण्डक, नेरीभटला और वैगाँव में भी प्राचीन मन्दिरों के दूसरे विचित्र नमूने हैं, परन्तु इन सबमें सबसे अधिक सुन्दर और विशाल मर्कण्डी के नष्टप्राय मन्दिर हैं ।

चाँदे के दक्षिण-पूर्व ५६ मील दूर सडक के पास मर्कण्डी नाम का एक गाँव है । यहाँ मन्दिरों का एक समूह है । इनकी सख्या बीस के लगभग है। इनकी बनावट और इनकी लम्बाई चौडाई मे बडा अन्तर है । ये सब एक चौकोर अहाते के भीतर हैं, जो १९६ फुट लम्बा और ११८ फुट चौडा है। इनकी सगतराशी बहुत ही बारीक और सुन्दर है । इनका निर्माण-काल दसवीं और ग्यारहवीं सदी माना जाता है । सर अलग्जेन्डर कनिंघम इनके सम्बन्ध मे लिखते हैं—सारे मन्दिरो का समूह बहुत ही सुन्दर मालूम पडता है । इसे मैंने देखा है । इसमे सबसे बडा और अत्यन्त विस्तार के साथ नक्काशी किया हुआ मन्दिर मार्कण्डेय ऋषि का है । इसमें शिव की मूर्ति प्रतिष्ठित है । इस अहाते का सारा स्थान देवताओ की मूर्तियो, सजावट के कामों, मानवी मूर्तियो, हस और बन्दरो की तस्वीरों से पूर्ण है ।

इस समूह के दूसरे बडे मन्दिर का नाम मुर्कण्ड ऋषि का मन्दिर है। मुर्कण्ड उपर्युक्त मार्कण्डेय के पिता का नाम है । इस मन्दिर के कमरे की छत चार खम्भो पर स्थित है । छत मे बहुत बढिया नक्काशी की गई है । मन्दिर का शिखर ऊँचा है । यह लगभग पूरा बना है । इसका शिखर अपने ढङ्ग का एक सुन्दर

नमूना है। यह शिव-मन्दिर है। इसी श्रेणी का एक दूसरा अनुपमेय मन्दिर है। इसमे मृत्यु-देवता यमराज की मूर्ति स्थापित है। इसी के सामने एक दूसरा मन्दिर है। इसमे मृत्युञ्जय महादेव की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इनके सिवा एक और मन्दिर है। उसके सम्बन्ध मे अधिक विवरण देने की जरूरत है। उसमे दशावतार अर्थात् विष्णु के दसो अवतारों की मूर्तियाँ स्थापित है। वह एक खुले मठ जैसा है। वह ७५ फुट लम्बा और ७ फुट चौडा है और उसी अहाते की पश्चिमी दीवार से सटा हुआ है। वह चौकोर खम्भो से बारह कमरो में बँटा है। उसके दो हिस्सों मे विष्णु की मूर्तियाँ स्थापित हैं और अवशिष्ट भागों में दसो अवतारों की मूर्तियाँ हैं। उस समूह भर में वह सबसे अधिक प्राचीन है और साफ साफ छठी या सातवी सदी का बना मालूम पडता है।

बरोरा से ३९ मील नेरी नाम का एक बडा भारी गाँव है। इसमे एक सुन्दर विशाल प्राचीन मन्दिर है। उसके खम्भे और नक्काशी अजन्ता के गुफा-मन्दिरो से मिलती-जुलती है। चाँदा की इमारतें अधिकतर गोंड-काल की हैं। शहर के चारो ओर की बडी भारी प्राचीर, अचलेश्वर, महाकाली तथा मुरलीधर के सुन्दर मन्दिर और शहर के दक्षिण-पूर्व हिन्दू देव-देवियो की विशाल मूर्तियाँ ये सब गौड काल की ही हैं। इनके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेगे। चाँदा के पास बाबूपेठ मे कुछ बहुत पुरानी सुन्दर

इमारतें हैं। उस गाँव में कुछ मन्दिर भी हैं, जिनमें से एक में इन्द्र, अग्नि इत्यादि भिन्न भिन्न वैदिक देवी-देवताओं की विलक्षण मूर्तियाँ हैं। सबसे अधिक ध्यान देने योग्य वह मूर्ति है जो ताक पर रक्खी है। उसके तीन पैर हैं। वह मूर्ति या तो वैदिक देवता त्रिपद-ज्वर दैत्य की हो सकती है या किसी देव के अनुचर की। इसी स्थान में एक सुन्दर स्तम्भ भी है।

रायपुर—प्राचीन इमारतों और पत्थर की नक्काशी के कामों से रायपुर का जिला खूब परिपूर्ण है। सिरपुर, आरङ्ग, राजिम में बौद्ध और हिन्दू दोनों की इमारतें और पत्थर की नक्काशी के काम हैं। सिरपुर से अधिकांश पत्थर की नक्काशी के काम और सुन्दर सुन्दर स्तम्भ राजिम और धमतरी जैसे दूर के स्थानों को हटा दिये गये हैं। वहाँ वे नये मन्दिरों के बनाने के उपयोग में लाये गये हैं। सिरपुर महाकोशल की प्राचीन राजधानी था। उसमें सुन्दर सुन्दर मन्दिर, मठ, चैत्र और उपवन थे। राजाओं द्वारा रक्खा गया उसका सिरपुर नाम इन्हीं बातों से चरितार्थ होता था। परन्तु अब वहाँ की सारी इमारतें खण्डहर के ही रूप में रह गई हैं। एक मात्र बड़ी बड़ी ईंटों का बना हुआ केवल लक्ष्मण का विशाल मन्दिर बच रहा है। इस मन्दिर की ईंटें साँचे की ढाली हुई हैं और वे बहुत ही अधिक कारीगरी के साथ गढ़ी गई हैं। उनके जोड़ ऐसी सुन्दरता के साथ मिलाये गये

हैं कि वे दिखलाई तक नहीं पड़ते। महाशिवगुप्त की माता ने इस मन्दिर को पाँचवीं सदी के अन्त में बनवाया था। पत्थर के मन्दिरों में से केवल एक बचा है, जिसका जीर्णोद्धार भिन्न भिन्न टूटे फूटे मन्दिरो के मसाले से किया गया है। इस मन्दिर का नाम गन्धेश्वर है। इसके भीतर कई एक लेख उत्कीर्ण हैं। इनमें से एक लेख से यह बात ज्ञात होती है कि वर्त्तमान मन्दिर पुराने मन्दिर के स्थान में बनाया गया है और उसमें उसी देवता की मूर्ति स्थापित की गई है। देवता का नाम गन्धेश्वर ही लिखा मालूम पड़ता है। इसकी लेखशैली नवीं सदी के प्रारम्भ की मालूम पड़ती है। इसी तरह इस मन्दिर के दूसरे उत्कीर्ण लेखो की भी। अहाते के भीतर पत्थर के कुछ नक्काशी के काम इकट्ठे किये गये हैं। इस संग्रह में बुद्ध की एक बड़ी मूर्ति है। उस मूर्ति के सिर के चारो ओर अच्छी नक्काशी का एक दीप्तिमण्डल बना है। उस पर आठवीं या नवीं सदी की लिपि में बौद्ध मतावलम्बन की विधि उत्कीर्ण है।

सिरपुर के जङ्गल में जो मूर्तियाँ इधर उधर पड़ी हुई थीं वे लक्ष्मण-मन्दिर के समीप इकट्ठा की गई हैं। इस संग्रह में सात घोड़े जुते रथ पर बैठे सूर्य की एक मूर्त्ति है। ध्यानावस्थित बुद्ध, शिव-पार्वती, वराहावतार, महिषमर्दिनी देवी और नाना प्रकार की दूसरी मूर्तियाँ भी हैं। आरङ्ग का जैन मन्दिर बाहर से जैनी ढङ्ग और दूसरी मूर्तियो से अलङ्कृत है। उसके भीतर काले पत्थर

पर उत्कीर्ण और खूब पालिश की हुई तीन बड़ी बड़ी नग्न मूर्तियाँ हैं। रायपुर से आरंग सम्भलपुर की सड़क पर २२ मील की दूरी पर है। महानदी उससे ४ मील है। उसके आधा मील पूर्व वागेश्वर का मन्दिर है, जिसका दर्शन यात्री लोग अपनी पुरी यात्रा के मार्ग में करते हैं। वहीं एक तालाब के पश्चिम महामाया का मन्दिर है। सन् १९०८ में १४०० वर्ष का पुराना एक ताम्र-पत्र आरङ्ग मे मिला था। इसमें गुप्त सवत् की तिथि पड़ी है, जिससे इस स्थान की प्राचीनता प्रमाणित होती है। रायपुर के दक्षिण-पूर्व २६ मील दूर राजिम नाम का एक गाँव है। महाकोशल का यह भी एक स्थान है। इसमे कई एक प्राचीन मन्दिर हैं उनमें राजीव लोचन का मन्दिर प्रधान है। पुरी-यात्रा के समय यात्री उसका दर्शन करते हैं। वे लोग यहाँ रामचन्द्र की पूजा करने को आते हैं। रामचन्द्र की ही मूर्ति इस मन्दिर मे स्थापित है। शङ्ख चक्र, गदा, और पद्म आदि अपने साधारण चिह्नों के सहित यह विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति है। मन्दिर के भीतर दो उत्कीर्ण लेख हैं। एक लेख में चेदि सवत् ८९६ (सन् ११४५) पड़ा है और दूसरा उसकी अपेक्षा कम से कम तीन सदी अधिक प्राचीन मालूम होता है। इन लेखों से यह पता लगा है कि आठवीं सदी के लगभग जब यह मन्दिर पहले पहल बना था तब विष्णु की मूर्ति के स्थापित करने के उद्देश से ही इसका निर्माण हुआ था। इसके बाद जब इसका जीर्णोद्धार किया गया और

यह नये सिरे से बनाया गया तब इस मन्दिर में सन ११४५ का शिलालेख उत्कीर्ण किया गया था। हैहय वंश के सामन्त राजा जगतपाल ने इस लेख को उत्कीर्ण कराया था। साधारण किंवदन्ती तो यह है कि उक्त देवमूर्त्ति एक राजीवा नामक तेलिन की थी। जगतपाल ने उसे तेलिन से लेकर उक्त मन्दिर में प्रतिष्ठित किया था। एक को छोड़ कर राजिम के सारे मन्दिर राजीवलोचन के पवित्र मन्दिर के आसपास स्थित हैं और इस तरह वे इमारतों का एक समूह सा हो गये हैं। इस समूह में ये मन्दिर हैं—

१ राजीवलोचन

२ वराह

३ नृसिंह

४ बद्रीनाथ

५ राजेश्वर (पश्चिम ओर)

६ दानेश्वर (दक्षिण-पश्चिम ओर)

७ जगन्नाथ (पश्चिमोत्तर ओर)

राजेश्वर और दानेश्वर नामक दो मन्दिरों को छोड़ कर बाकी सब विष्णुमन्दिर हैं। राजीवलोचन के मन्दिर की इमारत बहुत सुन्दर है। यह मन्दिर ५६ फुट लम्बा और २५ फुट चौड़ा है और ८ फुट ऊँचे चबूतरे पर स्थित है। इसके मण्डप का द्वार केवल उत्तर ओर है। चबूतरे के पश्चिमोत्तर और दक्षिण-पूर्व के कोनों में मण्डप के पश्चिमी सिरे पर जाने के लिए

बगल के दो दरवाजों से होकर दो तरफ को सीढ़ियाँ बनी हैं। मन्दिर का शिखर चतुष्कोण है और उस पर नक्काशी की हुई है। यह ताकों की श्रेणियों से पाँच भागों में बँटा है। कोनों में कँगूरे बने हैं जो बुद्ध-गया के महा-बोधी मन्दिर के कँगूरों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। भीतरी कमरे के दो कोनों में दो मूर्त्तियाँ हैं। एक हनुमान की और दूसरी बुद्ध की एक काली मूर्त्ति। बुद्ध की यह मूर्त्ति सिरपुर से लाई गई थी। दूसरा मन्दिर, जो विशेष वर्णन के योग्य है, कुललिंगेश्वर का है। यह मन्दिर एक द्वीप पर स्थित है। किसी समय पैरी और महानदी के सङ्गम के बीच भूमि की एक नोक सी निकल आई थी। वही अब टापू बन गई है। यह मन्दिर बाहर से १४॥ वर्ग फुट है। इसमें राजीवलोचन-समूह के प्राचीन मन्दिरों के सदृश एक मण्डप बना है। इसका आगे का भाग खुला हुआ है और बगली भाग बन्द हैं। अनुमान किया जाता है कि कुललिङ्गेश्वर के मन्दिर को महाराज ताम्रध्वज ने बनवाया था।

रायपुर से पचास मील दूर तुरतुरिया नामका एक बहुत प्राचीन स्थान है। कहा जाता है कि वाल्मीकि मुनि की कुटी यहीं थी। इसके सिवा यह भी कहा जाता है कि रामचन्द्र के दोनों पुत्र लव और कुश यहीं पैदा हुए थे। उनमें कुश ने ही अपने नाम पर इस देश का नाम कोशल रक्खा था। परन्तु यह बात गलत मालूम पड़ती है। वाल्मीक रामायण से हमें

पता लगता है कि लक्ष्मण सीता को रथ पर सवार कर अयोध्या से दक्षिण की ओर चले थे। उन्होंने दिन भर यात्रा की और वे सन्ध्या को गोमती नदी पर पहुँच गये। वे रात भर उसी नदी के किनारे पडे रहे। दूसरे दिन उन्होंने नदी पार की और वे गङ्गा के किनारे जा पहुँचे। उन्होने वहाँ सीता को छोड दिया। इस तरह सिद्ध होता है कि वाल्मीक की कुटी गङ्गा के किनारे थी। तुरतुरया में कुछ प्राचीन मन्दिर हैं, जिनमे बुद्ध की मूर्तियाँ उपदेश देने की मुद्रा में स्थापित हैं। परन्तु इस स्थान की अत्यन्त विचित्र बात यह है कि इस एकान्त स्थान के पुजारी केवल स्त्रियाँ ही हैं। बौद्ध धर्म के समुन्नत काल मे भिक्षुकाओं की जो सस्था अस्तित्व मे थी उसीके प्रतिनिधि वे साधुनियाँ मालूम पडती हैं। यह उनका आधुनिक हिन्दू रूप है। यह एक प्रसिद्ध बात है कि बौद्ध धर्म की उन्नति के समय भारत के भिन्न भिन्न भागो मे अधिक विस्तृत रूप में भिक्षुकाओ के मठ थे, परन्तु इस समय किसी ऐसे विशेष स्थान का पता नहीं लगता है जो वैसे मठ का दिखाऊ दावा तक रखता हो। अतएव बौद्धो का यह स्थान अब भी बिलकुल स्त्रियों द्वारा सरक्षित होने से बडे महत्व का मालूम पडता है।

गोंड-काल

पहला अध्याय

गोंड़ जाति का संगठन

गोंड जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं। भाषा की परीक्षा से यह बात निश्चित है कि गोंडी भाषा द्रविड भाषा की एक शाखा है। उपोद्घात में हमने लिखा है कि शब्द-विज्ञान-सम्बन्धी कमेटी ने गोंड-जाति को द्रविड जाति की एक शाखा ठहराया है। हमने यह भी लिखा है कि द्रविड लोग दक्षिण के मूल निवासी हैं। वे वहाँ से उत्तर भारत में फैले। गोंड लोग द्रविड जाति की शाखा के रूप में दक्षिण से आये। वे ईसा की दसवीं सदी से तेरहवीं सदी तक इस प्रदेश पर आक्रमण करते रहे और इसमें बसते गये। छत्तीसगढ़ में यह परम्परागत कथा प्रचलित है कि यहाँ के सर्वप्रथम अधिवासी भाटिया और मुण्ड लोग थे। इन्हीं लोगों को गोंडों ने जीत कर देश पर अधिकार कर लिया और उन्हें पहाडियों पर जा बसने को विवश किया था। उनका गोंड नाम हिन्दुओं तथा दूसरे लोगों ने रक्खा है। वे अपने आप का गोंड नहीं कहते हैं। वे अपने को कोइथुर कहते थे और अभी तक कहते हैं। इस जाति के

सम्बन्ध मे रेवरेड एम० हिस्लाप का कथन उत्कृष्ट प्रमाण माना जाता है। वे गोंड शब्द की उत्पत्ति कोन्द या ग्वोंद शब्द से निकालते हैं, जो पर्वतवाची तेलगू कोन्द शब्द से मिलता जुलता है। इस तरह शब्द के अर्थ से यह एक पहाडी जाति मालूम होती है। मण्डला के बन्दोबस्त के अफसर कैप्टेन वार्ड इस शब्द की एक दूसरी व्युत्पत्ति करने की चेष्टा करते है। उनका कथन है कि यह शब्द संस्कृत के पृथ्वी और शरीरवाची *गो और अण्ड दो शब्दों से बना है। इस तरह गोंड लोग* पृथ्वी के विशेष मनुष्य समझे गये हैं। परन्तु यह व्युत्पत्ति भी ठीक नहीं है। संस्कृत साहित्य मे गोंड जाति का अनार्य जाति के रूप मे उल्लेख नहीं है। संस्कृत साहित्य में सवर नामक एक अनार्य जाति का उल्लेख है, जो इस प्रदेश के एक भाग में बसती थी। हमने उपोद्घात मे लिखा है कि सवर लोग गोंड नहीं थे। जनरल कनिङ्घम का सिद्धान्त है कि गोंड शब्द गौड का अपभ्रंश है। यह बात सत्य है। कुछ ऐसे उत्कीर्ण लेख विद्यमान हैं जिनसे यह बात प्रमाणित की गई है कि बङ्गाल के गौड राजाओं ने अपने राज्य को पश्चिम ओर सिवनी तक और छिन्दवाडा तक भी विस्तृत किया था। परन्तु इससे यह परिणाम निकालना कि ये लोग गोंड इस लिए कहलाये क्योंकि गौड राज्य के एक भाग्य मे रहते थे कोरी कल्पना है। यहाँ यह बात ध्यान में लाना अरुचिकर न होगा कि अपनी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे गोंड लोग क्या

कहते हैं। रवरण्ट हिस्लाप ने एक प्रधान पुरोहित से मसार की सृष्टि, गोंडा की उत्पत्ति और उनके दैवी वीर लिङ्गों द्वारा एक गुफा से उनकी मुक्ति-सम्बन्धी एक गोडी गाथा लिख ली थी। अभाग्यवश इस गाथा मे हिन्दुओं की कुछ बातो का मिश्रण है। इस गाथा का सक्षेप आगे दिया जाता है—

प्रारम्भ में सर्वत्र पानी था। परमेश्वर का जन्म कमल के पत्ते पर हुआ। वह अकेला था। उसने एक कौआ और एक केंकडा पैदा किया। ककडा समुद्र की तह तक डुबकी लगा गया। वहाँ उसे एक केंचुआ मिला। वह केंचुआ बाहर निकाला गया। बाहर आने पर उसने अपने मुँह से पृथ्वी निकाली। परमेश्वर ने पृथ्वी को समुद्रों पर बिखेर दिया और इस तरह पृथ्वी के खण्ड के खण्ड दिखाई पडे। तब परमेश्वर ने पृथ्वी का परिदर्शन किया। इसी समय उसके हाथ मे एक फफोला पड गया। उस फफोले से महादेव और पार्वती की उत्पत्ति हुई।

महादेव के मूत्र से अनेक शाक भाजियाँ उत्पन्न होने लगीं। पार्वती ने इनको खाया। वह गर्भवती हो गई और उससे १२ ब्राह्मण, १२ देवता और १२ गोड दैवता पैदा हुए। गोड जङ्गल मे फैल गये। प्रत्येक वस्तु के खाने और अत्यन्त गन्दे ढङ्ग से रहने के कारण उनका आचरण अत्यन्त अस्त-व्यस्त और अरुचिकर हो गया। तब महादेव ने उन लोगों का परित्याग करने का निश्चय किया। उसने एक

गिलहरी पैदा की और उसे गोडों के बीच छोड दी । सब गोड उठ खडे हुए और उसे खाने की आशा से उसका शिकार करने लगे । वह गिलहरी एक बडी गुफा मे घुस गई । उसके पीछे वे सब गोड भी घुस गय । तब महादेव ने गुफा के मुँह पर एक बडा पत्थर लुटका दिया और उन सब को उसी मे बन्द कर दिया । केवल चार गोड बाहर रह गये थे। वे चारो काचीकोप, लोहग गढ या लाल पहाडी के लौह गुफा की ओर भाग गय । पार्वती गोडो की गन्ध से खुश थी । अतएव गोडों के खो जाने पर वह उनकी पुन प्राप्ति के लिए तपस्या करने लगी । भगवान ने उसको यह वरदान दिया कि गोड उसे मिल जायँगे और इस तरह लिङ्गों का जन्म हुआ । वह वडा शक्तिशाली शूर था । उसने गोडों को आग जलाना बतलाया, उन्हे आबाद और शिक्षित किया । परन्तु शीघ्र ही उन लोगो मे झगडा हो गया और उन चार गोडों ने मिलकर लिङ्गों को मार डाला ।

इस बात का पता भगवान को लग गया । उसने लिङ्गों को देह पर अमृत छिडक कर उसे फिर जिला दिया । तब लिङ्गों ने विचार किया कि उसे चार भाइयो से पूरा फल मिल चुका है, अतएव उसने बीस गोडों मे से उन सोलह को, जो गुफा में बन्द थे, ढूँढने और खोजने का निश्चय किया । उसने सारे ससार का भ्रमण किया । चन्द्रमा, नक्षत्रों और सूर्य से उसने उन गोडो के रहने के स्थान के सम्बन्ध मे पूछा, परन्तु उनमें से कोई भी उसे किसी तरह का समाचार न दे सका । अन्त में उसे एक बूढा

और तपस्वी साधु मिला। इस साधु ने उसे बताया कि महादेव ने उन गोडों को एक गुफा में बन्द कर दिया था। इसपर लिङ्गो ने बडी भारी तपस्या की और महादेव को खुश कर लिया। उसने महादेव की कृपा से उस गुफा से उस भारी पत्थर को हटाया और उन गोडों को मुक्त किया।

इस तरह यह बहुत सम्भव मालूम पडता है कि इस जाति का गोड नाम तेलुगू लोगो ने ही रक्खा है। गोड लोग उसी कुल की द्रविड भाषा बोलते हैं जिससे तामिल, कनार्डी और तेलुगू उत्पन्न हुई हैं। अतएव यह बात स्वाभाविक है कि वे लोग दक्षिण से मध्यप्रदेश में आये थे। उनके आगमन का मार्ग गोदावरी नदी तक चाँदे मे, वहाँ से इन्द्रावती तक बस्तर और छत्तीसगढ के मैदान के दक्षिणी और पूर्वी पहाडियो मे और वार्धा और वानगङ्गा नदियो तक सतपुडा-प्लेटो के जिलों मे रहा होगा। चाँदे मे ही (जहाँ एक गोड-वंश ने सदियों तक राज्य किया) वे लोग तेलुगू लोगो के मेल मे रहे होंगे और तभी उनका नाम गोड रक्खा गया होगा। वे अपने इसी नाम से इस प्रदेश के उत्तर और पूर्व में प्रविष्ट हुए होंगे।

खोद को तेलुगू लोग गोड और उडिया लोग कन्ध के नाम से पुकारते हैं। इस प्रदेश मे गोड राजाओ के चार वंशों ने शासन किया। चाँदा वंश चाँदे मे, खेरला-वंश बैतूल के समीप खेरला मे देवगढ-वंश छिंदवाडा के देवगढ मे, और गढामण्डला वंश गढा मे तथा मण्डला मे शासन किया। इन

वशों का शासन-काल तेरहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक रहा । इन सब वशों ने हिन्दू-राज्य को विनष्ट कर उसके स्थान में अपना राज्य कायम किया ।

गोंड भाषा अलिखित भाषा है । बायबल ही केवल एक ऐसी पुस्तक है जो गोंड-भाषा में लिखी गई है । जब गोंड लोग सभ्य थे तब उन्होंने हिन्दू-राजपूतों के साथ सन्धियाँ कीं और हिन्दू-धर्म, हिन्दू-भाषा तथा उनकी रीति रस्मों को स्वीकार किया । हमने पूर्व अध्याय में लिखा है कि हिन्दू-राजा सारी महत्वपूर्ण घटनाओं की बातें उत्कीर्ण लेखों द्वारा रक्षित रखने के अभ्यस्त थे और भारत के इस भाग पर शासन करने-वाले हिन्दू राजाओं के अगणित उत्कीर्ण लेख यहाँ विद्य-मान हैं । अभाग्य से गोंड राजा उत्कीर्ण लेख निकालने के अधिक आदी नहीं थे । अतएव गोंड-शासन सम्बन्धी इतिहास का विवरण मुसलमान इतिहासकारों के लेखों, उत्कीर्ण लेखों और परम्परागत कथाओं से एकत्र किया गया है ।

दूसरा अध्याय

चाँदा-राज-वंश

ईसा की तेरहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक

चाँदा-राज वंश के गोंड-राजाओं की राजधानी चाँदा थी। यह राजवंश मन नामक क्षत्रिय जाति के राजवंश के स्थान में कायम हुआ था। परम्परा के अनुसार गोंड लोगों में कोल-भील नाम का एक बड़ा बुद्धिमान और शक्तिशाली आदमी हो गया है। इसी ने गोंडों की भिन्न भिन्न जातियों को एक जाति में परिणत किया था। उन्हें कच्चे लोहे से लोहा निकालना सिखलाया था और मन लोगों पर उन्हें चढ़ा भी ले गया था। मन जाति के राजाओं को पराभूत करने में २०० वर्ष लगे। इस गोंड-वंश के पहले राजा का नाम भीमवल्लालसिंह था। उसका शासन ईसा की तेरहवीं सदी में प्रारम्भ हुआ। चाँदा के गोंड राजाओं की एक सूची और अनुमान से उनके सन् आगे दिये जाते हैं—

१ भीमवल्लालसिंह—सन् १२४०

२ सुरजावल्लालसिंह।

३ हीरसिंह।

४ औदियावल्लालसिंह।

५ तलवारसिंह।

६ केशरसिंह।

७ दिनकरसिंह।

८ रामसिंह।

९ सूरजबल्लालसिंह या शेरशाहबल्लालशाह।

१० खण्डकियाबल्लालशाह—सन् १४३७-६२

११ हीरसिंह।

१२ भूमा और लोकवा (संयुक्त)

१३ कोदईशाह या करूशाह।

१४ बाबाजीबल्लालसिंह—सन् १५७२-९७

१५ धुँदियारामशाह।

१६ कृष्णशाह।

१७ वीरशाह।

१८ रामशाह—सन् १६७२-१७३५

१९ नीलकण्ठशाह।

पहले राजा भीमबल्लालसिंह ने अपनी विजय समाप्त कर लेने पर वार्धा नदी के दाहने किनारे पर स्थित सिरपुर को अपनी राजधानी बनाया।

मन लोगों का मानिकगढ किला उसका मुख्य किला था। उसका पुत्र खुरजाबल्लालसिंह साधु और शान्त प्रकृति का आदमी था। उसकी मृत्यु के बाद हीरसिंह सिंहासन पर बैठा। वह युद्धप्रेमी और बुद्धिमान शासक था। उसीने

पहले पहल उस भूमि पर कर लगाया था जिसपर प्रजा का अधिकार था। परन्तु उसने भूमि पर अपने स्वामित्व के स्वत्व का कोई दावा नहीं किया और न गोंड शासन में ऐसा स्वत्व किसी को प्राप्त ही था। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र औदियावल्लालसिंह हुआ। वह निर्दय और अत्याचारी शासक था। उसे सिंहासन से उतारने के लिए एक षडयन्त्र रचा जा रहा था, किन्तु वह मरही गया। उसका पुत्र तलवारसिंह अपने बाप के समान दुष्ट नहीं था। पर उसका स्वभाव अनिश्चित और चञ्चल था। वह अपने कनिष्ठ पुत्र केशरसिंह को बहुत प्यार करता था और उसी को उसने राज-सिंहासन प्रदान किया। केशरसिंह योग्य और निपुण शासक था। उसने देश भर के विद्रोह का दमन किया। इसके बाद उसने भील देश पर चढाई की। उसने अपने राज्य का विस्तार बढाया और खूब धन इकट्ठा किया। केशरसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र दिनकरसिंह हुआ। वह शान्ति प्रकृति का शासक था। उसने मराठी-साहित्य के विद्वानो को बुलाकर अपनी राजधानी में बसाया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र रामसिंह हुआ। यह न्यायवान और शीलवान शासक था। इसने अपने राज्य का शासन अच्छी तरह किया और उसका विस्तार बढाया। इसने चुने हुए योद्धाओं की तरवेल नामक एक सेना सङ्गठित की। कुछ धार्मिक व्रत का पालन करने के उपरान्त उस सेना के सैनिकों को तरु (एक प्रकार का अप्राप्य पौधा जो बहुधा बाँस में पाया जाता है)

खिलाया गया था । इस कारण ये लोग अजेय समझे जाते थे। इनमें से प्रत्येक सैनिक को राजा ने २ मील से लेकर ५० मील तक लम्बे लम्बे जङ्गलों के भूभाग दिये थे। इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र सूरजवल्लालसिंह हुआ।

सूरजबल्लालसिंह—

यह राजकुमार बड़ा सुन्दर था। युद्ध-विद्या और सङ्गीत-कला सीखने के लिए यह राजकुमार लखनऊ और काशी गया था। वहाँ यह कैद कर लिया गया और देहली पहुँचाया गया। जब यह देहली में कैद था तब इसने अपना सङ्गीत सुनाकर सम्राट् के पुत्रों को मोहित कर लिया। उसे दरबार में बुलाने के लिए उन्होंने सम्राट् से प्रार्थना की। सम्राट् ने उसे बुलवा भेजा और गोंडराज की सुन्दरता से प्रसन्न होकर उसे कैद से छोड़ दिया और कैवूर के राजपूत राजा मोहनसिंह पर चढ़ाई करने को उसे नियुक्त किया। सम्राट् मोहनसिंह से अप्रसन्न हो गया था, क्योंकि उसने अपनी पुत्री बादशाह को ब्याह देने से इन्कार कर दिया था।

सूरज ने एक बड़ी भारी सेना लेकर कैवूर पर चढ़ाई की। इस सेना में अधिक संख्या उसी के सैनिकों की थी। कैवूर ग्यारह दिन तक घिरा रहा। परन्तु मोहनसिंह की मृत्यु हो जाने से घेरा उठा लिया गया। मोहनसिंह की विधवा रानी सूरज के पैरों पर गिर पड़ी और उससे अपने और अपनी कन्या को बादशाह के हाथों से बचाने को

विनय की। सूरज ने उसकी रक्षा करने का वादा किया। उसने किले में एक सेना नियत कर दी और स्वयं देहली को लौट गया। शहर के समीप पहुँचने पर उसने यह खबर फैला दी कि उसका पुत्र आया है। दूसरे दिन सूरज ने उस राजपूत-कुमारी को लड़के का भेष बनाकर सरकारी हाथी पर बिठला दिया और शाही महलों की ओर रवाना हुआ। वहाँ उनका बहुत सम्मान हुआ। सम्राट् ने उस बनावटी राजकुमार को देखकर कहा कि ऐ प्यारे बच्चे यहाँ आ और बुलाकर अपनी गोदी में बिठा लिया, तब सूरज की ओर घूम कर उसने पूछा—तुम्हारी जीत का फल कहाँ है? सूरज ने उत्तर दिया—जहाँपनाह उसे अपनी गोद में लिये हैं। हुजूर ने उसे प्यारा बच्चा कहा है। इसलिए वह हुजूर की कोई दूसरी वस्तु नहीं हो सकता। सम्राट् ने कृपापूर्वक अपने दावे का परित्याग कर दिया और गोंडराज को एक सम्मानसूचक पदवी प्रदान की। सूरज खिलतों से लदकर और शेर बल्लालशाह की पदवी से विभूषित होकर गोंडवाना लौट आया।

इस मनोहर वर्णन में जिस सम्राट् का जिक्र आया है वह फिरोजशाह तुगलक ही होगा। इसी सम्राट् ने सन् १३५१ से सन् १३८८ तक शासन किया है।

खण्डकिया बल्लालशाह, चाँदा का संस्थापक—

शेरशाह बल्लालशाह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र खण्डकिया बल्लालशाह हुआ। इस राजा के शरीर पर बहुत बतौरियाँ थीं।

उसकी रानी बुद्धिमान, सुन्दर और पुण्यात्मा थी। कहा जाता है कि उसकी वतौरियाँ एक सोते का पानी पीने से अच्छी हो गई थीं। इस सोते को राजा ने झापर के समीप एक छिद्र से बहते पाया था। यहीं एक चट्टान पर गाय के खुर के पाँच चिह्न बने मिले थे। अतएव रानी की सलाह से इस स्थान पर एक मन्दिर बनवाया गया। अचलेश्वर के प्रसिद्ध मन्दिर की यही उत्पत्ति है। इस मन्दिर के बनवाने मे राजा खूब मन देता था। कहा जाता है कि इस स्थान मे उसने एक खरगोश को कुत्तों का पीछा करते हुए देखा। इस पर रानी ने राजा को खरगोश की दौड के घेरे के भीतर एक ऐसे दुर्गमय नगर के बनवाने की सलाह दी जिसकी परिखा खरगोश के पद-चिह्नों के ऊपर ऊपर चारो ओर बनवाई जाय। राजा ने रानी की सूचना को कार्य का रूप देने मे देर न की। एक परिखा खरगोश के पद-चिह्नो के ऊपर ऊपर बना दी गई, जो सरलतापूर्वक राजा के घोडे के टापो से पहचान लिए गये थे। इसके बाद सिंहद्वार और बुर्ज बनवाये गये। सारी इमारत का सम्पूर्ण नक्शा बनाया गया और नगर की नींव देदी गई। इमारत के बनवाने का प्रबन्ध राजा के राजपूत अधिकारियो के हाथो मे था, जो तेल ठाकुर कहलाते थे। इस तरह चाँदा या चन्द्रपुर नाम के शहर की इमारत शुरू हो गई।

स्वतन्त्रशासक हीरशाह—

खण्डकिया बल्लालशाह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र

हीरशाह हुआ । उसके शासन काल में राज्य की उन्नति बहुत शीघ्र हुई । यह वही राजा था जिसने उन लोगों को सनदें प्रदान कीं जिन्होंने जङ्गलों का काटना तथा गाँवों का बसाना स्वीकार किया था। उसने घोषणा कर दी कि जो आदमी ताल खुदायेगा उसको उतनी ही भूमि प्रदान की जायगी जितनी उस ताल के पानी से सींची जा सकेगी। बहुतेरों ने ताल खुदाये और माफियाँ प्राप्त कीं। उसने चाँदे के सिंहद्वार बनवाये, प्राचीर की नीवें भरवाईं, दुर्ग और उसके भीतर एक महल निर्माण कराया। इसका उल्लेख विशेष कर ,स्वतन्त्र राजा के रूप में हुआ है। यह किसी को कर नहीं देता था। इस बात से यह मालूम होता है कि उसके पूर्वज, जो कार्यत स्वतन्त्र थे, रत्नपुर के हैहयवंशी राजाओं की वश्यता स्वीकार करते थे।

गोंड़-नाच—हीरशाह की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्र भूमा या अगवा और लोकवा एक साथ सिंहासन पर बैठे। उन्होंने अच्छी तरह शासन किया। इसके शासन-काल में गर्मियों के किसी नियत दिन राज्य के सब सरदार चाँदे में उपस्थित होते थे। वे लोग अपनी अपनी रियासतों में प्राप्त प्रत्येक प्रकार के उपयोगी पशु और जड़ी-बूटी के नमूने राजा को नजर में दिया करते थे। इस शासन-काल में अमरावती के एलमा नाम के एक सरदार के राज्य के दक्षिणी भाग का एक बड़ा भाग प्रदान किया गया था। यह उसे उन

मूल्यवान हीरों के बदले मे मिला था जो उसने राजा की भेंट किये थे ।

कर्णशाह, उसकी न्याय व्यवस्था—

इन दोनो भाइयो की मृत्यु के बाद कोदियाशाह या कर्णशाह, जो इन दो मे से किसी एक का पुत्र था, सिंहासन पर बैठा । यह राजकुमार धर्मवान और विद्वानों का आश्रयदाता था। यह हिन्दू-धर्म्म का अनुयायी था । इसने अगणित मन्दिर बनवाये । वह मड्‌ल्यक ब्राह्मणों और विद्वानो को गाँव दान में दिये, उन्हे वृत्तियाँ प्रदान कीं । इस समय तक गोंड राजाओ ने अपनी प्रजा के झगड़ों में हस्तक्षेप नहीं किया था । परन्तु कर्णशाह ने न्याय की व्यवस्था के लिए निम्नलिखित पद्धति प्रचलित की । जब कोई फिरियाद की जाती थी तब वह दोनों पक्ष की बातें ध्यान के साथ सुनता । यदि अपराधी अपना अपराध छिपाने के लिए असत्य बोलता पाया जाता तो वह राज्य से निकाल दिया जाता । यदि वह सत्य सत्य कह कर अपना अपराध स्वीकार कर लेता तो वह केवल सावधान करके छोड दिया जाता । इसी तरह पहली और दूसरी बार के अपराधों के लिए उसे क्षमा मिल जाती । परन्तु तीसरी बार के अपराध मे वह राज्य से निकाल दिया जाता था ।

बाबाजी बल्लालशाह—१५७२-८७—कर्णशाह का पुत्र बाबाजी बल्लालशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ । वह शक्तिहीन और विलासी था । आईन-अकबरी में उसका उल्लेख

स्वतन्त्र गोंडराजा के रूप मे हुआ है। वह सम्राट् को कर नहीं देता था। उसके पास दस हजार घुडसवार और चालीस हजार पैदल सेना थी।

धुँदिया रामशाह—बाबाजी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र धुँदिया रामशाह सिंहासन पर बैठा। वह मूर्ख, शराबी, असत्यवादी और धोखेबाज था। चाँदे की शहर-पनाह उसी के समय मे बनकर पूर्ण हुई। इस अवसर पर उसने ब्राह्मणों और दूसरे लोगों को तरह तरह के दान दिये।

कृष्णशाह—उसका पुत्र कृष्णशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने अपनी प्रजा पर अच्छा शासन किया। इसी राजा के शासन-काल में एक सन्धि द्वारा देवगढ के गोंड राजा चाँदे से स्वतन्त्र माने गये। सम्भवतः यह देवगढ की स्वाधीनता की साधारण स्वीकृति थी। क्योंकि जितबा के समय में देवगढ चाँदे की अपेक्षा अधिक बलवान था। गोंड-देवता फरसापन के आगे गाय का वध किये जाने की रीति को इसने बन्द करवा दी। गाय के स्थान में बकरों की बलि दी जाने की रीति प्रचलित हुई।

वीरशाह—कृष्णशाह का उत्तराधिकारी वीरशाह हुआ। यह बलवान और योग्य राजा था। इसने सफलता के साथ अपना शासन किया। इसकी कन्या का विवाह देवगढ के राजा दुर्गपाल के साथ हुआ था। परन्तु जब यह हाल उसे मालूम हुआ कि दुर्गपाल ने उसकी पुत्री को कुवाच्य कहे हैं तब उसने

महाकाली की मन्नत की कि यदि मुझे युद्ध मे विजय प्राप्त होगी, तो मैं तुझे दुर्गपाल का सिर अर्पित करूँगा । इसके बाद उसने देवगढ के राजा पर चढाई की । इस युद्ध में चाँदा की सेना पीछे हटाई गई । वीरशाह भी कैद किया जाने को ही था। किन्तु वह अपने घराने की पवित्र तलवार म्यान से खींच कर दुर्गपाल की ओर झपट पडा और उसका सिर गर्दन से तुरन्त अलग कर दिया । इस पर देवगढ की सेना तितर बितर होकर भाग खडी हुई। वीरशाह चाँदा वापस आया और उस सिर को महाकाली के आगे चढा दिया। उसकी रानी ने पुराने मन्दिर के स्थान तथा उस फसील पर जो नागपुर की दिशा की ओर था एक नया मन्दिर बनवाया। उसने दुर्गपाल की एक पाषाण मूर्ति उसी मे स्थापित की । महाराज वीरशाह की हत्या की कथा इस तरह कही जाती है—महाराज ने अपना दूसरा विवाह किया था । एक दिन जब वह सवारी के साथ अपनी नव-विवाहिता स्त्री के घर जा रहा था तब उसने अपने राजपूत शरीर-रक्षक हीरामन से जादू की तलवार उपस्थित करने की आज्ञा दी। लोगों का ऐसा ख्याल था कि उसके पास जादू की एक तलवार है । इस आज्ञा से हीरामन बहुत नाराज हो गया । उसने अपने भारी नेजे से राजा को दरबारियों, शरीर-रक्षकों और प्रजावर्ग के सामने ही मार डाला और बाद को आत्म-हत्या करली। वीरशाह पूर्ण यौवनावस्था मे मारा गया था।

साधु रामशाह—वीरशाह सन्तानहीन मरा । उसकी

विधवा ने गोविन्दशाह के एक दुधमुँहे बच्चे को गोद लिया और उसका नाम रामशाह रक्खा। उसकी नाबालिगी में विधवा रानी ने उसके संरक्षक का काम किया। अपने बाल्य-काल ही से रामशाह सरल स्वभाव का था। जब वह बड़ा हुआ तब लोग उसे किसी देवता का अवतार समझने लगे। सिंहासन पर बैठ कर उसने अपने को बुद्धिमान और भला शासक प्रमाणित कर दिया। परन्तु अपनी पुत्री के दुराचरण के कारण उसकी बड़ी बेइज्जती हुई। उसकी पुत्री बाघा नाम के एक गोंड राजकुमार के गुप्त प्रेम में पड़ गई। यह राजकुमार वर्धा के दक्षिण रहता था। इस प्रेम का यह परिणाम हुआ कि उन दोनों में गुप्त सम्बन्ध भी स्थापित होगया। जब राजा को यह बात मालूम हुई तब वह बहुत नाराज हुआ। उसने बाघा पर चढ़ाई कर दी। बाघा ने भी अपने साथियों को इकट्ठा कर राजा से युद्ध किया, पर अन्त में उसकी हार हुई। इसपर वह अपने घर भाग गया। अपनी स्त्री-बच्चों को एक खोह में ले गया। वहाँ उसने उन सबको मार डाला और आत्महत्या करली। रमलाताल और रामबाग रामशाह की आज्ञा से ही बनवाये गये थे।

चांदा पर अधिकार करने का मरहठों का उद्योग— सन् १७१२ में सितारा के राजा ने देहली के सम्राट् से दक्षिण के सारे मुगल-राज्य में चौथ वसूल करने की समुचित आज्ञा प्राप्त की थी। निर्बल मुगल सम्राट् अपना सारा अधिकार खो

चुका था। अतएव सितारे के राजा ने कान्होजी भोसला को गोंडवाना पर आक्रमण करने को भेजा। कान्होजी को चाँदा में किसी तरह की सफलता न प्राप्त हुई। फलत वह वापस बुलाया गया। परन्तु उसने वापसी-सम्बन्धी परवानों पर कुछ भी ध्यान न दिया। इस कारण रघुजी भोसला उसे वहाँ से वापस भेजने को भेजा गया। सन् १७३०- में रघुजी ने उसे सिरपुर परगना के समीप मन्दिर ग्राम में गिरिफ़ार कर सितारा भेज दिया। इसके बाद रघुजी चाँदा की ओर बढा। राजा ने उसका सादर स्वागत किया। कहा जाता है कि मरहठा योद्धा रामशाह की शान्त वृत्ति और धज से इतना आतङ्कित हुआ था कि विवाद के लिए कोई हीला ढूँढने के स्थान मे उसने उसे देवता के रूप मे पूजा की। सन् १७३५ में रामशाह मर गया।

नीलकण्ठशाह—

उसका पुत्र नीलकण्ठशाह दुष्ट और निर्दय शासक था। उसने अपने पिता के विश्वासी दीवान महादोजी वैद्य को मरवा डाला और पहले के सारे उच्चकर्मचारियो को वर्ख़ास्त कर दिया। सन् १७४९ में मरहठे चाँदा के फाटकों पर आ डटे और युद्ध से नहीं किन्तु दरबारियो की दगाबाजी के कारण नगर पर उनका अधिकार होगया। तब रघुजी ने राजा से एक सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार नीलकण्ठशाह ने राज्य का दो-तिहाई राजस्व मरहठो को देना स्वीकार किया, परन्तु

इसके बाद बहुत ही शीघ्र बचा बचाया अधिकार भी जाता रहा, क्योंकि सन् १७५१ में रघुजी ने सारे राज्य पर अधिकार कर लिया। नीलकण्ठशाह क़ैद कर लिया गया और वन्दीगृह में ही उसकी मृत्यु भी हो गई।

इस तरह चाँदा-राज्य के शासक गोड राजाओं के वंश की समाप्ति हुई। पहले तो ये लोग एक असभ्य जाति के एक छोटे दलपति मात्र थे। इसके बाद इन लोगों ने अपना अधिकार बढ़ाया। जङ्गलों को साफ कर उन्होंने उन्हें आबाद किया। इस तरह धीरे धीरे एक लम्बे चौड़े राज्य पर इनका अधिकार हो गया। ये लोग नाममात्र को दिल्ली के बादशाहों के अधीन थे। अपने राज्य को बाहरी आक्रमण से इन लोगों ने कई सदियों तक बचाये रक्खा। अन्त में जब इनका पराभव हुआ तब (यदि हम इनके शासन के अन्तिम कुछ वर्ष छोड़ दें तो) अपने पीछे एक ऐसा सुशासित और सन्तुष्ट राज्य छोड़ गये जो प्रशंसनीय शिल्पकला की इमारतों से विभूषित होने के सिवा इतना अधिक सम्पन्न था जैसा वह बाद को फिर कभी नहीं हो सका। गोड राजाओं का राजचिह्न हाथी मारता हुआ सिंह था।

तीसरा अध्याय

खेरला-वंश

१३ वीं सदी से १४ वी सदी तक

खेरला मे शासन करनेवाले राजवश के एक राजा का पहले पहल उल्लेख विवेकसिन्धु नामक एक धार्मिक ग्रन्थ में हुआ है। इस ग्रन्थ को स्वामी मुकुन्दराज नाम के एक साधु ने लिखा है और वह ईसा की १३ वीं सदी के अन्त में विद्यमान था। मुकुन्दराज के समय मे जैतपाल नाम का राजा खेरला में शासन करता था। उसने अपने जीवन का अन्तिम समय जैतपाल ही के आश्रय मे बिताया था। उस पुस्तक के अनुसार खेरला में शासन करनेवाले राजपूत-वश का अन्तिम राजा जैतपाल था। यह केवल पहले के खेरला-राज वश के सम्बन्ध का हवाला है। ये राजा कौन थे इसका निश्चय करना असम्भव है। परन्तु यह बहुत सम्भव मालूम पडता है कि ये लोग नरसिंहराय के पूर्व पुरुष थे, जिसने दूसरी सदी में अपने वश की प्रतिष्ठा खेरला मे की थी। खेरला का उल्लेख फिरिश्ता के इतिहास मे भी हुआ है। उसने लिखा है कि खेरला का राजा नरसिंहराय बडा धनवान और शक्तिशाली था और गोंडवाना की सारी पहाडियाँ और अन्य देश उसके अधिकार में

थे। साधारण तौर पर यह नरसिंहराय गोंड-जाति का समझा जाता है। फिरिश्ता ने उसके वर्ण या जाति के सम्बन्ध मे कोई सूचना नहीं दी है। परन्तु यह राजा जैतपाल के वंश का था जो स्पष्ट राजपूत-जाति का लिखा गया है। यह बात हो सकती है कि खेरला भी मण्डला के सदृश गोंड राजपूत-वंश की राजधानी रही हो। सन् १३६८ मे मालवा और खानदेश के मुसलमान बादशाहों ने नरसिंहराय को गुलबर्गा के बहमनी राज्य के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने को उभाड़ा था। उस समय बरार बहमनी-राज्य के अन्तर्गत था। दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक के निर्दय अत्याचारों का विरोध करने के लिए दक्षिण के कुछ मुसलमान सरदारों और उमराओं ने सम्मिलित होकर बहमनी-राज्य की सृष्टि का। उनके नेता का नाम हसन था। वह पहले गङ्गा नाम के एक ब्राह्मण के घर नौकर था। वही हसन एक स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य का संस्थापक हुआ। वह सन् १३४७ मे तख्त पर बैठा और उसने सुल्तान अलाउद्दीन हसन गङ्गा बहमनी की पदवी धारण की। उसने अपने अन्तिम दो नाम अपने पुराने ब्राह्मणस्वामी के आदरार्थ धारण किय थे। उसकी राजधानी गोलकुण्डा के पश्चिम गुलबर्गा नामक स्थान में थी। वह अपने मरने के पहले एक ऐसे राज्य का शासक था, जो उत्तर में बरार से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक फैला हुआ था। खेरला के राजा नरसिंहराय ने बरार पर आक्रमण किया और महुर को

दीवारो तक मुसलमानी राज्य का विध्वस किया । इस समय बहमनी का बादशाह विजयनगर के राजा के साथ लड रहा था । इसलिए नरसिंहराय का सामना करने के लिए वह अपनी सेना का एक दस्ता ही भेज सका । परन्तु कुछ महीनो के बाद वह स्वयम् उसे दण्ड देने को रवाना हुआ । नरसिंहराय ने मालवा और खानदेश के बादशाहों के पास मूल्यवान नजरे भेजकर उनकी सहायता की प्रार्थना की । परन्तु उन लोगो ने, यद्यपि पहले अवसरो पर उन्होंने उस सहायता प्रदान की थी, उसका पक्ष लेने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वे वास्तव मे उसी का विनाश चाहते थे । ऐसी अवस्था मे भी नरसिंहराय ने बादशाह का मुकाबला करने का निश्चय किया और खेरला से चार मील आगे चलकर वह अपनी सेना सज्जित कर शत्रु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा । फिरोजशाह स्वयम सेना सञ्चालन करने को उत्सुक था, पर उसके दो सेनानायको ने स्वयम् चढाई का प्रबन्ध करने की आज्ञा माँगी । अतएव बादशाह ने उन्हीं को चढाई करने का हुक्म दिया । लडाई छिडने पर मुसलमानों ने नरसिंहराय की सेना को भगा दिया और उसके पुत्र गोपालराय को कैद कर लिया । भगोडो का पीछा खेरला तक किया गया । युद्ध में दस हजार से ऊपर आदमी काम आये । नरसिंहराय बडी कठिनता से अपने किले में पहुँच सका । उस किले को विजयी सेना ने आकर घेर लिया । जब दो महीने तक किला घिरा रहा और उसके भीतर के लोगो को

तरह तरह के कष्ट दिये गये तब सुलह की प्रार्थना की गई। इस पर कहा गया कि उन्हें बिना शर्त के आत्मसमर्पण करना पड़ेगा। तब नरसिंहराय को रक्षा का कोई दूसरा उपाय न सूझ पडा। अतएव उसने बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। फिरोजशाह सन्तुष्ट हो गया। उसने नरसिंहराय को एक सोने के काम की बहुमूल्य खिलत प्रदान की। इसके सिवा उसने नरसिंहराय की एक कन्या व्याह ली। पैंतालीस हाथी, धन की एक बड़ी रकम तथा बहुमूल्य वस्तुएँ बादशाह को नजर की गई। बादशाह ने खेरला का घेरा उठा लिया। इसके बाद खेरला मे बहुत समय तक शान्ति विराजती रही। परन्तु सन् १४२५ के लगभग मालवे के शाह होशगशाह ने एक दूसरी चाल चली। वह फिरोजशाह के उत्तराधिकारी अहमदशाह बहमनी की बढती हुई शक्ति से भयभीत हुआ। अतएव उसके विरुद्ध नरसिंहराय को अपनी ओर करने का प्रस्ताव होशगशाह ने उससे किया। किन्तु नरसिंहराय उसके प्रस्ताव पर राजी न हुआ। इस पर होशगशाह ने उस पर दो बार चढाई की। परन्तु उसे प्रत्येक बार विफल होना पडा और भारी हानि सहनी पडी। तीसरी बार की चढाई मे होशगशाह नरसिंहराय पर अचानक इस तरह आ टूटा कि वह अपनी सेना तक एकत्र न कर सका। अतएव उसे किले के भीतर आश्रय लेने को बाध्य होना पडा। उसने अहमदशाह से सहायता के लिए प्रार्थना की। इस पर अहमदशाह ने

बरार के सूबेदार खाँजहाँ को नरसिंहराय की मदद के लिए जाने की आज्ञा दी और वह स्वयम सात हजार सवार लेकर एलिचपुर की ओर इसलिए चल पडा कि यदि खाँजहाँ को मदद की आवश्यकता हो तो वह तैयार रहे। सेना मे बादशाह की अनुपस्थिति से सुलतान होशगशाह ने यह अनुमान किया कि वह हमारी सेना से डर गया है। अतएव वह खरला की ओर बढा और उसने आस पास का सारा देश लूट लिया। इसके सिवा अहमदशाह की ढिलाई के सम्बन्ध में वह उस पर निन्दाव्यञ्जक कटाक्ष करने लगा। उसके इन वाक्यबाणों के परिणाम-स्वरूप अहमदशाह खेरला के उद्धार के लिए शीघ्रता के साथ रवाना हुआ। साधारण मुठभेड होने के बाद अन्त मे होशगशाह की हार हुई। दो सौ हाथी और उसकी बेगमें अहमदशाह के हाथ लगीं। मालवावालो की हार सुनकर नरसिंहराय भी किले के बाहर निकला और अपने देश से भागते हुए शत्रुओ को मार्ग में बाधा दी और उनमे बहुसख्यक लोगो को मार डाला। यद्यपि अहमदशाह की जीत हुई, परन्तु जिस आवश्यकता के कारण अपने सहधर्मी मुसलमानों पर उसे चढाई करना पडी उसके लिए उसे बहुत दु ख हुआ। नरसिंहराय अपने पुत्रो के साथ बादशाह को ताजीम और धन्यवाद देने के लिए उपस्थित हुआ। इस प्रकार की कल्पना के लिए कोई कारण ही नही देख पडता कि राज्य के प्रति नरसिंहराय का व्यवहार विश्वासघात का सूचक था। अपने अधिपति

के हित के सम्बन्ध मे उसका लगातार का सद्भाव भारतीय राजाओं के साधारण व्यवहार के साथ एक सुन्दर सादृश्य उपस्थित करता है। एक युद्ध के कारण होशंगशाह को खेरला पर फिर आक्रमण करने का अवसर मिल गया। उस समय अहमदशाह बहमनी और गुजरात के राजा के बीच युद्ध हो रहा था। उस युद्ध मे अहमदशाह अपनी सारी शक्ति के साथ भिडा था। इस कारण वह नरसिंहराय की मदद के लिए आ न सकता था।

इस अवसर से लाभ उठा कर होशंगशाह ने सन १४३३ मे खेरला पर फिर चढाई की। इस बार के युद्ध मे नरसिंहराय मारा गया। अतएव होशंगशाह ने खेरला के किले तथा उसके आस पास के देश पर अपना अधिकार जमाया। इन घटनाओं की खबर पाकर अहमदशाह बहमनी मालवा की सेना का सामना करने को रवाना हुआ। परन्तु खानदेश के शासक नासिरखाँ फरुखी ने बीच में पड कर इन दोनो बादशाहो को पहले का वैर भाव भूल जाने को मजबूर किया। सन्धि-सम्बन्धी कुछ बात चीत के बाद यह निश्चय हुआ कि खेरला का किला होशंगशाह को मिलना चाहिए और बरार अहमदशाह को। इस तरह नरसिंहराय के घराने का अन्त हुआ। खेरला राज्य का विस्तार बरार तक था। इस राज्य का अस्तित्व दीर्घ काल तक बना रहा। और इसने बहुत ही अधिक सम्पत्ति तथा शक्ति प्राप्त की होगी, इसमे कुछ सन्देह नहीं है। खेरला के शासक राजा गोंड थे,

अतएव राज-घराना हिन्दू-धर्मावलम्बी था। खेरला का दुर्ग मचना तथा सम्पानेर नदियों की उपजाऊ तराई की शोभा बढ़ाता है। वह बदनूर से लगभग चार मील है। अब इस दुर्ग के खँडहर मात्र रह गये हैं।

जिस मालवा-राज्य में खेरला-राज्य विलीन हो गया था वह देहली के तुगलक घराने के मुहम्मद तुगलक के निर्बल शासन-काल मे स्वतन्त्र हो गया था। इसका शासन अफगान शाहजादों के एक घराने के हाथ मे था। वे लोग गोरी कहलाते थे, हिरात के पूर्व गोर के पहाडी देश से आये थे। उनकी राजधानी मानदिन मे थी। यह नगर विन्ध्याचल पहाडों के एक शिखर पर बसा था। मालवा का यह शाही खानदान केवल एक सदी से कुछ ऊपर के समय ही में समाप्त हो गया और सन् १५३१ मे उसका सारा राज्य गुजरात के मुसलमानी राज्य में मिला लिया गया। खेरला के लिए मालवा के सुलतानो और बहमनी बादशाहों के बीच सदा युद्ध होता रहता था। सन् १४६७ मे मुहम्मदशाह बहमनी ने एक बडी मजबूत सेना के साथ निजामुल्मुल्क को खेरला-दुर्ग पर अधिकार करने को भेजा। निजामुल्मुल्क ने खेरला का घेरा डाल दिया और अन्त मे उस पर अधिकार कर लिया। परन्तु बाद को मालवा की सेना के दो राजपूतों ने उसे मार डाला। निजामुल्मुल्क के सैनिकों ने भी उन राजपूतों को तुरन्त मार डाला। परन्तु अन्त मे खेरला मालवा के बादशाह के सिपुर्द कर दिया गया और

दोनों राज्यों के बीच सदा के लिए सुलह हो गई । सन् १५६० में मालवा पर अकबर ने अधिकार कर लिया, परन्तु यह नहीं ज्ञात होता है कि खेरला भी मुगल-राज्य में उसी समय या कुछ समय बाद मिला लिया गया था । यह अनुमान शायद अधिक सम्भव मालूम पडता है कि खेरला बरार में शामिल कर लिया गया था जो उसके जीत लेने के कुछ दिन बाद या लगभग सन् १५९६ में मुगल-राज्य का सूबा बनाया गया। खेरला एलिचपुर के सूबे के अन्तर्गत एक जिला या सरकारी सदर मुकाम था। खेरला-सरकार में ३५ परगने थे। इसमें बैतूल जिले का मध्य तथा दक्षिणी भाग और छिंदवाडा तथा वर्धा के कुछ भाग शामिल थे। खेरला-सरकार के पूर्व ओर चतवा नामक जमीन्दार का राज्य था । इस राजा की सेना में दो हजार घुडसवार, पचास हजार पैदल और सौ से अधिक हाथी थे। सम्भवत यह चतवा नामक वही राजा था जो छिंदवाडा के देवगढ का पहला गोंड राजा था ।

चौथा अध्याय

देवगढ़-वंश—सन् १५६०-१७४२

जतवा—सन् १५८०—देवगढ-वंश का संस्थापक जतवा नाम का एक शूर था। इसके सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। इस घराने की राजधानी पहले देवगढ थी। छिंदवाड़े के दक्षिण-पश्चिम लगभग २४ मील की दूरी पर यह एक दुर्ग था। अपने अन्तिम समय में कुछ समय के लिए देवगढ-राज्य की महत्ता इतनी अधिक बढ गई थी कि मण्डला और चाँदा के राज्य उसके नीचे दब गये और गोंड-राज्यों में वही सबसे प्रधान हो गया था।

देवगढ के प्रारम्भिक इतिहास के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं ज्ञात है। दूसरे स्थानों की तरह यहाँ भी गोंडों के पहले गवली राज्य के होने की किंवदन्ती प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि देवगढ का दुर्ग एवं पहाड़ियों के नीचे पतनसौंगी तथा नागर्धन नाम के दुर्ग जतवा ने ही बनवाये थे। परन्तु देवगढ के वर्तमान भग्नावशेषों से उनकी इमारत का ढङ्ग मुसलमानी मालूम पडता है। निस्सन्देह बख्तबुलन्द ने उन्हें दिल्ली से वापस आने पर बनवाया होगा। आईन-अकबरी में लिखा है कि सन् १५६० में मध्यप्रदेश के इस भाग पर 'चतवा नाम का एक जमींदार शासन करता था।

सन् १६०० के कुछ पहले खेरला मुगल-राज्य के अन्तर्गत बरार-सूबे का एक सरकार बना दिया गया था। यह बात हम पूर्व के अध्याय में लिख चुके हैं। छिंदवाड़े के पड़ोस का जो देश जतवा और दूसरे जमींदारों के अधिकार में था वह नाम मात्र को खेरला सरकार में सम्मिलित था। परन्तु ऐसा लिखा मिलता है कि बाद को सन् १७०० में स्वयम् देवगढ़ एक सरकार अलग बन गया था। इस सरकार में छिंदवाड़ा और नागपुर के वर्तमान जिले शामिल थे।

बख्तबुलन्द—सन् १७००—जतवा के तीन चार पुश्त बाद बख्तबुलन्द पैदा हुआ था। वह सन् १७०० में शासन करता था। वह दिल्ली गया और औरंगजेब बादशाह के दरबार में उपस्थित हुआ था। बादशाह ने उसे मुसलमान बना लिया और बख्तबुलन्द नाम रख कर उसे देवगढ़ का राजा माना। मुगल-साम्राज्य का ऐश्वर्य तथा उसकी सभ्यता हृदयङ्गम करके उसने अपने राज्य को समुन्नत करने का निश्चय किया। चारों ओर से परिश्रमी लोग गोंडवाने में बसने के लिए आकृष्ट हुए, हजारों गाँव आबाद किये गये। कृषि, कारीगरी तथा व्यापार में भारी उन्नति हुई। यह बात सत्यतापूर्वक कही जा सकती है कि मराठों को अपने शासन में जो अधिकांश सफलता प्राप्त हुई उसका कारण यह था कि उसकी नींव बख्तबुलन्द ही ने डाली थी। उसने चाँदा और मण्डला के राजाओं के देश का बहुत कुछ भाग अपने राज्य

में मिला लिया था। मण्डला के राजा से, जिसकी राजधानी उस समय चौरागढ में थी, उसने सिवनी, कटगी, छपरा और डोंगरताल छीन लिया था। मण्डला-राज्य के इस भाग पर रामसिंह उसके नाम से शासन करता था। यह व्यक्ति मण्डला के राजा का सम्बन्धी था। रामसिंह ने अपना सदर-स्थान छपरा में नियत किया था। उसने यहाँ एक दुर्ग बनवाया था, जिसके खँडहर आज भी विद्यमान हैं। राजखाँ नाम के एक साहसी पठान ने भण्डारे के प्रतापगढ और सोनगढ को जीत कर बख्तबुलन्द को दे दिया। सिवनी के दीवान-वंश का स्थापक यही राजखाँ था। बख्तबुलन्द ने उसे सिवनी के डोंगरताल का फौजदार (सूबेदार) नियत किया था। बख्तबुलन्द के राज्य में नागपुर, सिवनी, भण्डारा और बालाघाट जिलों के हिस्से तथा छिंदवाडा और बैतूल के आधुनिक जिले शामिल थे। इस राज्य की उच्चसमभूमि तथा उसका समतल भाग क्रम पूर्वक ऊपरी तथा निचले देवगढ के नाम से प्रसिद्ध थे। साधारण तौर पर बख्तबुलन्द युद्ध के समय की अनुपस्थिति के सिवा सदा देवगढ में ही रहा करता था। उन कुछ झोपडियों के स्थान पर, जो उस समय राजापुरबरसा के नाम से प्रसिद्ध थीं, उसने आधुनिक नागपुर शहर की स्थापना की।

जब बरार का सूबा मुगल-साम्राज्य के अन्तर्गत था तब उसमें चाँदा और देवगढ के राज्य शामिल थे। औरंगजेब के शासन के अन्त समय में जब साम्राज्य निर्बल हो गया था तब

बख्तबुलन्द स्वतन्त्र हो गया और उसने वर्धा के दोनों किनारों पर स्थित मुगल-राज्य को लूट लिया । जब इस बात की सूचना बादशाह को मिली तब उसने बख्तबुलन्द का नाम निगुनबख्त रख देने की आज्ञा दी और उसे दण्ड देने के लिए उसने शाहजादा बेदारबख्त को काफी सेना के साथ भेजा। परन्तु इस चढाई का कोई हाल नही मालूम है ।

चाँद सुलतान—बख्तबुलन्द का उत्तराधिकारी चाँद सुलतान हुआ । वह पहाडियो के नीचे के देश में रहता था । नागपुर का शहरपनाह से सुसज्जित कर उसने उसे अपनी राजधानी बनाई । वह अपने पूर्वजों की उदार नीति का अवलम्बन किये रहा और उसके शासनकाल में देश की समृद्धि खूब बढ़ी ।

वलीशाह-सन् १७३९—चाँद सुलतान की मृत्यु हो जाने पर सन १७३९ में वलीशाह ने तख्त पर अधिकार कर लिया । वलीशाह चाँद सुलतान का औरस पुत्र नहीं था, इसलिए उसकी विधवा ने बरार के रघुजी भोंसला से बुरहान-शाह और अकबरशाह नाम के अपने पुत्रों का पक्ष लेने की प्रार्थना की । इस पर रघुजी ने चाँद सुलतान के दोनों पुत्रों को तख्त पर बिठलाया और इस मदद के बदले में समुचित धन पाकर वह बरार वापस चला गया । परन्तु सन् १७४३ में उन दोनों भाइयों के बीच झगडा होगया । बड़े भाई बुरहानशाह की प्रार्थना पर रघुजी ने फिर हस्तक्षेप किया

और उसके प्रतियोगी को खदेड़ भगाया। परन्तु रघुजी के मन में उस देश को उसे वापस कर देने की इच्छा नहीं थी जिसे उसने दूसरी बार अपने अधिकार में किया था। सच पूछा जाय तो बुरहानशाह एक राजकैदी हो गया और राज्य-सम्बन्धी सारे वास्तविक अधिकार मरहठा सरदार के हाथों में चले गए। बुरहानशाह की सन्तान राजकैदी के पद पर अब तक विद्यमान रही हैं। वे लोग आज भी नागपुर में रहते हैं और राजा कहलाते हैं। भोंसला राज-वंश से उन लोगों का पार्थक्य प्रकट करने के लिए वे सस्तनिक कहलाते हैं। इस तरह देवगढ़ राज्य के इतिहास की समाप्ति हो गई और इस समय से वह राज्य भोंसला-राज्य का एक भाग बन गया।

पाँचवाँ अध्याय

गढामण्डला-राजवंश

१५ वीं सदी—१७८८

गढामण्डला का राजवंश शुद्ध गोंड वंश नहीं था। यह राज-गोंड-वंश था। इसकी उत्पत्ति राजपूत और गोंड रक्त के मेल से हुई है। इसकी राजधानी पहले जबलपुर के समीप गढा नाम के एक गाँव में था। इसके बाद मण्डला में राजधानी नियत हुई। इस वंश का शासन काल १५ वीं सदी से आरम्भ होता है। इसके संस्थापक का नाम जदुराई था। यह आदमी एक पटेल का पुत्र था, जो गोदावरी नदी (कोई कोई खानदेश कहते हैं) के समीप रहता था। इसने उस समय के शासक कलचुरि-राजा की नौकरी करली। जब इसे उस राज्य के शासन की त्रुटियाँ ज्ञात हो गई तब इसने उसकी नौकरी छोड़ दी और नागदेव नाम के एक स्थानिक गोंड सरदार की लड़की के साथ विवाह कर लिया। इसके बाद इसने मण्डला के गोंडों को अपनी ओर कर लिया। जब इसका ससुर मर गया तब यह उनका राजा बन बैठा। इसने सुरभी पाठक नाम के एक आदमी को अपना मन्त्री बनाया। यह आदमी कलचुरिराज का एक अपदस्थ राज-कर्मचारी था। ये दोनों अपने पहले स्वामी

का प्राधान्य नष्ट करने को तुल गये और अपने उद्योग में सफल भी हुए। जदुराई ने सुरभी पाठक का पुश्तैनी मन्त्रित्व का पद प्रदान किया था। उसने यह स्पष्ट आज्ञा दे दी थी कि जब तक उसके वंश का अस्तित्व रहे तबतक वही लोग राज्य के मन्त्री बनाये जाया करें। इससे यह मालूम होता है कि कलचुरि-राज के साथ विश्वासघात करने के कारण ही उसे ऐसा पद प्राप्त हुआ था। सुरभी पाठक के वंशधरों ने अपने गोंड-स्वामियों के वंश को प्राचीन ठहराने के लिए एक वंशावली गढ़ डाली। इससे जदुराई का काल सन् ३८२ सिद्ध होता है, परन्तु उस समय स्वयम् हैहय या कलचुरि-वंश तक ने, जिनके यहाँ उसका नौकरी करना कहा जाता है, इस प्रदेश में शासन करना न प्रारम्भ किया था। जो एक मात्र उत्कीर्ण लेख यहाँ के गोंड राजाओं का प्राप्त है वह रामनगर वाला लेख है। वह गोंडराज हृदयशाह के समय में उत्कीर्ण किया गया था और उस पर सन १६६७ की तारीख पड़ी है।

संग्रामशाह—सन् १४८०—संग्रामशाह के पहले उसके पूर्वजों के अधिकार में केवल तीन या चार जिले थे। वह सन् १४८० में गद्दी पर बैठा था। उसने अपना राज्य बावन गढ़ों या जिलों तक बढ़ाया। सागर, दमोह और सम्भवतः भूपाल, नर्मदा की घाटी और सतपुड़ा की उच्चसमभूमि के कुछ भाग उसके राज्य में शामिल थे। मालूम होता है कि उसने केवल कुछ गढ़ों पर चढ़ाई की और उन्हें अपने अधीन गढ़ों की

सूची मे सयुक्त कर लिया था। यद्यपि उन गढो पर उनके पहले के स्वामियो ही का अधिकार था पर वे उसकी अधीनता मे आ गये थे। वह गोंड-वश का एक बडा प्रतापी राजा था। उसने नरसिंहपुर में चोरागढ का किला बनवाया और गढा के समीप सग्रामसागर नाम की एक झील। उस झील के किनारे पर उसने भैरवदेव का एक मन्दिर बनवाया, जो बजना-मठ कहलाता है।

दुर्गावती—उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र दलपतशाह हुआ। गढा से हटाकर सिंगारगढ किले को उसने अपनी राजधानी बनाया। यह किला एक पहाडी टीले पर बना है और उसका उस दर्रे पर अधिकार है, जो गढा और सागर के बीच के मार्ग पर आधा आध पर स्थित है। महोबे के चन्देलराज की पुत्री दुर्गावती से दलपतशाह के विवाह की बातचीत छिडी गई थी। परन्तु इस कारण कि विवाह पहले ही से दूसरी जगह तय हो गया है और गढा-वश कुल में हीन भी है उक्त प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया गया। दलपतशाह असाधारण सुन्दर पुरुष था। इस बात से और साथ ही साथ उसके पिता की कीर्ति तथा उसके राज्य के विस्तार के कारण दुर्गावती की इच्छा भी दलपतशाह के साथ विवाह करने की हो गई जैसी कि स्वयम् उसकी थी। अतएव दलपतशाह को इस बात की सूचना दुर्गावती ने दी कि या तो वह मेरे साथ विवाह करने से इन्कार कर दे अथवा यदि विवाह करने की

इच्छा हो तो बलपूर्वक मेरा हरण किया जाय। इस पर दलपत शाह ने अपनी उस सारी सेना के साथ, जो वह एकत्र कर सका, महोबा पर चढ़ाई कर दी और विजय प्राप्त कर दुर्गावती को ले आया। विवाह हो जाने के कई वर्ष बाद वह नरायनसिंह नाम का तीन वर्ष का बच्चा अपने पीछे छोड़कर मर गया। उसकी विधवा रानी ने अपने पुत्र की नाबालिगी मे उसके प्रतिनिधि के रूप मे राजकाज को सँभाला। इस वंश के सारे राजाओं के बीच उसका नाम इतिहास के पृष्ठों में दमक रहा है और उस नाम को उसकी प्रजा कृतज्ञता के साथ स्मरण करती है। उसने गढा के पास रानीताल नाम का एक बड़ा भारी सरोवर बनवाया था। इसके सिवा गढा के आस पास तथा मण्डला मे भी दूसरी बड़ी बड़ी उपयोगी इमारतें बनवाईं। उसकी हस्तिशाला मण्डला मे थी। मुसलमान इतिहासकार उसके हाथियों की संख्या १४०० बतलाते हैं।

अकबर के शासन-काल मे मुसलमानों का आक्रमण—सन् १५६४—

मण्डला-राज्य पर पहला भारी धक्का सन् १५५४ में पहुँचा था। इस साल कड़ा मानिकपुर के सूबेदार आसफखाँ ने मण्डला पर चढ़ाई की थी। महारानी दुर्गावती को अपने नाबालिग पुत्र की ओर से दृढ़ता और सफलता के साथ राज काज करते १५ वर्ष बीत चुके थे। इस कारण आसफखाँ का लोभ भड़क उठा और उसने किसी हीला हवाले के विनाही

मण्डला पर चढाई कर दी। दमोह के सिंगरगढ किले के समीप रानी ने उसका सामना किया। वहाँ रानी हार गई। तब वह मण्डला की राह के दर्रे की ओर हट आई। परन्तु जब यहाँ भी उसने अपनी सेना को हारते देखा तब उसने अपनी छाती मे कटार घुसेड कर आत्महत्या करली। इसपर उसका पुत्र चौरागढ चला गया, परन्तु आसफखाँ ने वहाँ भी उसका पीछा किया। उसने उस किले का अवरोध किया और धावा करके उसपर अधिकार कर लिया। धावे की गडबड मे राजकुमार मार डाला गया। राजपरिवार की स्त्रियाँ महलों मे आग लगा कर जल मरीं। उन्होने यह काम इस भय से किया था कि यदि वे शत्रुओ के हाथो में पड जायँगी, तो उनका अनादर होगा। जवाहिरात, सोना, चाँदी के बर्तन, देवताओं की मूर्तियाँ आदि खूब माल आसफखाँ के हाथ लगा। इसके सिवा उसे १००० हाथी भी मिले। इस माल मे उसने थोडा ही भाग अकबर को दिया। मण्डला की यह चढाई एक प्रसिद्ध घटना है। विदेशी आगमन की घाटी पहले इसी चढाई से खुली थी। बादशाह से स्वतन्त्र होकर आसफखाँ कुछ समय तक गढा पर अधिकार किये रहा, परन्तु यह बात कुछ ही वर्षों तक रही। अन्त मे उसने बादशाह की अधीनता फिर स्वीकार कर ली। बादशाह ने क्षमा कर उसे फिर कडामानिकपुर का सूबेदार नियत किया। आईन-अकबरी में गढा मालवा-प्रान्त का एक भाग माना गया है। यद्यपि

इच्छा हो तो बलपूर्वक मेरा हरण किया जाय। इस पर दलपत शाह ने अपनी उस भारी सेना के साथ, जो वह एकत्र कर सका, महोबा पर चढाई कर दी और विजय प्राप्त कर दुर्गावती को ले आया। विवाह हो जाने के कई वर्ष बाद वह नरायनसिंह नाम का तीन वर्ष का बच्चा अपने पीछे छोडकर मर गया। उसकी विधवा रानी ने अपने पुत्र की नाबालिगी मे उसके प्रतिनिधि के रूप मे राजकाज को सँभाला। इस वंश के सारे राजाओ के बीच उसका नाम इतिहास के पृष्ठों मे दमक रहा है और उस नाम को उसकी प्रजा कृतज्ञता के साथ स्मरण करती है। उसने गढा के पास रानीताल नाम का एक बडा भारी सरोवर बनवाया था। इसके सिवा गढा के आस पास तथा मण्डला में भी दूसरी बडी बडी उपयोगी इमारतें बनवाई। उसकी हस्तिशाला मण्डला मे थी। मुसलमान इतिहासकार उसके हाथियो की सख्या १४०० बतलाते हैं।

अकबर के शासन-काल मे मुसलमानों का आक्रमण—सन् १५६४—

मण्डला-राज्य पर पहला भारी धक्का सन् १५५४ में पहुँचा था। इस साल कडा मानिकपुर के सूबेदार आसफखाँ ने मण्डला पर चढाई की थी। महारानी दुर्गावती को अपने नाबालिग पुत्र की ओर से दृढता और सफलता के साथ राज काज करते १५ वर्ष बीत चुके थे। इस कारण आसफखाँ का लोभ भडक उठा और उसने किसी हीला हवाले के बिनाही

मण्डला पर चढ़ाई कर दी। दमोह के सिंगरगढ़ किले के समीप रानी ने उसका सामना किया। वहाँ रानी हार गई। तब वह मण्डला की राह के दर्रे की ओर हट आई। परन्तु जब यहाँ भी उसने अपनी सेना को हारते देखा तब उसने अपनी छाती में कटार घुसेड़ कर आत्महत्या करली। इसपर उसका पुत्र चौरागढ़ चला गया, परन्तु आसफखाँ ने वहाँ भी उसका पीछा किया। उसने उस किले का अवरोध किया और धावा करके उसपर अधिकार कर लिया। धावे की गड़बड़ में राजकुमार मार डाला गया। राजपरिवार की स्त्रियाँ महलों मे आग लगा कर जल मरीं। उन्होंने यह काम इस भय से किया था कि यदि वे शत्रुओं के हाथों मे पड़ जायँगी, तो उनका अनादर होगा। जवाहिरात, सोना, चाँदी के बर्तन, देवताओं की मूर्तियाँ आदि खूब माल आसफखाँ के हाथ लगा। इसके सिवा उसे १००० हाथी भी मिले। इस माल मे उसने थोड़ा ही भाग अकबर को दिया। मण्डला की यह चढ़ाई एक प्रसिद्ध घटना है। विदेशी आगमन की घाटी पहले इसी चढ़ाई मे खुली थी। बादशाह से स्वतन्त्र होकर आसफखाँ कुछ समय तक गढ़ा पर अधिकार किये रहा, परन्तु यह बात कुछ ही वर्षों तक रही। अन्त में उसने बादशाह की अधीनता फिर स्वीकार कर ली। बादशाह ने क्षमा कर उसे फिर कड़ामानिकपुर का सूबेदार नियत किया। आईन-अकबरी में गढ़ा मालवा-प्रान्त का एक भाग माना गया है। यद्यपि

गढा मण्डला का राजा अपने व्यवहार में स्वतन्त्र रहा, तो भी उसे कभी कभी मुगल बादशाहों की प्रधानता स्वीकार करनी पडती थी।

बुन्देला-आक्रमण—आसफखाँ के चले जाने पर दलपत-शाह का भाई चन्द्रशाह गढा-मण्डला का राजा बनाया गया। अकबर ने दस जिले लेकर उसे राजा स्वीकार किया। बाद को यही जिले भूपाल की रियासत बन गय। चन्द्रशाह का उत्तराधिकारी इनका दूसरा बेटा मधुकरशाह हुआ। इसने विश्वास घात कर अपने जेठे भाई को मार डाला था। अतएव उसने अपने इस पाप का प्रायश्चित्त किया। वह एक सूखे पीपल के वृक्ष के खोखले में बैठ कर और उसमें आग लगा कर जल मरा। इस राज्य का पहला राजा, जो दिल्ली दरबार में पहले पहल उपस्थित हुआ था, चन्द्रशाह था। इसका जेठा पुत्र प्रेमनरायन दिल्ली में बादशाह की सेना में उपस्थित रहता था। परन्तु जब उसे अपने पिता की मृत्यु की खबर मिली तब वह लौट आया और अपने स्थान में अपने पुत्र हृदयशाह को शाही दरबार में छोड आया। कहा जाता है कि अभाग्यवश जल्दी में वह ओडछा के राजा वीरसिंहदेव से बदले की भेंट करना भूल गया जब कि वह उसके दरबार से विदा हो कर अपने देश को आने लगा था। इसपर उस घमण्डी राजा ने अपनी मृत्यु-शय्या पर अपने पुत्र जुझारसिंह से इस अनादर का बदला लेने के लिए शपथ लेली। थोडे समय के बाद ही जुझारसिंह ने प्रेमनरायन पर

चढाई कर दी। वह फेरसिंह का सामना करने को तैयार न था, इसलिए चौरागढ के किले में जा घुसा। वह वहाँ कई महीने तक अवरुद्ध रहा। इस पर फेरसिंह ने घेरा उठा लेने का बहाना किया और वहाँ से अपनी सेना हटाली। उसने प्रेमनरायन को भेट करने के लिए बुला भेजा और विश्वासघात करके उसका वध करवा डाला। इसके बाद उसने किले पर चढाई कर दी। कोई नेता रह न गया था, अतएव किला तुरन्त ही उसके अधिकार में आ गया। यही नहीं, किन्तु गढा-राज्य की दूसरी सेनाओं ने भी गढे का अनुकरण कर आत्म-समर्पण किया। इस चढाई तथा उसके पिता की मृत्यु की खबर शीघ्र ही हृदयशाह के पास दिल्ली पहुँचाई गई। वह तुरन्त अपने देश को लौट आया और फेरसिंह पर चढाई कर तथा उसे मारकर अपने पिता की मृत्यु का बदला ले लिया। इस युद्ध में उसे भूपाल के सूबेदार से सहायता मिली थी। इस कारण उसने ओमुदगढ का जिला, जिसके अन्तर्गत ३०० गाँव थे, भूपाल के सूबेदार को देकर उसे समुचित रीति से सन्तुष्ट किया।

हृदयशाह—जब हृदयशाह का अधिकार उसके राज्य पर जम गया तब उसने अपना ध्यान देश की समुन्नति की ओर लगाया। खेती के उपयुक्त जमीन का रकबा बढाया गया और अल्पव्ययी बहुसङ्ख्यक किसान विशेष कर लोधी और कुर्मी, हृदय नगर के तालुका में बुलाकर बसाये

गये। उसके अनेक अच्छे कामों में आमों के लाख पेड़ों का एक बाग लगवाना (जिसमें अब जबलपुर की छावनी है) और गढ़ा के समीप एक बड़ा सुन्दर गङ्गासागर नाम का जलाशय बनवाना शामिल है। गढ़ा से बदल कर उसने रामनगर को अपनी राजधानी बनाया। यह स्थान मण्डला से कुछ ही मील दूर है। उसने यहां नर्मदा के किनारे आनन्दभवन नाम का एक बड़ा भारी महल बनवाया। संवत् १७२४ विक्रम में यह महल बनकर तैयार हुआ और तब से गढ़ा-मण्डला-राज्य की राजधानी मण्डला हो गया।

हृदयशाह के उत्तराधिकारी—हृदयशाह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र छत्रीशाह हुआ। यह राजा केवल सात वर्ष राज्य करने के उपरान्त मर गया। इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र केशरीसिंह हुआ, परन्तु इसके चाचा हरिसिंह ने अपने आपको अपने भाई का उत्तराधिकारी विघोपित किये जाने का प्रयत्न किया और विश्वासघात करके केशरी सिंह को मार डाला। हरि सिंह केवल तीन ही वर्ष राज्य कर पाया था कि प्रजा ने केशरीसिंह के सात वर्ष के पुत्र नरेन्द्रशाह को अपना राजा विघोपित किया, एक प्रबल सेना एकत्र कर युद्ध में हरि सिंह को मार डाला और उसके पुत्र पहाड़सिंह तथा उसकी सम्पूर्ण सेना को मार भगाया। पहाड़सिंह वीर और साहसी था। अतएव वर्तमान दशा में बालक राजा के विरुद्ध अपनी दाल गलने के कोई लक्षण न देखकर वह बादशाह औरंगजेब की उस सेना

में शामिल होगया जो उस समय बीजापुर के घेरे में नियुक्त थी। उसने दिलेरखाँ के अधीन रह कर काम किया। यहाँ उसे अपनी योग्यता प्रकट करने के अवसर बहुधा प्राप्त हुए थे। सेनापति दिलेरखाँ उसके कामों से इतना प्रसन्न होगया था कि सन् १६८६ में बीजापुर के टूट जाने के बाद उसने मण्डला पर चढ़ाई करने के लिए पहाड़सिंह के साथ एक सेना सहायतार्थ भेज दी। उसके भतीजे नवयुवक राजा ने दाधी के समीप फतहपुर में उसका सामना किया। इस स्थान पर जो युद्ध हुआ उसमें नरेन्द्रशाह की हार हुई। इसी बीच में मुगल-सेना लौट गई। अतएव नरेन्द्रशाह सोहागपुर की ओर बढ़ा। वहा उसका पहाड़सिंह से फिर युद्ध हुआ, पर इस युद्ध में पहाड़सिंह मारा गया। उसके दो पुत्रों ने, जो युद्धभूमि से भाग गये थे, मुगल-सहायता प्राप्त करने का फिर प्रयत्न किया, परन्तु वे असफल हुए। तब वे अपने धर्म को छोड़कर मुसलमान हो गये। अतएव उन्हें एक छोटी सी सेना सहायता के लिए मिल गई। वे इस सेना को अपने साथ लेकर नर्मदा की घाटी को लौट आये। उन्होंने नरेन्द्रशाह पर चढ़ाई की। परन्तु युद्ध में वे दोनों मारे गये। अब नरेन्द्रशाह का राज्यधिकार निर्विवाद हो गया। परन्तु उसके सम्बन्धियों ने समय समय पर जो चढ़ाइयाँ की थीं उनके कारण उसके हाथ से राज्य का एक बड़ा भाग जाता रहा। इन लड़ाइयों में जब जब उसे अपने पड़ोसी राजाओं से सहायता लेनी पड़ी तब तब उन्हें अपने देश का कुछ भाग

लाचार होकर देना पड़ा। अपने भतीजों के इस अन्तिम युद्ध में दो पठान जागीरदारों ने—आजिमखाँ जिसके अधिकार में नरसिंहपुर की बरहा जागीर थी और लूँदेखाँ जिसे चौरी का जिला (सिवनी) मिला था—बड़ी योग्यता के साथ उसकी सहायता की थी। इन गड़बड़ों और अपने राजा की निर्बलता से लाभ उठाकर उन्होंने नर्मदा के दक्षिण सारे देशों पर स्वतन्त्र रूप से अधिकार करने का प्रयत्न किया। राजा ने अपनी सहायता के लिए देवगढ के प्रसिद्ध राजा बख्तबुलन्द को बुलाया और तब संयुक्त सेनाओं ने उन दोनों विद्रोही पठानों को पराजित किया। लूँदेखाँ सिवनी में और आजिमखाँ नरसिंहपुर जिले के खुरली गाँव के पास मार डाले गये। इस सहायता के लिए नरेन्द्रशाह ने बख्त बुलन्द को चौरी डोंगरताल और घसोर के जिले अर्पण किये।

कहा जाता है कि इन युद्धों के समय नरेन्द्रशाह ने बुन्देलखण्ड के राजा छत्रशाह को गढपढरा, दमोह, रेहली, एतवा और खिमलसा के पाँच जिले अर्पित किये थे। बाद को येही जिले मिल कर सागर का प्रदेश हो गये। इनके सिवा पवनी और शाहनगर नाम के भी दो जिले बुन्देलखण्ड के राजा को पहले ही दिये जा चुके थे। यह भी कहा जाता है कि वह बादशाह को अपने पद की स्वीकृति के लिए धनेनी, हट्टा, मरियादोह गढ़ाकोटा और शाहगढ के पाँच जिले देने को बाध्य हुआ था। चालीस वर्ष शासन करने के उपरान्त सन् १७३१

नरिन्दशाह मर गया। उसके पुत्र महाराजशाह को राज्य के उन बावन जिलों में केवल उन्तीस जिले बच गये थे जो उसके पूर्वज सग्रामशाह के अधिकार मे गढा-मण्डला राज्य के अन्तर्गत थे।

पेशवा का आक्रमण—जब महाराजशाह पूरे ग्यारह वर्ष तक शान्ति के साथ अपने राज्य का शासन कर चुका तब पेशवा ने उसके देश पर कर लगाने के मतलब से चढाई की। उसने निर्लज्जता के साथ यह बहाना किया कि सितारा के राजा ने उसे नर्मदा नदी के सम्पूर्ण उत्तरी देशों पर कर लगाने का अधिकार प्रदान किया है। महाराजशाह ने इस माँग का विरोध किया। इस पर मण्डला घेर लिया गया और उस पर पेशवा का अधिकार तुरन्त होगया। राजा भी मार डाला गया। शिवराजशाह और निजामशाह नामक उसके दो लडके थे। जेठे लडके को बाजीराव पेशवा ने इस शर्त पर सिंहासन पर बिठाया कि वह चार लाख रुपये चौथ के रूप में प्रतिवर्ष दिया करे। अब राज्य का राजस्व या कर १४ लाख वार्षिक ही रह गया। नागपुर के भोंसला सितारा के राजा की आज्ञा के बहाने चौथ के नाम पर सदैव ही नोंच-खसोट किया करते थे। परिणाम यह हुआ कि राज्य के छ. जिले और निकल गये, जिससे गोंड-राज्याधीन गढों की सख्या घट कर २३ रह गई।

दुर्जनशाह का वध—शिवराजशाह अपनी बत्तीस वर्ष

की उम्र मे सात वर्ष राज्य करके सन् १७४९ में मर गया। उसका उत्तराधिकारी एक अत्यन्त निर्दयी और दुष्ट स्वभाव का नवयुवक हुआ। बहुतेरे प्रधान लोग उसकी दुष्टता के अगणित उदाहरणो से व्याकुल हो उठे थे। उसके चाचा निजामशाह न इस अवसर से लाभ उठाने और उसके विनाश स स्वय सिहासन पर बैठने का निश्चय किया। अतएव वह उसकी सौतेली मा क साथ एक षड्यन्त्र में शामिल होगया और फौज को राजधानी से हटा देने के लिए उसने राजा को राज्य के दौरे पर जाने के लिए प्रेरित किया। राजा को दौरे पर गये थोडा ही समय बीता था कि इसी बीच मे उसकी सौतली मा ने उसे अपने चाचा को खुश करने के लिए बुला भेजा। उसने राजा को कहला भेजा था कि तुम से तुम्हारा चाचा नाराज है। क्योकि तुमने किसी बात के सम्बन्ध में लापरवाही करके उसके दिल पर भारी चोट पहुँचाई है। अपनी मा का इस तरह का सन्देश पाकर सन्देह-शून्य नवयुवा राजा कुछ अनुचरो के साथ मण्डला वापस आया और सीधा चाचा के मकान मे चला गया। वहाँ उसके चाचा ने विश्वासघात करके उसको मरवा डाला।

इसके बाद निजामशाह के राजा होजाने की घोषणा हुई। जो लोग राज-हत्यारे और राज्यापहारी को दण्ड देने के बहाने देश पर चढाई करने के अवसर से लाभ उठाने के लिए प्रस्तुत हो सकते थे उनको सन्तुष्ट करने के लिए वास्तविक

उपायों का अवलम्बन किया गया। महाराजशाह की मृत्यु और शिवराजशाह के सिंहासन पर बैठने के समय पेशवा को कर देने का वादा किया गया था। अतएव निजामशाह ने पनगर-दिवरी और गौर झावर के जिले पेशवा को वार्षिक कर के स्थान में देकर सन्तुष्ट कर लिया।

निजामशाह और अन्य षड्यन्त्र—अपने विनम्र व्यवहार तथा राज-काज की निपुणता से निजामशाह ने बहुत ही शीघ्र सब जाति के लोगों को अपने शासन के अनुकूल कर लिया। उसने राज्य की बड़ी उन्नति की और सत्ताइस वर्ष राज्य करके सन् १७७६ में गढ़ा में उसकी मृत्यु हो गई। महिपालसिंह नामक एक महीने की उम्र का उसका पुत्र था, परन्तु वास्तव में वह उसका पुत्र नहीं था। पेशवा के अधिकारानुसार प्रकट रूप से कार्य करनेवाले सागर के राजा से जब उस बच्चे को अपने पिता के सिंहासन पर बैठने की परवानगी मिल गई तब पूर्वोक्त विधवा राजमाता ने, जिसने निजामशाह को अपने भतीजे दुर्जनशाह का अनिष्ट साधन करने में सहायता दी थी, इस बात का विरोध किया। उसने निजामशाह के भतीजे नरहरशाह को सच्चे वारिस के रूप में उपस्थित किया। किन्तु जब राजमाता ने देखा कि मरहठे मेरी इच्छा के अनुसार काम नहीं करेंगे तब उसने एक बार फिर षड्यन्त्रों का आश्रय लिया और वह नरहरशाह को सिंहासन पर बिठलाने में सफल हुई। परन्तु यह बात साधारण तौर पर मानी जाती है कि महिपाल-

सिंह निजामशाह का पुत्र नहीं था। निजामशाह के सुमेरशाह नामक एक अवैध सन्तान थी। राज्य के अधिकार के लिए इसने अपना स्वत्व अलग उपस्थित किया। इसने नागपुर के मरहठा सरदार माधोजी को अपनी सहायता के लिए बुलाया। माधोजी गढामण्डला पर चढाई करने को रवाना हुआ, परन्तु राजमाता के मन्त्रियों ने उससे मार्ग मे ही भेंट की और पाँच चार लाख रुपये देने का वादा कर उसे नागपुर लौट जाने को बाध्य किया। इधर नरहरशाह ने इस सुलहनामे को स्वीकार करने से इन्कार किया। इस समय सुमेरशाह सागर के राजा से सहायता माँगने के लिए सागर चला गया था। उसने नरहरशाह को राज्य से भगा दिया। इसके बाद पहला काम उसने यह किया कि षड्यन्त्र करनेवाली राजमाता को दूर किया, क्योंकि उसे इस बात का डर था कि वह नरहरशाह को सिंहासन पर फिर बिठाने की चेष्टा करेगी। राजमाता मार डाली गई। इस कारण सागर के अधिकारियो को उसे सिंहासन से अपदस्थ करने का बहाना मिल गया। उसने अपनी रक्षा की तैयारी में त्रुटि न की और पेशवा पर चढाई करने को वह सागर तक बढ गया। परन्तु उसे फिर मण्डला को भाग आना पडा। अपने को अरक्षित समझ कर वह नरहरशाह को कुछ शर्तों पर सिंहासन पर बिठाने के लिए राजी हो गया और सन्धि करने के लिए उसके पास अपने दूत भेजे। इस पर वह क्षमा कर दिया गया और गढा बुलाया गया, परन्तु तिलवारा मे वह

पकड़ लिया गया और नज़रबन्द कैदी के रूप में सागर भेज दिया गया । यहाँ वह गौरझावर के क़िले में कैद कर दिया गया । इसके बाद नरहरशाह सिंहासन पर बिठाया गया । परन्तु उसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह नाम मात्र का राजा है । इसलिए उसने सागर के मरहठों को हटाना चाहा, परन्तु उसका प्रयत्न विफल हुआ । नरहरशाह भी कैद हो गया और सागर के खुरई क़िले में नज़रबन्द कर दिया गया । यहाँ वह सन् १७८९ में मर गया । इस तरह प्रसिद्ध गढामण्डला का राजवंश समाप्त हो गया ।

छठा अध्याय

गोड़ों के शासन मे प्रजा की साधारण अवस्था

देश का साधारण प्रवन्ध—गोड राजाओ के दूर-स्थित देश सामन्त राजाओ मे विभाजित थे। ये लोग नाम मात्र का कर देते थे। परन्तु जब कभी इन लोगो की जरूरत राजाओ को पड़ती थी तब ये लोग सेना की एक निर्धारित सङ्ख्या के सहित राजा की सेवा मे राजधानी में उपस्थित होने को बाध्य थे। यह व्यवस्था एक प्रकार की सैनिक जागीर-दारी थी जो सैनिक सेवा के लिए दी जाती थी। गोड-राजा साधारण प्रजा की भाँति सरल और उच्चाकाङ्क्षाहीन होते थे। उन्हे शान्ति प्रिय थी। अपना राज्य स्थापित कर लेने के उपरान्त वे दूसरे देशो के जीतने की इच्छा नहीं करते थे। जब भारत मे मुसलमानी साम्राज्य कायम होगया तब गोड-राज्य भी एक प्रकार से स्थिर हो गये। उनके उलटने पुलटने की सम्भावना जाती रही। मुगल बादशाहो की राजधानी दिल्ली बहुत दूर स्थित थी, अतएव वे लोग इन बीहड पहाडियो के अधिपतियो की नाम मात्र की अधीनता से ही सन्तुष्ट थे। क्योकि यह बात उनके विस्तृत साम्राज्य के अविच्छिन्न रहने के लिए पर्याप्त थी। वास्तव मे गोंडवाना दिल्ली-साम्राज्य मे कभी

नहीं मिलाया गया था। जब मरहठे और बुन्देले, जिनमे अधिक धैर्य नहीं था, शक्ति-सम्पन्न हुए तब गोंड लोग अधिकतर बिना युद्ध के ही उनके वशीभूत हो गये।

गोंडों का सङ्गठन—गोंड राजाओं में कई एक अच्छे प्रबन्धकर्ता थे। चाँदा-वंश के हीरशाह ने इस आज्ञा का प्रचार किया था कि जो आदमी जितनी भूमि का जङ्गल साफ करके उसे आबाद करेगा वह भूमि उसकी होजायगी और जो आदमी जङ्गल साफ करके भूमि को आबाद नहीं करेगा उसपर उसका स्वत्व नहीं रहेगा। सब सरदारों ने इस आज्ञा को मानकर अपने सामर्थ्य भर जङ्गल कटाने तथा गाँव बसाने लगे। ठीक समय में हीरशाह ने प्रत्येक जमीन्दार के यहाँ दौरा कर उसके अधिकार की भूमि की सीमाएँ निश्चित कर दीं और प्रत्येक को सनदें भी प्रदान कर दीं। चाँदा की जमीन्दारियों की यही उत्पत्ति है। उसने यह भी घोषणा कर दी थी कि जो आदमी ताल खोदायगा उसे वह सारी भूमि दे दी जायगी जितनी उस ताल के पानी से सींची जा सकेगी। अनेक लोगों ने ताल खोदाये और तदनुसार प्रत्येक आदमी को राजा ने अपने मुहरबन्द आज्ञापत्र से भूमि प्रदान की। एक दूसरा प्रबन्धकर्ता देवगढ-राजवंश का गोंड राजा बख्तबुलन्द था। वह औरङ्गजेब के दरबार में पहुँचा था और मुसलमान बना लिया गया था। मुगल-साम्राज्य की सम्पत्ति और बढी चढी सभ्यता की प्रभा पर वह मुग्ध होगया था।

अतएव उसने अपने राज्य को भी समुन्नत करने का निश्चय किया। उसने गोंडवाने में बसने के लिए चारों ओर के परिश्रमी लोगों को प्रलोभन दिया। सहस्रों गाँव बसाये गये। कृषि, देशी कारीगरों और व्यापार में बहुत भारी उन्नति हुई। गढा-मण्डला राजवंश के तीन राजाओं ने दिल्ली देखी—मधुकर शाह, उसका पुत्र प्रेमनरायन और इसका पुत्र हृदयशाह। हृदय-शाह ने बहुसंख्यक कुशल कृषकों—विशेष करके लोधियों और कुर्मियों—को हृदयनगर के तालुके में बसाया था। उसके अनेक अच्छे कामों में आम के एक लाख वृक्षों का लगवाना, (लम्हेरीबाग, जिसमें अब जबलपुर की फौजी छावनी है) तथा गढा के समीप गङ्गासागर नामक एक सुन्दर जला-शय का बनवाना भी था। उसने गढा से हटाकर अपनी राज-धानी रामनगर में नियत की। यह जगह मण्डला से थोड़ी दूर पर ही है। वहाँ उसने नर्मदा के किनारे आनन्दभवन नाम का एक शानदार महल बनवाया था। यह महल संवत् १७७५ में बन कर तैयार हो गया था।

भूमि-कर की व्यवस्था—गोंडों की भूमि-कर-व्यवस्था का जानना एक आनन्द-दायक विषय है। राज्य की भूमि पर गोंड राजा किसी प्रकार के स्वत्व का दावा नहीं करते थे। उन्होंने केवल उसकी उपज में अपने स्वत्व का दावा कायम कर रक्खा था और इस प्रकार अपने कर की उगाही के लिए उन्होंने बहुत ही विस्तृत व्यवस्था कर रक्खी थी। अभाग्यवश

गोंडो के लगान के कागजपत्र लिङ्गोपन्त नाम के एक व्यक्ति ने नष्ट कर डाले, क्योंकि उसने उन्हें अपने खानगी उद्देशों में बाधक पाया था। परन्तु मेजर लूसी स्मिथ का कथन है कि देश की सम्पूर्ण जनता इस बात का समर्थन करती है कि उस समय भूमिकर अल्प था और मेरे समय के कृषक गोंड-शासन को स्वर्ण-युग के रूप में स्मरण करते हैं। गोंडों के शासन-काल में जिले की सारी खालसा-भूमि किलों में बँटी थी। इन किलों के अन्तर्गत अनियत सङ्ख्यक गाँव होते थे। प्रत्येक किला एक किलेदार या दीवान के अधीन रहता था। इसकी सहायता के लिए दूसरे कर्मचारी नियुक्त थे। इनमें देशमुख, देशपाण्ट और सारमुकद्दम प्रधान होते थे। ये लोग किलेदार और गाँव के अधिकारियों के बीच मध्यस्थ पद पर स्थित थे। गाँव के अधिकारियों में पटेल सबका प्रधान था। प्रत्येक गाँव का अपना खास पटेल होता था। पटेल का यह काम था कि वह अपने गाँव की भूमि पर उचित रीति से कर लगावे और नियत कर को वसूल करे। यह अधिकारी प्रधान सरकार का एजेन्ट या मुखिया होता था। भूमि-कर के वसूल होने की जिम्मेदारी उसी पर रहती थी। इसके सिवा खफीफा मामलों में उसे न्याय करने का भी अधिकार था। उसका यह अधिकार अनिश्चित सा था। राज्य का यह काम करने के कारण पटेल को वेतन के रूप में विना लगान की भूमि या नकद रुपया मिलता था। जो रुपया उसे मिलता वह नाम मात्र को सरकारी मालगुजारी

के चौथाई भाग के बराबर होता था, किन्तु वास्तव में वह उसके छठे भाग से भी अधिक नहीं होता था। क्योंकि भिन्न भिन्न दस्तूर भी तो उन्हीं रुपयों में मुजरे जाते थे। पटल का पद न तो बेचा जा सकता था और न वंशपरम्परागत ही होता था, यद्यपि वास्तविक व्यवहार में वह पद साधारण रीति से पिता के बाद पुत्र को ही मिल जाया करता था। पटेल को अपने काम में पाँडिया या पटवारी और कोटवार या चौकीदार से सहायता मिलती थी। गाँव की सारी भूमि एक वर्ष के पट्टे पर पटेल किसानों को उठा देता था।

न्याय-व्यवस्था—चाँदा-वंश के गोंड नरेश कोंडियाशाह या करनशाह ने अपने राज्य में जो न्याय-व्यवस्था प्रचलित की थी वह इस प्रकार थी। जब राजा के पास कोई नालिश होती तब वह दोनों पक्षवालों को अपनी कचहरी में बुलवाता और उनके बयान लेता। यदि अभियुक्त झूठ बोलता तो वह राज्य से निकाल दिया जाता, किन्तु यदि वह सत्य सत्य कह देता तो डाँट डपट कर छोड़ दिया जाता। यदि फिर उसी आदमी पर दूसरी बार नालिश होती तो उसी रीति का फिर अवलम्बन किया जाता, परन्तु तीसरी बार अपराध करने पर वह अपराधी देश से निकाल दिया जाता था। न्याय-व्यवस्था के सम्बन्ध में पटेल का दर्जा सब से छोटा था।

स्थापत्य—चाँदा में गोंडों की इमारतों के अच्छे अच्छे नमूने हैं। चाँदा की जो इमारतें गोंडों की उर्जितावस्था का

प्रमाण देती हैं वे किलों और समाधियों के रूप में हैं। उनके धर्म मे मन्दिर बनवाने का कोई आदेश ही न था। चाँदा मे गोंड-राजाओं की जो समाधियाँ हैं उनके गृह-निर्माण-कला का ढङ्ग नवीन है। उनका ढङ्ग हिन्दू या मुसलमानी ढङ्ग से सर्वथा पृथक् है। चाँदा सात मील लम्बी शहरपनाह से घिरा है। यह शहरपनाह गोंडी ढङ्ग की किलेबन्दी का एक विचित्र उदाहरण है। यह इस समय भी विद्यमान है। इस दीवार में भारी भारी फसीलें बनी हैं। दीवार की चौडाई दस फुट है। उसके भीतर की ओर बडे बडे भारी धुस्स हैं। ये बुर्ज यद्यपि इधर उधर टूट-फूट गये हैं, किन्तु तोभी अभी अच्छी दशा में हैं। इसमें चार फाटक हैं। उत्तर ओर के फाटक का नाम जतपुरा, पश्चिम के फाटक का बिनवा या घोर मैदान, पूर्व के फाटक का अचलेश्वर और दक्षिण के फाटक का पठानपुर है। अचलेश्वर फाटक के समीप इमारतों का एक समूह है। यह एक अहाते के भीतर अलग स्थित है। अहाता प्राचीर से घिरा है, अतएव वह एक किला सा मालूम पडता है। यह स्थान गोंड राजाओं की समाधियों के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय ये सङ्ख्या में आठ हैं। सबसे बडी और उत्कृष्ट वीरशाह की समाधि है। उसी अहाते में अचलेश्वर का मन्दिर है, किन्तु यह मन्दिर एक दीवार बना कर समाधि-स्थान से अलग कर दिया गया है। इस मन्दिर की दीवारों पर छोटी छोटी अगणित चौकियाँ तराशी हुई हैं। इस प्रदेश के सब से अधिक सुन्दर मन्दिरों में इनकी गिनती

है। पूर्व-अध्याय मे हमने लिखा है कि गोंड-राज खण्डकिया बल्लालशाह ने इस मन्दिर तथा प्रसिद्ध दीवारो का नकशा बनवाया था। टीपागढ की दीवारें इस बात के लिए प्रसिद्ध हैं कि उनमे पत्थरो के बडे बडे भारी ढोके लगाये गये हैं। बडे बडे किले अपनी सुरक्षित दशा मे बल्लापेत और वैरागढ मे इस समय भी विद्यमान हैं और देवलवारा, भण्डक, भलाला, नेरी और सेगॉव के किले गिर कर खण्डहर हो गये हैं। परन्तु मालूम पडता है कि ये भी किसी समय बडी भारी और मजबूत इमारतें रही होगी। जनोना के ताल के बन्द पर डुण्डिया रामशाह का बनवाया महल तथा महल से लेकर नदी तक पुस्ता घाट की सीढियाँ और टीपागढ में झील के किनारे दीवारो के घेरे के भीतर उसी भाँति का एक दूसरा महल सभी टूटे फूटे पडे हैं। ये उस प्रकार की इमारतों की यादगार हैं जो उस जिले से अब बिलकुल लोप हो गई है। और यह बडे खेद की बात है, क्योंकि वे जलमहल शीतप्रद और अनन्द-दायक रहे होगे। छिन्दवाडा जिले की छिन्दवाडा-इमारतें देवगढ राज्य की हैं। ये सतपुडा की दक्षिणी श्रेणी के एक भाग पर छिन्दवाडा से दक्षिण पश्चिम लगभग २४ मील दूर स्थित हैं। ये इमारतें एक अहाते के भीतर हैं, जो एक अलग पहाडी की चोटी को एक दीवार से घेर कर बनाई गई हैं। यह दीवार लगभग आधा मील लम्बी और १५० से २०० गज चौडी है। इसके प्रत्येक ओर गहरी

और चौटी पाटियाँ हैं। इस अहाते के भीतर भी पत्थर के पुरता तालाब और इमारतें हैं। इनमें बादल-महल और नगरखाना या पूर्वी फाटक मुख्य हैं। नीचे घाटी में गोंड राजाओं की समाधियाँ हैं। मेहराब को छोड कर सारी इमारतें ईंट की बनी हुई हैं। परम्परा के अनुसार तो यह किला गोवली राजाओं का बनवाया कहा जाता है। गोंडों के पहले यही लोग वहा के शासक थे, परन्तु वर्तमान भग्नावशेष मुसलमानी ढङ्ग के हैं और बख्तबुलन्द के बनवाये कहे जा सकते हैं। वह सन् १७०० के लगभग जीवित था और उसने दिल्ली देखी थी।

जबलपुर—गढा जबलपुर से पश्चिम चार मील पर है। एक समय गढा-मण्डला गोंड राजवंश की राजधानी थी। उसकी प्राचीन इमारत मदनमहल के नाम से प्रसिद्ध है। यह महल एक ढलुई पहाडी तथा अपने सामने के घास के पुराने मैदान की शोभा इस समय भी बढाता है। मदनसिंह ने इसे सन् ११०० के लगभग बनवाया था। यह एक छोटी सी सादी इमारत है और इसमें केवल एक यही मनोहरता है कि यह एक अच्छे मौके की पहाडी की चोटी पर स्थित है।

मण्डला—गढा-मण्डला के गोंड-राजाओं का एक महल रामनगर में है। यह सन् १६६३ में बना था और मण्डला से लगभग १० मील पूर्व है। यह महल अच्छी दशा में वर्तमान है।

धर्म—गोंड लोग भूत की पूजा करते हैं। यही उनका धर्म है। वे अपने पूर्व पुरुषों को देवता मान कर पूजते हैं। उनके मकान के एक अत्यन्त पवित्र स्थान अर्थात् भोजनगृह में एक टोकरी मे छोटे छोटे कङ्कड रक्खे रहते हैं। इन्हे वे अपने पितरो के रूप मे विधि-पूर्वक नियत अवसरो पर पूजते रहते हैं। उनके सबसे श्रेष्ठ ईश्वर का नाम बडा देव है, परन्तु उसके मन्दिर के अन्तर्गत अन्य दूसरे—जीव और अस्त्र—भी रहते हैं। इनके हिन्दू नाम रख दिये गये हैं। इनमे से अनेक नामो का उल्लेख किया जा सकता है। जैसे, भीमसेन, पाण्डवो के भाइयो में से एक, फरसीपेन, युद्ध का देवता, घड्या, साँड की गर्दन का घण्टा, जञ्जीर या गाय की पूँछ, बाघ देव या शेर, दूल्हादेव, एक नवयुवा दुल्हा, जिसे पालो नामक एक चीता उठा ले गया था, भाले, सिर और दूसरो को ढकने के कपडे। छिन्दवाडा मे देवखाला या देव के कूटने की फर्श मिली है। इस पर सारे देवता इकट्ठे रक्खे हैं और प्रतिवर्ष कई बार उनकी पूजा होती है। परन्तु यह बात ध्यान मे रखनी है कि यह जाति धीरे धीरे हिन्दूपन में ढल रही है। मुख्य जाति दो भागो में बँटी है। राजगोंड राजपुरुष हैं और धुरगोंड साधारण प्रजा। हिन्दू लोग धुरगोंडों को रावण-वंशी भी कहते हैं। राजगोंड अधिकांश मे जमींदार होते हैं। वे लोग उन गोंड भूम्याधिकारियो की सन्तति माने जा सकते हैं जो एक अलग उपजाति मे परिणत कर दिये गये हैं और हिन्दूधर्म के अन्तर्गत मान लिये गये हैं।

नकी उच्चता इस बात से सिद्ध हो जाती है कि उन्होंने राजतों के साथ बेटी-बेटा का सम्बन्ध किया है। परन्तु सम्भवतः स बात के कुछ ही उदाहरण हैं। रेवरेण्ड स्टीफेन हिस्लप न्हें हिन्दुओ के हिन्दू कहते हैं। वे लोग यज्ञोपवीत पहनते । उनके यहाँ ईंधन धोकर रसोई मे जाता है। परन्तु उन तोगों मे से अनेक लोग चार या पाँच वर्ष मे अपने देवता बडादेव के दर्शन करने तथा कपड मे लपेटे हुए गो-माँस को अपने ओठों से छुलाने को वाध्य होते हैं, क्योंकि यह विश्वास है कि इस नियम के उल्लङ्घन करने से उन पर आपदा आने की सम्भावना है।

परिणाम—कुल मिलाकर गोंड-शासन सफल रहा। मध्यप्रदेश के वर्ण और जाति नामक पुस्तक के सम्पादक मिस्टर रसल गोंड शासन के सम्बन्ध मे इस तरह लिखते हैं—जिस धनी देश का शासन इन राजाओ ने किया वह इनके सरल तथा घटना-रहित आधिपत्य के कारण खूब फूला फला। भेडों के गल्लों तथा पशुओं के झुण्डों की वृद्धि हुई। राजकोष भर गया। फरिश्ता की पुस्तक मे हम लिखा पाते हैं कि पन्द्रहवीं सदी में खेरला के राजा ने वहमनी के वादशाह का आतिथ्य सत्कार दिल खोलकर किया था। उसने वादशाह को अनेक हीरे, माणिक और मोती भेंट किये थे। गढा-मण्डला की महारानी दुर्गावती के सम्बन्ध मे स्लीमन ने लिखा है—इस वंश के राजाओं के बीच इतिहास मे उसका स्थान बहुत ऊँचा

है । उसकी प्रजा उसे कृतज्ञता के साथ इस समय भी स्मरण करती है । जबलपुर के पास जो बडा भारी जलाशय है वह उसी ने बनवाया था । उसी के नाम से उस जलाशय का नाम रानीताल या महारानी का ताल है। उसने गढा के आस पास भी बडे काम की अनेक दूसरी इमारते बनवाई थीं। जब महारानी दुर्गावती युद्ध मे पराजित हुई थी तब लूट में जो माल शत्रुओ को मिला था उसके अन्तर्गत जवाहिरात, सोने और चॉदी की मूर्तियाँ तथा दूसरी अनेक बहु-मूल्य वस्तुएँ थीं। उसी माल में कम से कम मुहरों से भरे १०० घड़े और १००० हाथी भी शामिल थे । चॉदा के शासक, यदि हम उनके शासन-काल के कुछ पिछले वर्ष छोड दे, अपने पीछे एक सुशासित तथा सन्तुष्ट राज्य छोड गये थे ।

गोंडो का शासन-काल स्थापत्य-कला के प्रशंसनीय कार्यों से विभूषित है और उनके राज्य की समृद्धि उस दर्जे तक पहुँच चुकी थी जो उसे भविष्य में अब तक नहीं प्राप्त हो सकी है । हमे यह भी ज्ञात हुआ है कि गोंड-राजाओ ने अपनी प्रजा को अपनी रियासतें उन्नत करने के लिए एक उत्कृष्ट नियम द्वारा किस तरह उत्साहित किया था । उनका नियम यह था कि जो आदमी ताल खोदावेगा वह उस सारी भूमि का लगान पावेगा जो उस ताल के आस-पास होगी । कर-व्यवस्था हलकी थी और प्रजा को इस सम्बन्ध में जरा भी शिकायत न थी । परन्तु उन राजाओं मे अपनी रक्षा करने का बल नहीं

था। अतएव जब मरहठे सरदारों ने, जिन्हें युद्ध-कला का थोड़ा बहुत ज्ञान था, इस देश पर चढ़ाई की तब वे लोग बिना युद्ध किये ही पराभूत हो गये।

मुसलमानी जमाना

पहला अध्याय

बरार प्रान्त मे मुसलमानी शासन—सन् १२६४ से सन् १७७५ तक

बरार का दिल्ली के साम्राज्य मे मिलाया जाना—दिल्ली के साम्राज्य मे गोंडवाना (मध्य-प्रदेश) कभी नहीं मिलाया गया था। दिल्ली के बादशाह गोंडवाना के राजाओं पर केवल अपनी प्रधानता ही कायम रखने मे सन्तुष्ट रहते थे। परन्तु बरार दिल्ली के साम्राज्य मे मिला लिया गया था और उसका शासन बहुत दिनो तक मुसलमानो के हाथों मे रहा। बरार के मुसलमानी शासन मे आ जाने पर उसके आरम्भिक इतिहास का सम्बन्ध दिल्ली के मामलो से रहा है। हमने पूर्व-अध्याय मे लिखा है कि दिल्ली के सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी ने पहले पहल बरार को जीता था और अन्त मे उसके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खिलजी ने उसे साम्राज्य मे मिला लिया था। मलिक एकलाकी नाम का एक व्यक्ति उस प्रदेश का सूबेदार नियुक्त किया गया था। मुबारकशाह एक अयोग्य और विलासी बादशाह था। उसको उसके दास मलिक खुसरू ने मार डाला। परन्तु गयासुद्दीन

तुगलक ने खुसरु को सिंहासन से उतार कर मरवा डाला और सन् १३२० में स्वयं दिल्ली के तख्त पर बैठ गया। गयासुद्दीन ने बुद्धिमानी के साथ शासन किया। जो आक्रमण उसने दक्षिण पर किये उनके खर्च का भार बरार को उठाना पड़ा, यद्यपि उनसे इसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। गयासुद्दीन का उत्तराधिकारी महम्मद तुगलक था। वह बड़ा विद्वान् और योग्य पुरुष था परन्तु वह निर्दयी और मनमौजी भी एक ही था। उसने देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया और उसका नाम दौलताबाद रक्खा। उस समय दिल्ली में अकाल पड़ा था। उसने अकाल-पीड़ित अभागे दिल्लीवासियों को शहर खाली करने और अपने धन दौलत के साथ उस नई राजधानी की यात्रा करने को आज्ञा दी जो वहाँ से लगभग ८०० मील दूर थी। यद्यपि मार्ग में भयङ्कर नरहानि हुई और पीछे से वह असम्भव कार्य छोड़ दिया गया, तोभी अपनी मूर्खता और राक्षसी स्वभाव के कारण उसने दूसरी बार फिर प्रयत्न किया और इस तरह हजारों आदमियों की जानें उसकी मौज के आगे बलिदान हुईं। इस राजधानी-परिवर्तन से बरार के महत्व का बढ़ जाना बहुत कुछ स्वाभाविक है। परन्तु दौलताबाद साम्राज्य की राजधानी बहुत दिन तक न रह सका।

बरार, बहमनी वंश के राज्य का एक भाग— महम्मद तुगलक के शासन के अन्तिम काल में उसके

निर्दय उत्पीडन का विरोध करने के लिए दक्षिण के कुछ अमीर-उमराओं का एक दल सङ्गठित हुआ। उन लोगों के नेता का नाम हसन था। पहले वह गङ्गू नाम के एक ब्राह्मण का नौकर था। सन् १३४७ मे उन लोगों ने हसन को सुलतान अलाउद्दीन गङ्गू के नाम मे अपना बादशाह विघापित किया और एक स्वतन्त्र राज्य की प्रतिष्ठा की, जो बहमनी राज्य के नाम से इतिहास मे प्रसिद्ध है। गोलकुण्डा के पश्चिम कुलबर्गा मे उसकी राजधानी थी। इस राज्य का उत्तरी भाग बरार था। अलाउद्दीन की मृत्यु के पहले ही यह राज्य कृष्णा नदी के किनारे तक फैल गया था। इस तरह सन् १३४७ मे बरार दिल्ली-साम्राज्य से पृथक् कर लिया गया और बहमनी बादशाहों के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य का भाग हो गया। बरार के प्रबन्ध के लिए एक सूबेदार नियुक्त था। वह 'मजलिस आली' कहलाता था। राज्य के सूबेदार अधिकतर स्वतन्त्र हुआ करते थे। प्रान्तिक सेना का सेनापतित्व, राजस्व के सङ्ग्रह का भार और राजकर्मचारियो की नियुक्ति का अधिकार उसके ही हाथों में रहता था। बरार का पहला सूबेदार एक ईरानी था। इसका नाम सफदरखाँ सिस्तानी था।

कुलबर्गा मे शासन करनेवाले बहमनी वंश के बादशाहों की सूची नीचे दी जाती है —

अलाउद्दीनहसन गङ्गू	१३४७–१३५८
मुहम्मदशाह पहला	१३५८–१३७५

मुजद्दीदशाह	१३७५–१३८७
मुहम्मदशाह द्वितीय	१३८७–१३९२

इसकी आँखें फोड दी गई थी और यह तख्त से उतार दिया गया था।

शमसुद्दीन	सिंहासनच्युत और बन्दी किया गया।
ताजुद्दीनफिरोजशाह	१३९८–१४२२
अहमदशाह प्रथम	१४२२–१४३५
अलाउद्दीन अहमदशाह द्वितीय	१४३५–१४५८
हुमायूँशाह	१४५८–१४६१
निजामशाह	१४६१–१४६३
महम्मदशाह द्वितीय	१४६३–१४८२

सन १४९९ में बरार के शासक (तरफदार) फतेहउल्ला इमादुल मुल्क ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और इमादशाही नाम के वंश की स्थापना की। इसने ५ वर्ष तक बरार का शासन किया। अलाउद्दीन बहमनशाह ने अपने राज्य को चार प्रदेशों या तरफों में बाँट दिया था। इनमें बरार राज्य के बिलकुल उत्तरी सिरे पर था। माहुर, रामगढ़, और पथरी बरार के ही अन्तर्गत थे। बहमनी बादशाहों के शासन-काल में ऊँचे दर्जे के अमीर-उमरा बरार का शासन करते थे। वे लोग अपनी सेना भी अलग रखते थे। राज्य-प्रबन्ध का यह ढङ्ग सन् १४७८ तक जारी रहा। इसके बाद बरार

दो अलग अलग शासकों में बाँट दिया गया। वे दोनों भाग अपनी दुर्गमयी राजधानियों के नामों से पुकारे जाते थे। इनमें उत्तरी भाग गोविल और दक्षिणी माहुर कहलाता था। जब जब वहमनी वादशाहों ने विजयनगर, तेलङ्गाना, उडीसा तथा कोंकण के राजाओं, गुजरात, मालवा तथा खानदेश के सुलतानों और गोंडों से युद्ध किया तब तब उनके शासनकाल में बरार से सेनाएँ प्रस्तुत हुई थीं। इन युद्धों का विस्तृत विवरण देना इस इतिहास की सीमा के बाहर की बात है। हम यहाँ केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करेंगे जिनका सम्बन्ध बरार से है।

वहमनी वादशाहों के अधीन बरार का पहला तरफदार सफदरखाँ था। सन् १३६२ में वहमनी वादशाह मुहम्मदशाह ने तिलङ्गाना पर चढाई की। सफदरखाँ ने उस युद्ध में अपने प्रदेश की सेना का परिचालन किया था। उस समय दक्षिण में लूट-मार की धूम मची थी। उसे दूर करने के लिए वहमनी वादशाहों ने कडे उपायों से काम लिया। डाकू कत्ल कर दिये जाते और उनके मुण्ड राजधानी भेज दिये जाते थे। इस तरह के बीस हजार नर-मुण्ड इकट्ठा किये गये थे और हमारी समझ में सफदरखाँ भी इस कृत्य में शामिल था। सन् १३९३ में सफदरखाँ की मृत्यु हुई। उसका पुत्र सलावतखाँ बरार का तरफदार नियुक्त हुआ। सलावतखाँ की सूबेदारी में खेरला के गोंडराज नरसिंह राय ने बरार पर चढाई की। उसे पराजित करने के लिए

बहमनी बादशाह फिरोजशाह एक मजबूत सेना के साथ बरार की ओर तुरन्त रवाना हुआ । गोंडराज युद्ध में पराजित हुआ । उसने शपथ की कि मैं और मेरे उत्तराधिकारी बहमनी बादशाहो के अधीन रहेंगे । इसके सिवा उसने अपनी बेटी बादशाह का ब्याह दी । बादशाह ने उसे सम्मान के साथ छोड दिया । सम्भवत सलाबतखाँ इस युद्ध मे काम आ गया था । इसके बाद मीर फजलुल्लाह अजो बरार का तरफदार नियुक्त किया गया । सन १४१७ मे वह विजयनगर राज्य के भयङ्कर युद्ध मे मार डाला गया । सन् १४२२ मे अब्दुलकादिर नाम का एक व्यक्ति 'मजलिसे आली' 'खानेजहाँ' की पदवियो के साथ इस प्रान्त का सूबेदार बनाया गया। इसने ८० वर्ष तक इस प्रान्त का शासन किया । सन १४२५ में मालवे के बादशाह होशगशाह ने खेरला के गोंडराज नरसिंहराय के विरुद्ध युद्ध छेड दिया । वह दो बार हराया गया, परन्तु उसने अपनी तीसरी चढाई मे सफलता प्राप्त की । गोंडराज ने अपने अधिपति बहमनी बादशाह अहमदशाह से सहायता की प्रार्थना की । अहमदशाह ने बरार के सूबेदार का गोंडराज की सहायता करने के लिए आज्ञा भेजी और स्वयम् भी एलिचपुर की ओर चल पडा । एक भयङ्कर युद्ध हुआ और अन्त मे अहमदशाह जीत गया । सन् १४३३ मे होशगशाह ने फिर नरसिंह राय पर चढाई की और उसे युद्ध में मार डालने के उपरान्त खेरला को अपने राज्य में मिला लिया । अहमदशाह

होशंगशाह के विरुद्ध युद्ध छेड़ने को ही था कि खानदेश के बादशाह के बीच में पड़ने से सन्धि हो गई।

सन् १४०७ में निजामुलमुल्क नाम का एक तुर्क बरार का सूबेदार नियुक्त किया गया। उसने खेरला के लिए होशंगशाह से लड़ाई छेड़ दी और सफलता के साथ युद्ध जारी रक्खा। परिणाम यह हुआ कि खेरला बहमनी राज्य में मिला लिया गया। इस युद्ध में निजामुलमुल्क को दो राजपूतों ने मार डाला। इस पर वे दोनो राजपूत मार डाले गये और खेरला के निवासी आमतौर में कतल किये गये। मालवे के बादशाह ने खेरला के मिला लिये जाने का विरोध किया। तब एक दूसरी सन्धि हुई, जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि मालवा और बहमनी के बादशाह न तो एक दूसरे को छेड़ेंगे और न कोई किसी के देश पर चढ़ाई करेगा। खेरला मालवा के बादशाह को वापस दे दिया गया।

इमादशाही वंश—निजामुलमुल्क की मृत्यु के बाद कई वर्ष तक बरार की सूबेदारी का स्थान खाली पड़ा रहा। सन् १४७१ में फतेहउल्ला इमादुलमुल्क बरार का सूबेदार बनाया गया। यह अमीर विशेष ध्यान देने के योग्य है, क्योंकि इसने इमादशाही नाम के वंश की सस्थापना की। इसने लगातार पचासी वर्ष तक बरार का शासन किया। यह व्यक्ति कनाड़ी जाति का हिन्दू था। विजयनगर की चढ़ाई के समय यह अपने बचपन में ही बन्दी हो गया था। बरार के सूबेदार

ने इसे मुसलमान बना कर इसका पालन किया। उसकी मृत्यु के पीछे यही आदमी उसका उत्तराधिकारी नियत हुआ। इसने ब्राह्मण से अपनी उत्पत्ति या अपनी जन्मभूमि कभी नहीं भुलाई। इसने गाविलगढ के उत्तरी फाटक को विजयनगर के राज चिह्न से विभूषित किया। वह चिह्न दो सिरवाले पत्नी का है। कहा जाता है कि यह पत्नी हाथी का शिकार करता है।

सन् १४७३ और १४७४ मे दक्षिण भर म केवल बरार ही दो वर्ष के भयङ्कर अकाल म पीडित रहा। वहा के जो निवासी मरने से बच गये वे मारवाड और गुजरात को भाग गये। सन १४८० मे बरार दो नये प्रदेशो म विभक्त किया गया था अर्थात् गाविल नामक उत्तरी बरार और माहूर नामक दक्षिणी बरार। फतेहउल्ला इमादुलमुल्क केवल उत्तरी बरार का सूबेदार था। दक्षिणी बरार एक दूसरे सूबेदार के अधीन था। इसका नाम खुदावन्दखा अफ्रीकी था। प्रत्येक प्रदेश का प्रधान किला सूबेदार के ही अधीन रहता था। दूसरे किलों पर बादशाह का प्रत्यक्ष अधिकार रहता था। ये विलम्ब से किये गये सुधार प्रयाग मे भी विलम्ब से लाये गये। तरफदार लोग असन्तुष्ट होगये। नवयुवक बादशाह मुहम्मद-शाह बचपन म ही भोग विलास में लीन हो गया। वह उस समय केवल बारह वर्ष ही का था। अतएव देश का शासन कासिमबरीद तुर्की के हाथों मे चला गया। सन् १४९० मे फतेहउल्ला ने अपनी स्वतन्त्रता विघोषित कर दी। उसकी

देखादेखी अन्य दो अमीरों ने भी वैसाही किया। इनके नाम मलिक अहमद और लीसफ आदिलखाँ हैं। मलिक अहमद ने अहमदनगर-राज्य की नींव डाली और लीसफ आदिलखाँ ने बीजापुर राज्य की। सन् १५०४ में इमादुलमुल्क मर गया और उसका पुत्र अलाउद्दीन उसका उत्तराधिकारी हुआ। इमादशाही वंश के राजाओं की सूची नीचे दी जाती है —

फतेहउल्ला इमादुलमुल्क	१४६०–१५०४
अलाउद्दीन	१५०४–१५२६
दरिया इमादशाह	१५२६–१५६०
बुरहान इमादशाह	१५६०–१५७५

अलाउद्दीन यद्यपि युद्धप्रेमी था, परन्तु भाग्यशाली नहीं था। उसने अहमदनगर, बीदर और गोलकुण्डा के बादशाहों से लडाइयाँ लडीं, परन्तु लगभग प्रत्येक लडाई में उसी की पराजय हुई। अलाउद्दीन सन् १५२६ मे मर गया। दरिया इमादशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके प्रारम्भिक शासन-काल मे कोई उल्लेखयोग्य घटना नहीं हुई। वह बीजापुर के बादशाह से युद्ध करता रहा। उसने अहमदनगर के बादशाह हुसेन के साथ अपनी लडकी ब्याह दी और उससे सन्धि कर ली। सन् १५६० मे दरिया इमादशाह मर गया। उसका पुत्र बुरहान इमादशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ। इस शाहजादे को सिंहासन पर बैठे थोडे ही दिन बीते थे कि उसके मन्त्री तुफलखाँ ने उसे नरवला में कैद कर लिया। इसके बाद

उसने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। सन् १५७० में अहमदनगर के मुर्तजा निजामशाह बुरहान को कैद से छुड़ाने के दृढ़ विचार से बरार पर चढ़ाई की। तुफलखाँ, शत्रु के हाथों में गाविलगढ को सौंप देनेवाला उसका पुत्र शम्सुलमुल्क और बुरहान थोड़े समय के बाद पकड़ गये। वे कैद किये गये और अन्त में मार डाले गये। इस तरह बरार के इमादशाही वंश का शासन-काल समाप्त हुआ।

निजामशाही वंश—अहमदनगर का राज-वंश बरार पर अपना अधिकार बहुत समय तक न कायम रख सका। मुरतजा निजामशाह ने बरार के जिलों को अपने उमराओं को बाँट दिया और विजय का आनन्द उपभोग करने को अहमदनगर लौट गया। इसी बीच में मीरन मुहम्मदखाँ ने खानदेश के बुरहान इमादशाह की धाय के पुत्र को बरार का बादशाह बनाया। पुराने राज-वंश के अनेक भक्त उसके झण्डे के नीचे आ जुटे। परन्तु निजामशाह इस विद्रोह का दमन और मीरन मुहम्मदखाँ का पराभव करने में मुरतजा सफल हुआ। उसने मीरन मुहम्मदखाँ से एक भारी रकम दण्ड स्वरूप ली। सन १५७५ में मुरतजा निजामशाह ने सैयद मुरतजा सब्जारी नाम के एक व्यक्ति को बरार का सूबेदार नियुक्त किया। सन् १५७७ में यह खबर उड़ी कि मुगल सम्राट् अकबर दक्षिण पर चढ़ाई करेंगे। इस खबर से मुरतजा कुछ सावधान हुआ। सौभाग्यवश उक्त खबर कोरी गप्प ही निकली। अब मुरतजा

निर्बल होगया और वह अपने दरबार के अमीरो का अपने वश मे न रख सका। अतएव सलावतखाँ नाम का एक अमीर राज्याधिकार अपने हाथ मे करके राज्य का हर्ता-कर्ता बन बैठा।

बरार पर मुगलों की चढ़ाई—इसी समय अकबर ने अपने धाय के पुत्र खाँ आजम मिरजा अजीज खाँ को अहमदनगर पर चढाई करने का भेजा। उसका सामना करने को सलावतखाँ ने २०००० सेना भेजी। मुगल घुड-सवार-सेना खुले मैदान में इस सेना के सामने न आई। उसने एलिचपुर को लूट लिया और बाद को वह भाग खडी हुई। फिर कुछ वर्षों के लिए बरार मे शान्ति रही।

निजामशाह द्वितीय—सन् १५८८ मे मुरतजा निजामशाह को उसके पुत्र मीरन हुसेन ने गला दबा कर मार डाला। वह हुसेन निजामशाह द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठा। परन्तु दो ही महीने के भीतर वह भी मार डाला गया। इस पर अहमदनगर के अमीरो ने भागे हुए बुरहान के पुत्र इस्माइल को सिंहासन पर बिठाया। यह निजामशाह का भाई था। जमालखाँ नाम का एक सरदार राज्य का प्रबन्धक बन गया। उसी के हाथ सारा राज्याधिकार आगया। परन्तु विरोधी धार्मिक विचारो के कारण [illegible] अप्रिय होगया। जनता [illegible] होगई [illegible]

अपना [illegible] का

प्रयत्न—सन् १५९० में अकबर ने अपना ध्यान फिर दक्षिण की ओर फेरा। अकबर ने निजामशाह के भाई बुरहानखाँ को सब प्रकार की सहायता देने और अहमदनगर पर चढ़ाई करने को उससे कहा। उस समय अहमदनगर पर उसका पुत्र शासन कर रहा था, जो सर्वथा अनुचित था। चढ़ाई होने पर कई एक युद्ध हुए। अन्त में बुरहानखाँ ने जमालखाँ को हरा दिया और इस्माइल को कैद कर लिया। उसके बाद बुरहान निजामशाह के नाम से सिंहासन पर बैठा और नरखाँ को बरार का सूबेदार नियत किया।

मुगलों का समय—दिल्ली-साम्राज्य में बरार का मिलाया जाना—सन १५९५ के अप्रैल में बुरहान मर गया। उसका पुत्र इब्राहीम निजामशाह उत्तराधिकारी हुआ। वह केवल चार महीने राज्य कर सका। बीजापुर वालों से युद्ध करते समय वह मारा गया। अतएव राज्य के प्रबन्ध में बड़ा गड़बड़ हो गया और राज दरबारियों में एक दूसरे के विरुद्ध कई दल उठ खड़े हुए। इस अव्यवस्थित दशा से लाभ उठा कर सम्राट् अकबर के चौथे पुत्र मुराद ने अहमदनगर पर चढ़ाई कर दी। इसे बरार विजय करने का प्रयत्न करने को अपने पिता का फरमान भी प्राप्त था। सब की सम्मति से राजवराने की राजकुमारी चाँदबीबी या चाँद सुलताना राज्य की संरक्षिका नियत की गई। वह बड़ी शक्तिशालिनी स्त्री थी। दक्षिण में अपनी शक्ति और बुद्धि के लिए वह बहुत समय तक प्रसिद्ध रही।

यद्यपि इस समय वह पचास वर्ष की हो चुकी थी, तोभी उसका उत्साह ज्यों का त्यों बना था। जब मुगलों ने आक्रमण प्रारम्भ किया तब उनका मुकाबला करने को उसने स्वयम सेना का परिचालन किया। उसके प्रयत्नों तथा उसकी उत्साह-वर्द्धिनी मूर्ति की बदौलत मुगल सेना नगर पर अधिकार न कर सकी। अन्त मे मुगल-सेना को हट जाना पडा। परन्तु जो सन्धि की गई थी उसके अनुसार बरार मुगल बादशाह को दे देना पडा। सुलह हो जाने के बाद मुराद ने बरार पर अधिकार कर लिया। ढाई शताब्दियों के बीत जाने के बाद बरार एक बार फिर दिल्ली के बादशाह के अधीन हुआ।

इस घटना के कुछ समय बादही अहमदनगर मे घरू युद्ध छिड गया। चाँदबीबी मार डाली गई। जब बरार मुगल-साम्राज्य मे मिला लिया गया तब मुराद ने बालापुर से लगभग ६ मील दूर एक शहर बसाया। इसका नाम उसने शाहपुर रक्खा। इस शहर को उसने अपना सदर बनाया और बरार प्रदेश मुगल उमरावो मे बाँट दिया गया।

मुराद की मृत्यु के बाद अकबर ने सम्पूर्ण दक्षिण के विजय करने का विचार किया। पहले अहमदनगर का घेरा डाला गया और उस पर अधिकार किया गया। सम्राट् का पाँचवाँ पुत्र दनियाल अहमदनगर, खानदेश और बरार का सूबेदार नियत किया गया। इस सम्बन्ध मे उसे खानखाना का पदवी दी गई।

दनियाल ने सन् १६०५ तक बरार का शासन किया। परन्तु अधिक शराब पीने के कारण उसकी मृत्यु होगई। सन् १५९६-९७ के बरार का ब्योरेवार वर्णन आईन अकबरी में लिखा है। इससे हमें पता लगता है कि बरार उस समय तेरह सरकारों या राजस्व-सम्बन्धी जिलों में विभक्त था। इनमें सबसे अधिक सम्पन्न और विस्तृत गोविल का जिला था। इसमें ४४ परगने थे। वर्तमान समय का अमरावती जिला मोटे हिसाब से गोविल माना जा सकता है। इस जिले का भूमि-कर २८ लाख से अधिक था। इसके सिवा सेनाओं के वेतन के लिए २१ लाख की सुपरघाट या सोरे थीं। उसमें यह भी लिखा है कि एलिचपुर एक बड़ा शहर तथा राजधानी है और गोविलगढ का किला बहुत मजबूत है।

सन् १६१० में मलिक अम्बर नाम के एक सरदार ने अहमदनगर और बरार पर अधिकार कर लिया। मलिक अम्बर निजामशाही घराने का एक प्रभावशाली कर्मचारी था। जहाँगीर के शासन-काल में बरार के अधिकांश भाग पर मुगल राजकर्मचारियों की अपेक्षा विशेष करके मलिक अम्बर का ही अधिकार अधिक समय तक रहा है। जहाँ तक राज्य प्रबन्ध का सम्बन्ध भूमि-कर से था वहाँ तक सम्भवतः दो अमली राज्य-प्रबन्ध था अर्थात् दोनों दल के लोग जो कुछ पाते वसूल कर लेते थे। शाहजहाँ के शासन के प्रथम वर्ष में बरार एक बार फिर मुगलों के अधिकार में आ गया। सन १६३६ में दक्षिण का जो

भाग मुगलों के अधिकार में था वह सब का सब चार सूबों या प्रदेशों में बाँट दिया गया था। उनमे से एक बरार भी था। इसकी राजधानी एलिचपुर और प्रधान किला गाविलगढ था। शाहजहाँ का तीसरा पुत्र औरङ्गजेब इन सूबों का शासक नियुक्त किया गया। सन् १६५८ मे औरङ्गजेब राजसिंहासन पर अधिकार करने के लिए दक्षिण से चला गया। सन् १६५६ मे वह बादशाह हो गया। उसने राजा जयसिंह को दक्षिण का शासक नियुक्त किया। खिजरखाँ नाम का एक सरदार बरार का सूबेदार बनाया गया। सन् १६८० मे शिवाजी के पुत्र शम्भाजी ने बरार पर चढाई की और लूट मार करके उसे बडी हानि पहुँचाई। सन् १६८८ मे शम्भाजी का उत्तराधिकारी तथा चचेरे भाई राजाराम ने देवगढ के गोंड-राज बख्तबुलन्द की मदद से बरार को लूट-फूँक कर फिर नष्ट कर डाला। इसी गोंडराज ने औरङ्गजेब से सहायता पाने के लिए मुसलमानी धर्म स्वीकार कर लिया था। सन् १७१८ में सम्राट् फर्रुखसियर के सैयद मन्त्री अब्दुल्ला और हुसेनअलीखाँ ने बरार मे मरहठों के चौथ वसूल करने के स्वत्व को मान लिया। ये लोग एक नियत समय पर चौथ वसूल करने को बरार पर धावा किया करते थे। सम्राट् ने मरहठों को प्रजा से सरदेशमुखी नाम का कर भी लेने की आज्ञा दे दी। प्राचीन काल मे शासन-पद्धति के अन्तर्गत देशमुख नाम का एक पद था। यह कर उसी का एक प्रकार का पुरस्कार था।

यह सम्पूर्ण वसूल हुए राजस्व का १० रुपये प्रति सैकडा होता था।

इस घटना के एक वर्ष बाद मुहम्मदशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। परन्तु वास्तविक राज्याधिकार अभी तक उन्हीं दोनों सैयद भाइयों के हाथों मे था। चिनकिलीजखाँ, जो बाद को आसफजाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसने औरङ्गजेब के शासन के पिछले भाग के युद्धों में नाम पाया था, निजामुलमुल्क की पदवी से दक्षिण का शासक नियुक्त किया गया। परन्तु दिल्ली के उमराओं ने इस नियुक्ति का विरोध किया और गुप्त रीति से खानदेश के सुबेदार को कहला भेजा कि वह अखनल मे आसफजाह का विरोध करे। सन् १७२४ में बुलडाना जिले के शकरखेल्दा में एक युद्ध हुआ। इसमें मुबारकखाँ की बुरी तरह से हार हुई। इस युद्ध से हैदराबाद के निजाम-घराने के संस्थापक आसफजाह की वास्तविक स्वतन्त्रता प्रतिष्ठित हो गई। उसने अपनी विजय के उपलक्ष्य मे घटना-स्थल के ग्राम का नाम बदल कर फतेहखेल्दा रख दिया। तब से बरार निजाम के अधिकार मे आ गया, पर उस पर उसका अधिकार सदा नाम भरही रहा। नागपुर के भोसला राजाओं ने सारे प्रान्त में अपने अधिकारी नियुक्त कर दिये। इन्होंने इस पर अपनी सेना के बल से अधिकार कर लिया और आधे राजस्व से अधिक वसूल किया। कर वसूल करने के स्वत्व के लिए वे लोग स्वयम् आपस में

लड गये। परन्तु निजाम इस प्रदेश के शासक की न्यायानुकूल पदवी सदैव धारण किये रहा। पैगर और उसमे दक्षिण के कुछ परगनों का छोड कर, जो उदगीर और उमरखेद क युद्धों के उपरान्त सन् १७६० मे तथा अन्य दूसरे परगने जो खुरदा के युद्ध के उपरान्त सन् १७६० मे पेशवा को दिये गय थे, निजाम सारे प्रदेश पर अपना अधिकार मानता था।

वरार के प्राधान्य के लिए मुगलों और मरहठों के बीच का यह युद्ध आसफजाह और राघो जी भोसला के बीच सन् १७३७ में प्रारम्भ हुआ था। यह झगडा तब जाकर समाप्त हुआ जब सन् १८०३ में जनरल आरथर वेलेजली ने मरहठो के सङ्घ को असाई और अरगाव में पराजित किया और गोविलगढ के किले पर अधिकार कर लिया। इस पर भोसला राजा ने देवगढ की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार उसने वर्धा नदी के पश्चिम का सारा देश एव उसके राजस्व का स्वत्व त्याग दिया। एक छोटे से भूभाग के सहित गोविलगढ और नरनला भर उसके अधिकार मे रह गये। पर देश का वह भाग भी उसे दूसरे भूभाग के बदले मे मिला था।

अठारहवीं सदी के युद्धों मे बरार की जो हानि हुई होगी वह जरूर बहुत भारी होगी। जो प्रान्त आईन अकबरी मे खूब अच्छी तरह जोता बोया और स्थान स्थान में घना बसा लिखा है और जिसे सन् १६६७ मे एम० डी० थेवेनेट ने मुगल-साम्राज्य के सबसे अधिक धनाढ्य प्रदेशो मे एक

अनुमान किया था, वही बरार सत्रहवीं सदी के समाप्त होने के पहले ही बुरे समय का शिकार हुआ। खेती-बारी बन्द हो गई थी और लड़ाइयों के कारण राजकोष खाली हो गया था। स्थानिक राजस्व विभाग के कर्मचारियों ने विद्रोह कर दिया था। सेना भी विद्रोही हो गई थी। ऐसी दशा में उस निर्बल प्रदेश को मरहठों ने सरलतापूर्वक लूट लिया। जब कभी मुगल किसी राजस्व-कर्मचारी को नियुक्त करते तब मरहठे भी उसी पद पर अपनी ओर से एक दूसरा व्यक्ति नियुक्त कर देते और तब दोनों ओर के कर्मचारी लगान वसूल करने का अपना अपना स्वत्व प्रकट करने लगते थे। दोनों ओर के रसद एकत्र करनेवाले बलपूर्वक रसद उगाहते थे। फल यह होता कि उत्पीड़ित किसान बहुधा जोतना बोना छोड़ देते और स्वयम् अपने पड़ोसियों को लूटने लग जाते। इन उपायों से मरहठे बरार पर अपना अधिकार जमा लेने में सफल हुए, परन्तु उसकी सम्पत्ति नष्ट हो चुकी थी और खुल्लमखुल्ला लूटमार तथा बिना किसी सिद्धान्त या स्थिरता के धन खींचने के कारण उसके अधिवासियों का बिलकुल पतन हो गया था।

हैदराबाद में बरार का फिर मिलाया जाना— सन् १८०४ की हैदराबाद के बटवारे की सन्धि के अनुसार बरार के जो प्रदेश भोसला राजा ने दिये थे वे सब निजाम को दे दिये गये। सिन्दखेद और जलना के आसपास के इलाके भी सेन्धिया ने हैदराबाद-राज्य के सपुर्द कर दिया।

यद्यपि देवगांव की सन्धि से बरार में वास्तविक युद्ध बन्द होगया था, परन्तु पिंडारियों के लगातार धावों तथा कुशासन से भी प्रजा पीडित रहती थी। बरार निजाम के अधिकार मे उस समय आया था जब उसके राज्य म हद दर्जे की अव्यवस्था फैली थी । सन् १८०४ की जनवरी मे जनरल वेलेजली ने लिखा था कि गोदावरी से लेकर हैदराबाद तक निजाम के राज्य मे बडी अव्यवस्था है । सिन्दखेद तो चोरों का अड्डा बन गया है । इस देश का अस्तित्व ही डगमगा रहा है । अगणित प्रजा भूखों मर रही है । वहाँ कोई ऐसा राजशासन नहीं है जो पीडितो की जरा भी रक्षा कर सके ।

सन् १८०३ और १८२० के बीच बरार की मालगुजारी पिडारियो और भीलों की लूट खसोट के कारण आधी रह गई थी । शासन-प्रवन्ध मे अत्यन्त अपव्यय था । प्रदेश की रक्षा के लिए कोई २६००० सेना तैनात थी । निजाम की सहायता और शान्ति कायम करने के लिए अँगरेज सरकार को प्रत्येक समय हस्तक्षेप करना पडता था ।

सन् १८४६ मे अँगरेजी सेना ने एक आदमी को गिरफ्तार किया । यह आदमी अपने को नागपुर का भूतपूर्व राजा अप्पासाहब भोसला बतलाता था । निजाम-सरकार मेसर्स पामर एण्ड कम्पनी की बहुत अधिक ऋणी होगई थी । इस कम्पनी ने बरार में अगणित घोडसवार-सेना रखने के लिए उस

२४) प्रति सैकड़ा सूद पर भारी ऋण दिया था। हैदराबाद का पूरनमल नाम का एक महाजन बरार का बहुत सा भाग पट्टे पर पा गया था। परन्तु सन् १८३९ में वह हटा दिया गया और पारसी व्यापारियों का एक उद्योगी फर्म मेसर्स पेस्टनजी एण्ड कम्पनी उसके स्थान पर आ जमी। इस कम्पनी ने बरार से बम्बई को बहुत रुई भेजी। सन् १८४१ में हैदराबाद के दीवान चन्दूलाल ने राज्य का ऋण भुगताने के लिए उस कम्पनी को मालगुजारी की भारी रकमें उतार दीं। इन सब कार्रवाइयों से राज्य की मर्यादा को बड़ा धक्का पहुँचा। क्योंकि चन्दूलाल की राजस्व व्यवस्था से राज्य की मालगुजारी को हानि पहुँची। सन् १८४३ और उसके पीछे के वर्षों में निज़ाम-सरकार अँगरेज सरकार की ऋणी हो गई। यह ऋण उस सेना के वेतन के कारण हो गया जो उसकी रक्षा के लिए नियुक्त थी। सन् १८५३ में यह और इसी प्रकार के दूसरे दावे, जिनका शोध नहीं हुआ था, मिलकर कुल ऋण ४५ लाख हो गया। इस पर उसी साल एक नई सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार बरार का सूबा, जिसकी मालगुजारी ५० लाख थी, इस ऋण के तथा ब्रिटिश सरकार के दूसरे दावों के परिशोध के लिए दे दिया गया। उसी सन्धि में यह बात भी स्वीकार की गई कि हैदराबाद की कान्टिंजेन्ट सेना का प्रबन्ध अँगरेज-सरकार करे और उसका खर्च इस प्रदेश की मालगुजारी से चुकाया जाय।

इसके सिवा जो रकम बढ़े वह निजाम-सरकार को वापस कर दी जाय। इस तरह बरार में मुसलमानों का शासन समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

मुसलमानी शासन-काल में बरार की साधारण अवस्था

हिन्दू-शासन काल में बरार में खूब शान्ति रही। व्यापार, कारीगरी और धर्म फूला-फला। यह सब हम हिन्दू-काल के तीसरे अध्याय में लिख चुके हैं। मुसलमानी शासन-काल में निरन्तर के लड़ाई-झगड़ों से बरार अत्यधिक पीड़ित रहा। मुसलमानी समय के बरार की दशा के सम्बन्ध में सर ए० लायल इस तरह लिखते हैं—

"लम्बे विनाशकारी युद्ध, भयङ्कर झगड़े, विद्रोह क़त्ल. हत्याएँ, निर्दयतापूर्ण और जङ्गलीपन की सजाएँ, बादशाहों की मृत्युओं की दुखद कथाएँ उतनी ही बहुलता के साथ बहमनी राज्य के इतिहास में देख पड़ती हैं जितनी कि प्लैन्टाजेनिट और वैलोइस के इतिहासों में हैं। बहमनी शासन के आरम्भिक काल में डाकुओं की धूम मची हुई थी। बहमनी बादशाह मुहम्मदशाह ने डाकेजनी बन्द करने के लिए कठोर नियमों की अवतारणा की थी। डाकू क़त्ल कर दिये जाते और उनके सिर राजधानी भेज दिये जाते थे। इस तरह २०००० नर-मुण्ड इकट्ठे किये गये थे। इन नर-मुण्डों के भेजने में बरार के सूबेदार सफदरखाँ का भी हाथ रहा होगा।

राज्य प्रबन्ध की व्यवस्था—बहमनी बादशाहो के शासन के प्रारम्भिक भाग मे ऊँचे दर्जे के उमरा बरार का प्रबन्ध करते थे। ये लोग अपनी अपनी सेना भी अलग रखते थे। बहमनी बादशाहो ने अपने राज्यों को चार तरफो या प्रदेशो मे बॉट दिया था। प्रत्येक का शासन तरफदार या प्रादेशिक सूबेदार करता था। तरफदार अपन तरफ मे अधिकतर सब बातो मे स्वतन्त्र रहता था। वह अपनी प्रान्तिक सेना का सेनापति भी होता था। वह मालगुजारी एकत्र करता था और मुल्की तथा जगी कर्मचारियों की नियुक्ति भी उसी के हाथ मे थी। इन तरफो मे बरार भी एक तरफ था। शासन-प्रबन्ध की इस व्यवस्था से प्रधान सरकार की शक्ति स्वभावत क्षीण होगई और प्रादेशिक सूबेदारो का बल बढ गया था।

बहमनी बादशाह मुहम्मदशाह दूसरे ने इस बात को ताड लिया। अतएव उसने प्रादेशिक सूबेदारो के अधिकार घटा दिये।

प्रदेशों के अनेक परगने खास बना लिये गये थे। इनका प्रबन्ध करने को जो अधिकारी नियुक्त होते थे उन्हे बादशाह स्वय नियुक्त करता था। प्रत्येक प्रदेश के मुख्य किले का किलेदार नियुक्त करना प्रदेश के सूबेदार के हाथ मे रह गया था। प्रदेश के अन्यान्य किलो के किलेदारों की नियुक्ति स्वयम् बादशाह करता था। परन्तु ये सुधार विलम्ब से किये गये।

तरफदार लोग इन सुधारों से असन्तुष्ट होगये। वरार के तरफदार फतहउल्ला ने अपनी स्वतन्त्रता विघोषित कर दी। इस प्रदेश के प्रवन्ध का विस्तार के साथ विवरण आईन अकबरी मे दिया गया है। यह विवरण निजामशाही और इमादशाही बादशाहो के सम्बन्ध का है। इस काल मे वरार तेरह सर ारो या मालगुजारी के जिलो में बँटा था। इन सब मे गाविल सबसे बडा तथा धनपूर्ण था। इसमे ४४ परगने थे और यह वर्त्तमान समय का अमरावती का जिला माना जा सकता है। इस जिले का भूमिकर अट्ठाइस लाख से कुछ अधिक था। इसके सिवा ढाई लाख सुमरघाट नाम का कर भी था, जो सेना के वेतन के लिए अलग कर दिया गया था।

भूमिकर का प्रवन्ध देशमुख और देशपाडे करते थे। य पद वशानुगत थे। ग्रामो के एक मण्डल का प्रधान पटेल देशमुख होता था। भूमिकर उगाहने तथा भूमि को किसानों मे वाँटने का भार उसी पर रहता था। देशपाण्डिया प्रधान पटवारी या कानूनगो होता था। इस कर्मचारी का काम मालगुजारी का हिसाव किताव रखना था। ये लोग हिन्दू ही होते थे। देशमुख साधारण तौर पर कुनवा होता था और देशपाण्डिया ब्राह्मण। मुसलमान शासकों ने विजित जाति को प्रसन्न रखने के लिए इन हिन्दू कर्मचारियो को अपने पदों पर बने रहने दिया। देशमुखो के कई एक मुसलमानी घराने इस समय भी वरार में हैं, परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे लोग इन हिन्दुओ

के वंशधर हैं जिन्होंने औरङ्गजेब के शासन-काल में अपने वंश-परम्परागत पदों से न हटाये जाने के लिए मुसलमानी धर्म स्वीकार कर लिया था।

ऐसे देशमुखों के दो घरानों का एक विचित्र उदाहरण है। इनमें एक मुसलमान है और दूसरा हिन्दू। दोनों रिश्ते में चचेरे भाई होते हैं और एक दूसरे के पड़ोसी परगने में रहते हैं। इसी प्रकार के दो घराने अपने को राजपूत जाति के बताते हैं।

मुगलों के शासन में उनका दक्षिण का राज्य चार प्रदेशों या सूबा में बँटा था। उनमें एक बरार था। इसकी राजधानी एलिचपुर और मुख्य किला गाविलगढ़ था। मलिक अम्बर के शासन में बरार की दशा ज्यादा अच्छी थी। वह न्याय और बुद्धिमानी के साथ शासन करता था। जहाँगीर के शासन-काल के अधिक भाग में बरार का शासन मलिक अम्बर के हाथों में था।

अठारहवीं सदी के आरम्भ में जब मुगल और मरहठे बरार पर अपनी अपनी प्रधानता स्थापित करने के लिए लड़ रहे थे तब उस देश की दशा बहुत दुःखपूर्ण थी जैसा पिछले अध्याय में वर्णन किया गया है। मरहठों ने इस परिस्थिति से लाभ उठाकर बरार पर अधिकार कर लिया था।

पुरातत्व—मुसलमानी समय के पुरातत्व-सम्बन्धी चिन्हों में गाविलगढ़ का दुर्ग विशेष उल्लेख योग्य है। फरिश्ता के मत से इसका निर्माण-काल सन् १४२५ है। इसे अहमदशाह वली

बनवाया था । बहमनी घराने का यह नवाँ बादशाह था । सन् १४८८ में फतेहउल्ला इमादुलमुल्क ने इसकी मरम्मत करके इसकी उन्नति की । यह बादशाह बरार का पहला स्वतन्त्र बादशाह था । उस पहाड़ी पर जिन इमारतों के खण्डहर हैं उनमें सबसे प्रधान एक मसजिद है । इसके खण्डहर उस उच्चसम भूमि के दक्षिण ओर एक सर्वोच्च टीले पर विद्यमान हैं ।

मरहठा-काल

पहला अध्याय

भोसला-राजवंश

मरहठा-शक्ति का उदय—मरहठा-शक्ति के उदय का इतिहास सत्रहवीं सदी के आरम्भ से ढूँढा जा सकता है। शाहूजी भोसला नाम का एक सेनानायक बीजापुर के बादशाह के यहाँ नौकर था। उसके अधीन अगणित मरहठे बीजापुर की सेना मे भरती थे। मरहठे इस समय भी वैसे ही वीर तथा युद्ध-प्रेमी थे जैसे वे ह्वेनसाङ्ग के समय में प्रसिद्ध थे। शाहूजी का पैतृक स्थान पूना था। वहाँ वह अपने पुत्र शिवाजी को दादाजी कोंडदेव की निगरानी मे छोड आया था। शिवाजी को कट्टर हिन्दू-धर्म की शिक्षा दी गई थी। हिन्दू-धर्म पर जो चोटे मुसलमान करते थे उनसे उसकी रक्षा करने का कर्तव्य उसे लडकपन ही से सुझाया गया था। युवा होने के पहले ही उसने अपने साहस का परिचय दिया और अपने पडोसी मुसलमान राज्यों को जीतने के लिए सेना सङ्गठित की। तोरन दुर्ग पर अधिकार कर लेना उसकी वीरता का पहला काम था। यह दुर्ग बीजापुर के बादशाह का था। इस बडे काम के करने के समय

उसकी उम्र केवल १९ वर्ष की थी। यह घटना सन् १६४६ की है। उसने रायगढ़ में एक क़िला बनवाया। बाद का उसके पहाड़ी राज्य का केन्द्र और राजधानी यही स्थान हुआ। दक्षिण में शिवाजी ने जैसी वीरता के कार्य किये हैं उनका विवरण देना इस पुस्तक का विषय नहीं है। भारत के इतिहास में उनका स्थान है। अब हम यहाँ नागपुर के भोसला राजाओं के इतिहास की खोज करेंगे। सितारा ज़िले के देउर ग्राम का पटेल माधोजी महाराज शिवाजी के अधीन सिलादार या घोड़ों का नायक था। नागपुर के भोसला घराने का संस्थापक यही आदमी है। माधोजी के तीन पुत्र थे—बापूजी, परसोजी और शवाजी। मरहठों की उन्नति के प्रारम्भिक युद्धों में परसोजी ने युद्ध-सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किये थे। इन्हीं के पुरस्कार स्वरूप उसे बरार में चौथ वसूल करने का अधिकार दिया गया था।

रघुजी प्रथम—सन् १७०९ में परसोजी मर गया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र कान्होजी हुआ। परन्तु शीघ्र ही उसके स्थान में उसका भतीजा रघुजी नियुक्त किया गया। रघुजी माधोजी के द्वितीय पुत्र बापूजी का पौत्र था। नागपुर के भोसला राजाओं में प्रथम राजा रघुजी हुआ। इसके सिवा सब में अधिक प्रख्यात भी वही हुआ।

रघुजी का जन्म उसके पिता के गाँव पँडारना में सन् १६९८ में हुआ था। यह गाँव पूना के समीप है। उसने कुछ समय

तक कान्होजी के साथ नौकरी की थी। कान्होजी ने उसे गोद लेने का वादा भी किया था। परन्तु जब कान्होजी के पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसने निराश होकर उसकी नौकरी छोड़ दी। वह कुछ समय तक नागपुर में चाँदसुलतान के साथ रहा और वहाँ से वह सितारा चला गया। कान्होजी ने सितारा के राजा को अपने किसी व्यवहार से रुष्ट कर दिया था, इसलिए उसके स्थान में रघुजी की नियुक्ति की गई। सन १७३१ में रघुजी सितारा-दरबार की ओर से बरार की चौथ वसूल करने के काम में नियुक्त किया गया। सन १७३९ में वह नागपुर गया। क्योंकि चाँदसुलतान की विधवा बेगम ने उसे बख्तबुलन्द के अवैध पुत्र वलीशाह को पदच्युत कर देने के लिए बुलाया था। वलीशाह ने बलपूर्वक सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। रघुजी के आने पर वह मार डाला गया और राज्य के असली उत्तराधिकारी अकबरशाह और बुरहानशाह तख्त पर बैठाये गये। इसके बाद उनके साथ एक सन्धि करके रघुजी बरार वापस चला गया। इस सन्धि के अनुसार रघुजी को अपनी सहायता के बदले में ग्यारह लाख रुपये और वानगंगा पर के कई एक जिले भी मिले। कुछ समय बाद उन दोनों भाइयों के बीच परस्पर विवाद उठ खड़ा हुआ। बड़े भाई बुरहानशाह ने अपनी सहायता के लिए रघुजी को सन् १७४३ में फिर बुलाया। अकबर को देश निकाले का दण्ड हुआ और अन्त में उसे हैदराबाद में

विष दे दिया गया। जो देश दूसरी बार उसके कब्जे में आ गया था उसे रघुजी इस बार शक्तिहीन गोंडराज को वापस नहीं देना चाहता था। अतएव बुरहानशाह कार्यत राज-क़ैदी सा हो गया और राज्य के सम्पूर्ण अधिकार मरहठा सरदार के हाथ चले गये। उसने अपने को बुरहानशाह का संरक्षक विघोषित किया और नागपुर को राजधानी बना कर सारे देवगढ-राज्य को अपने राज्य मे मिला लिया। बुरहानशाह के वंशधर वर्तमान समय तक अपने मर्तबे को भोगते चले आये हैं और उसके वंशधर इस समय भी नागपुर में रहते हैं। वे राजा की पदवी धारण किये हैं और लोग उन्हें सस्थानिक कहते हैं। रघुजी की वीरता के कार्यों का क्षेत्र विस्तृत और उनकी संख्या भी अगणित है। उसने उत्तर में इलाहाबाद और दक्षिण मे कर्नाटक तक चढाइयाँ की थीं। इसके बाद बङ्गाल पर उसकी चढाइयाँ शुरू हुईं और लगातार दस वर्ष तक होती रहीं। इनका परिणाम यह हुआ कि कटक का प्रदेश उसने अपने कब्जे मे कर लिया और बङ्गाल के नव्वाब अलीवर्दीखाँ ने उसे चौथ के रूप मे १२ लाख रुपये वार्षिक देने का वादा किया। उसने सन् १७४३ से सन् १७५५ तक नागपुर मे शासन किया। सन् १७५१ तक वह देवगढ-राज्य, चाँदा और छत्तीसगढ जीत चुका था। उसके सेनापति भास्करपन्त के चढाई करने पर रत्नपुर राज्य बिना युद्ध के ही सन् १७४१ मे हस्तगत हो गया था। सन् १७४६ मे दिवद ने विश्वासघात

करके चाँदा का किला रघुजी के हवाले कर दिया। उसके दो वर्ष बाद वह किला उसे पूर्ण रूप से मिल गया। सन् १७५५ मे रघुजी मर गया। जो देश उसके अधिकार में थे और जो उसे कर देते थे वे पूर्व मे बङ्गोपसागर से लेकर पश्चिम मे अजन्ता की पहाडियो तक और उत्तर मे नर्मदा से लेकर दक्षिण मे गोदावरी तक फैले थे। रघुजी एक पूर्ण आदर्श मरहठा सरदार था। वह वीर और दृढ निश्चय का था।

जानोजी—रघुजी का उत्तराधिकारी उसका पुत्र जानोजी हुआ। जानोजी के अधिकारारूढ होने का विरोध उसके दूसरे भाई माधोजी ने किया। यह मामला पेशवा के दरबार मे पूना मे उपस्थित किया गया। वहाँ से जानोजी सेवा साहब सूबा की पदवी के सहित नागपुर के राज्य पर प्रतिष्ठित किया गया और माधोजी को जीविका के रूप मे चाँदा और छत्तीसगढ का राज्य मिला। जानोजी अपने पिता के जीते हुए देशो को सुगठित करने मे तन मन से लग गया। पानीपत के युद्ध मे उसकी कुछ हानि नहीं हुई। उस युद्ध मे दूसरे मरहठा सरदारों की भयङ्कर हानि हुई, अतएव वह उन लोगों से अधिक बलवान हो गया। इस युद्ध के बाद शीघ्र ही निजाम ने माधवराव पेशवा की नाबालिगी से लाभ उठाकर उसके राज्य पर चढाई कर दी। इस अवसर पर जानोजी को पूना-दरबार ने इसलिए राजी कर लिया था कि वह निजाम की ओर न मिल जाय। पेशवा ने उसे बरार की सरदेशमुखी प्रदान की।

इसके सिवा चाँदे मे अपने भाई से निपटने के लिए वह पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया गया। परन्तु यह नहीं मालूम होता कि जानोजी ने पेशवा और निजाम के युद्ध मे किसी तरह की गतिविधि प्रकट की थी। इस चढाई मे निजाम की जीत हुई। पेशवा को सन् १७६२ मे निजाम की इच्छा के अनुसार सन्धि करनी पडी।

निजाम ने दूसरे ही वर्ष जानोजी को अपनी ओर कर लिया और तब दोनो ने मिलकर पूना को लूट कर उसे जला दिया। जानोजी का यही अन्तिम विश्वासघात नहीं था। इस प्रकार की करतूतें उसने कई बार कीं। इस बार पेशवा ने उसे ३२ लाख की आमदनी का देश देने का वादा किया और उसे अपनी ओर फोड लिया। जब जानोजी पेशवा के पक्ष मे हो गया तब उसने अपनी सेनाओ के साथ उसे निजाम पर चढाई करने को उभाडा। इस युद्ध मे निजाम पूर्ण रीति से पराजित हुआ और वादे के अनुसार जानोजी को उक्त देश दिया गया। परन्तु बालक पेशवा ने उसे उसके विश्वासघात के लिए बहुत धिक्कारा। पेशवा जानोजी से घृणा करता था। अतएव उसने पूना की लूट का बदला लेने को सन् १७६५ मे निजाम से मेल कर लिया। दोनो मित्रों की सम्मिलित सेनाएँ नागपुर पर चढ दौडीं। नागपुर फूँक दिया गया। इसके सिवा जानोजी को उस लूट का अधिकाश भाग पेशवा को वापस करना पडा जो उसने विश्वासघात कर के पूना लूटकर प्राप्त किया था। इस घटना के दो वर्ष बाद जानोजी ने पेशवा के विरुद्ध

फिर हथियार उठाया । वह उस विद्रोह मे शामिल हो गया जो पेशवा के चाचा रघुजी और गायकवाड ने खडा किया था। उधर पेशवा ने वरार मे होकर नागपुर पर चढाई की और इधर पेशवा को धोखा देकर जानोजी निकल भागा और पूना के आस पास उसने लूट मार मचादी। परन्तु अन्त में वह सन्धि की प्रार्थना करने को वाध्य किया गया। सन् १७६९ के अप्रैल मे सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार जानोजी को पूर्ण रूप से पेशवा की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसके सिवा जब कभी आवश्यकता हो तब ६००० सेना के साथ उसे खुद पेशवा की सेवा मे उपस्थित होने की प्रतिज्ञा करनी पडी और वार्षिक पाँच लाख रुपये कर के रूप में देने को भी वह वाध्य हुआ। इसके सिवा विना पेशवा की स्वीकृति के किसी विदेशी शक्ति के साथ सन्धि और विग्रह करने का अधिकार भी उसके हाथ से जाता रहा। जब वह नागपुर वापस आ रहा था तब सन् १७७२ के मई में गोदावरी के किनारे तुलजापुर मे उसकी मृत्यु हो गई। दो अवसरो को छोडकर उसके शासन-काल में नागपुर राज्य मे पूर्ण रूप से शान्ति विराजती रही। अपने पिता के विजित राज्यों के सुप्रबन्ध के लिए जानोजी का नाम स्मरण किया जाता है। वह अपने निज के जीवन में और राज्य तथा धर्म-सम्बन्धी अपने सारे कर्तव्यों के पालन करने मे खूब नियमबद्ध रहा। उसकी प्रजा को उसके पास पहुँचने में पूर्ण सुविधा थी। राजनैतिक योग्यता मे वह असफल रहा।

ऐसा मालूम पड़ता है कि उसने पेशवा और निजाम के साथ व्यवहार करते समय अधिकता की और यही कारण है जो ये दोनों उसके विरुद्ध युद्ध में मिल गये।

सवाजी और माधोजी—जानोजी की मृत्यु के बाद जब उसके एक दूसरे भाई सवाजी ने शासनाधिकार अपने हाथ में कर लिया तब माधोजी ने रावोजी नामक एक नवयुवक बालक को अपने साथ लेकर शीघ्रही नागपुर की यात्रा करदी। इस बालक को जानोजी ने गोद लिया था और यह उसका भतीजा भी था। कोई ढाई वर्ष तक घरेलू युद्ध छिड़ा रहा।

माधोजी—सन् १७७३ में दोनो दलों में आपस मे कुछ समझौता हो गया और सयुक्त शासन होता रहा। इस घरेलू युद्ध मे मृत राजा की विधवा रानी दरयाबाई ने प्रधान भाग लिया था। कभी वह एक दावेदार का पक्ष लेती तो कभी दूसरे का। इस कलह का अन्तिम निर्णय नागपुर से ६ मील दक्षिण पाँचगाँव के युद्ध मे हुआ था। लगभग पूर्ण रीति से पराजित हो जाने पर माधोजी ने अपने भाई सवाजी को युद्धभूमि में गोली मार दी और इस तरह निर्विवाद रूप से वह अपने पुत्र का अभिभावक हो गया। माधोजी ने तुरन्त राज्य के सारे कार्यों को सुव्यवस्थित करना आरम्भ कर दिया। उसने बुद्धिमानी और दयालुता के साथ राज्य का शासन किया। सन् १७७७ मे मिस्टर हेस्टिंग्स ने माधोजी और उसके मन्त्री दिवाकर पण्डित के साथ शुभ सम्बन्ध स्थापित

किया था। परन्तु वह अँगरेजों के विरुद्ध कटक में सेना भेजने को वाध्य हुआ। क्योंकि वह पूना दरवार से सम्बन्ध भङ्ग करना नहीं चाहता था। एक नई सन्धि द्वारा सन् १७८५ में मण्डला और नर्मदा की ऊपरी तराई के देश नाम मात्र के लिए नागपुर-राज्य में मिला दिये गये थे। इसी सन्धि के अनुमार माधोजी ने २७ लाख रुपया पूना के खजाने में अदा करना भी स्वीकार किया था।

रघुजी द्वितीय—सन् १७८८ में माधोजी की मृत्यु हुई। उसके समय में सारा नागपुर राज्य शान्त और सब प्रकार से सम्पन्न रहा। अपने उत्तराधिकारियों के लिए वह नक़द रुपयों तथा जवाहिरात से भरा हुआ भारी खजाना छोड गया था। उसका पुत्र वयस्क था और उसे राजा की उपाधि भी प्राप्त थी। अपने योग्य पिता के जीवनकाल मे वह उसके प्रति विनम्र तथा उसका आज्ञाकारी सदा वना रहा। उसके छोटे भाई व्यङ्काजी को सेना-धुरन्धर की पदवी दी गई थी। चाँदा और छत्तीसगढ उसे जागीर के तौर पर मिले थे। उसके दूसरे भाई चिमनाजी को मण्डला दिया गया था, परन्तु रघुजी के नागपुर वापस आने के उपरान्त थोडे ही समय में चिमनाजी की मृत्यु होगई। जव पेशवा ने टीपू पर चढाई की थी तव उसकी सहायता के लिए रघुजी की भी सेना गई थी। यह युद्ध सन् १७८९ में शुरू हुआ था। उसने निजाम के विरुद्ध उस चढाई में तन मन से भाग लिया था जिसके

कारण सन् १७६५ के मार्च में खर्दा का युद्ध हुआ था। उन लाभों में भी उसे भाग मिला था जो निजाम से सन्धि करने में प्राप्त हुए थे।

इसके बाद रघुजी पेशवा के साथ पूना चला गया। वहाँ उसने अपने दावे फिर पेश किए। तदनुसार नर्मदा के दक्षिण के जिले, जो सेन्धिया के प्रभाव के कारण अभी तक नहीं दिये गये थे, उसे मिल गये। इसके सिवा होशङ्गाबाद तथा भूपाल के दूसरे स्थानों के देने का वादा भी पेशवा ने उससे किया। बाद के दो वर्षों में उसने एक दूसरे बुन्देला राजा से चौरागढ, तेजगढ और धमोनी के क़िले ले लिये। सन् १७६७ में यशवन्तराव हुल्कर नागपुर आया। वह रघुजी की शरण आया था, परन्तु इसके विपरीत वह कैद कर लिया गया।

नागपुर-राज्य—रघुजी द्वितीय के शासनकाल में नागपुर-राज्य उन्नति की चरम सीमा को पहुँच गया था। उडीसा तथा छोटा नागपुर के कुछ रजवाडों के सिवा सम्पूर्ण वर्तमान मध्यप्रदेश तथा बरार उसके अधीन हो गया था। उसके राज्य का राजस्व एक करोड रुपये के लगभग था। उसकी सेना मे १८ हजार घुडसवार और २५ हजार पैदल थे। उनमे ११ हजार पैदल सैनिक थे। इसके सिवा ४००० अरबी सैनिकों की सेना अलग थी। तोपखाने में ९० तोपे थीं। सन् १८०३ तक मरहठों का शासन-प्रबन्ध पूर्णरीति से सफल रहा।

किया था। परन्तु वह अँगरेजों के विरुद्ध कटक में सेना भेजने को बाध्य हुआ। क्योंकि वह पूना दरबार से सम्बन्ध भङ्ग करना नहीं चाहता था। एक नई सन्धि द्वारा सन् १७८५ में मण्डला और नर्मदा की ऊपरी तराई के देश नाम मात्र के लिए नागपुर-राज्य में मिला दिये गये थे। इसी सन्धि के अनुसार माधोजी ने २७ लाख रुपया पूना के खजाने में अदा करना भी स्वीकार किया था।

रघुजी द्वितीय—सन् १७८८ में माधोजी की मृत्यु हुई। उसके समय में सारा नागपुर-राज्य शान्त और सब प्रकार से सम्पन्न रहा। अपने उत्तराधिकारियों के लिए वह नक़द रुपया तथा जवाहिरात से भरा हुआ भारी खजाना छोड गया था। उसका पुत्र वयस्क था और उसे राजा की उपाधि भी प्राप्त थी। अपने योग्य पिता के जीवनकाल में वह उसके प्रति विनम्र तथा उसका आज्ञाकारी सदा बना रहा। उसके छोटे भाई व्यङ्काजी को सेना-धुरन्धर की पदवी दी गई थी। चाँदा और छत्तीसगढ उसे जागीर के तौर पर मिले थे। उसके दूसरे भाई चिमनाजी को मण्डला दिया गया था, परन्तु रघुजी के नागपुर वापस आने के उपरान्त थोडे ही समय में चिमनाजी की मृत्यु होगई। जब पेशवा ने टीपू पर चढाई की थी तब उसकी सहायता के लिए रघुजी की भी सेना गई थी। यह युद्ध सन् १७८९ में शुरू हुआ था। उसने निजाम के विरुद्ध उस चढाई में तन मन से भाग लिया था जिसके

ने यह देखा कि युद्ध होना निश्चित है तब उसने यह प्रस्ताव किया कि सबकी सेनाएँ, यहाँ तक कि अँगरेज़ो की भी, अपने अपने देश को लौट जायँ। उसने यह प्रस्ताव सेन्धिया और भोंसला का उद्देश समझने के लिए किया था। जब उन लोगों ने वैसा करने से इन्कार कर दिया तब उनके विरुद्ध तुरन्त युद्ध विघोषित हो गया। सेन्धिया और भोंसला की सेनाएँ अँगरेज़ी सेना से कई गुना अधिक थीं। इसके सिवा फरासीसी सेना-नायकों ने उन्हें सावधानी के साथ शिक्षित भी किया था। कहा जाता है कि युद्धभूमि में मरहठी सेना की संख्या ३,००,००० के ऊपर थी।

असाई का युद्ध—जनरल वेलेज़ली ने सन् १८०३ के अगस्त में अहमदनगर पर अधिकार कर लिया। इस स्थान में सेन्धिया की युद्ध-सामग्री थी। यह उसने पहली सफलता प्राप्त की। इसका बदला सेन्धिया ने अँगरेज़ों के पश्चाद्भाग में निज़ाम के राज्य को लूट कर लिया। परन्तु वह बहुत समय तक लूट मार न कर सका, क्योंकि वेलेज़ली ने चक्कर काट कर और धावे पर धावे करता हुआ उसका मुक़ाबिला करने को असाई के मैदान में आ पहुँचा। असाई एक छोटा गाँव है। यह बरार और खानदेश के बीच गोदावरी की दो सहायक नदियों के सङ्गम पर स्थित है। अँगरेज़ों की सैन्य-संख्या केवल ४७०० थी और उनके पास २६ तोपें थीं। उधर सेन्धिया और भोंसला की सैन्य-संख्या ५०,००० तथा उनके पास १२६ तोपें

रघुजी द्वितीय—सन् १७६८ मे मिस्टर कोलब्रुक नागपुर-दरबार का रेजीडेन्ट नियुक्त किया गया। परन्तु वह सन् १७६६ के मार्च में नागपुर पहुँचा। सन् १८०१ के मई मे अँगरेज रेजीडेन्ट, जिसने सेन्धिया के विरुद्ध सरत्तक-सन्धि करने की व्यर्थ चेष्टा की थी, नागपुर से चला गया और सेन्धिया तथा रघुजी दोनो अँगरेजों का विरोध करने को सन् १८०२ में मिल गये। इधर पेशवा, यशवन्तराव हुल्कर से पूर्ण रीति से पराजित होकर वेसीन में अँगरजों की शरण लेने को बाध्य हुआ। अँगरेजो ने पेशवा को इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि वह उनके साथ सबसीडियरी सन्धि कर ले। इस सन्धि के अनुसार पेशवा एक अँगरेजी सेना अपनी राजधानी मे नियत रखने को बाध्य हुआ और अँगरेजो ने उसकी रक्षा करने का वचन दिया। यही वेसीन की सन्धि थी। जब सेन्धिया, हुल्कर, भोंसले आदि सब बड़े बड़े मरहठे सरदारों ने यह समाचार सुना तब वे लोग बहुत नाराज हुए और उस सन्धि को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। परन्तु अँगरेजी सेना के सेनापति जनरल वेलेजली पेशवा को गद्दी पर फिर बैठाने के लिए इतनी शीघ्र गति के साथ पूना की ओर बढ़ा कि उन लोगो के लिए एक साथ मिल कर भिड़ने की सम्भावना ही न रह गई। यशवन्तराव बिगड़कर इन्दौर चला गया। परन्तु सेन्धिया और रघुजी भोंसला ने अपने बड़े बड़े सेनादल दक्षिण मे भेजे। जब जनरल वेलेजली

के उपरान्त वे लोग पराजित हो गए। जब गोविलगढ का किला हाथ से निकल गया तब रघुजी पूर्ण-रूप से विनष्ट हो जाने के पहले तुरन्त सुलह का प्रस्ताव करने को बाध्य हुआ और गोविलगढ के निकल जाने के दो दिन बाद ही उसने सन् १८०३ के दिसम्बर की १७ वीं तारीख को देवगाँव के सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। इस सुलह के अनुसार वह अपने राज्य का लगभग एक तिहाई भाग, जिसमें पूर्वी तथा पश्चिमी बरार एवं बालेश्वर और सम्भलपुर तथा उसके रजवाडे थे अँगरेजों को दे देने को बाध्य हुआ। इसके सिवा उसे अपने दरबार में सदा एक रेजोडेन्ट रखना स्वीकार करना पडा। इस पद पर मिस्टर मन्स्टुअर्ट एलफिन्स्टन नियुक्त हुआ था। जब अँगरेजों से भोसला लड रहा था तब भूपाल के नव्वाब ने होशङ्गाबाद पर कब्जा कर लिया था। अतएव रघुजी ने उसी वर्ष उस पर फिर अधिकार कर लिया। सन् १८०६ में अँगरेजों ने सम्भलपुर तथा उसके अन्तर्गत रजवाडो के सहित भोसला को फिर वापस दे दिया।

कुशासन का समय—१८०८-१८१८—सन् १८०४ तक मरहठों का शासन कुल मिला कर सफल रहा, किन्तु इसके बाद से कुशासन का जमाना शुरू हो गया और सन् १८१८ में उसका भी अवसान हो गया। रघुजी का शासन निरकुश तथा कठोर हो गया था। उसने अनुचित कर लेना तथा कृषकों को चूसना शुरू कर दिया। वह अपने सैनिकों का मासिक

थी। मरहठे बड़ी दृढ़ता से लड़े, परन्तु अँगरेजों की सङ्गीन की मार के आगे वे अधिक देर तक न ठहर सके। अँगरेजी तोपों को छीन लेने के लिए उन्होंने घोर युद्ध किया।, वे लोग बड़ी ही मार काट करने के बाद अपने मोरचों के पीछे नदी में खदेड़ दिये गये। युद्ध समाप्त होने के बहुत पहले ही सेन्धिया और भोंसला भाग गये थे। उनका पीछा कर्नल स्टेवेन्स ने किया। यह कर्नल सहायक सेना लेकर युद्ध में भाग लेने के लिए बहुत विलम्ब करके आया था। इसी बीच दूसरी ओर जनरल लेक ने कानपुर से कूच कर अलीगढ़ के मजबूत किले पर धावा करके अधिकार कर लिया और सेन्धिया की सेनाओं को दिल्ली और आगरे में पराजित किया। इसके बाद उन्हें अलवर राज्य के लासवाड़ी के मैदान में हराया। इस तरह बार बार हारने पर सेन्धिया ने सुलह का प्रस्ताव किया। परन्तु उसमें ऐसी शर्तें की गईं जो उसे स्वीकार न हुईं।, अस्तु लड़ाई जारी रही। इसके बाद वेलेजली और स्टेवेन्स ने सेन्धिया और भोंसला की सम्मिलित सेनाओं का मुकाबिला बरार के अरगाँव में किया और एक छोटी किन्तु खूनी लड़ाई के उपरान्त उन्हें पूर्णतया पराजित कर दिया। उनकी सेनाएँ तितिर बितिर होकर भाग खड़ी हुईं। अब वेलेजली का विचार रघुजी के प्रधान किले गोविलगढ़ के लेने का हुआ। वह बड़ा मजबूत किला था। परन्तु पहले की अपनी पराजयों से मरहठे भयभीत थे ही, अतएव थोड़ी देर तक सामना करने

राजा के शरीर तथा अपने पद के गौरव की रक्षा करती रही, किन्तु मनकरिया (मरहठा सरदारों) तथा सेनानायकों की स्वीकृति से माधाजी भोसला या अप्पा साहब, जैसा कि साधारण तौर पर वह प्रसिद्ध था, अभिभावक के पद पर आसीन किया गया।

अप्पा साहब—मृत राजा के छोटे भाई व्यङ्काजी का पुत्र था। अभिभावक बनाये जाने पर उसने नये रेजीडन्ट मिस्टर जेन्किन्स को अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि वह अँगरेजों के साथ पूर्ववत् सम्बन्ध बनाये रक्खेगा। सन् १८१६ की २८ वीं मई को एक नई सन्धि हुई। उस सन्धि के अनुसार परसोजी को अँगरेजों की घुड़सवार सेना तथा तोपखाना के सहित छ दल पैदल सेना रखनी पड़ी और इसके खर्च के लिए उसे साढ़े सात लाख रुपये वार्षिक देना पड़ा। इसके सिवा युद्ध में अँगरेजों की सहायता करने के लिए उसे खुद ३००० घुड़सवार और २००० पैदल सेना रखनी पड़ी। सन् १८१७ के अप्रैल में आवश्यक राज्य सम्बन्धी कार्य के बहाने अप्पा साहब राजधानी से चांदा चला गया। उसके चले जाने के कुछ दिनों बाद एक दिन परसोजी अपने बिस्तरे पर मरा पाया गया। किन्तु बाद को यह प्रमाणित हो गया कि उसे अप्पा साहब ने विष दिलवा दिया था।

परसोजी के कोई सन्तान न थी। उसने किसी और को गोद भी न लिया था। फलतः उसके अत्यधिक समीप का

वेतन रोक रखता था । इससे उन्हे सूद की अधिक दर पर रुपया कर्ज लेना पडता था । इन सब बातों के कारण लोग उसे 'बडा बनिया' कहते थे । देश मे जान माल की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था । पिण्डारी लोग प्रजा को नियमित रूप से लूटते खसोटते थे । उनका साहस यहाँ तक बढ गया था कि सन् १८११ के नवम्बर मे वे लोग नागपुर पर चढ दौड़े और उसके पडोस के एक गाँव को जला दिया । वे लोग तब लौटे थे जब उन्हे यह मालूम हुआ कि अँगरेजो की दो सेनाएँ उनका सामना करने को आ रही हैं ।

भोपाल को जीतने तथा उसे आपस मे बाँट लेने के लिए सन् १८१३ में रघुजी ने सेन्धिया के साथ एक समझौता किया । ९ महीने तक राजधानी को घेरे रहने के उपरान्त वे लोग सन् १८१४ की जुलाई में हताश होकर लौट गये । क्योंकि वजीर महम्मद ने वीरता और साहस के साथ उनका सामना किया । रघुजी तो भोपाल लेने का प्रयत्न फिर आरम्भ कर देता यदि बगाल की गवर्नमेन्ट उसे वैसा करने से न रोकती ।

परसोजी—सन् १८१६ के मार्च मे रघुजी मर गया । उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र परसोजी हुआ । परसोजी अन्धा, पङ्गु और पक्षाघात के रोग से पीडित था । उसके सिंहासन पर बैठने के उपरान्त मृत राजा की विधवा रानी बकाबाई उसकी अभिभाविका नियुक्त हुई । कुछ समय तक वह

राजा के शरीर तथा अपने पद के गौरव की रक्षा करती रही, किन्तु मनकरिया (मरहठा सरदारों) तथा सेनानायकों की स्वीकृति से माधोजी भोंसला या अप्पा साहब, जैसा कि साधारण तौर पर वह प्रसिद्ध था, अभिभावक के पद पर आसीन किया गया।

अप्पा साहब—मृत राजा के छोटे भाई व्यङ्कोजी का पुत्र था। अभिभावक बनाये जाने पर उसने नये रेज़ीडेन्ट मिस्टर जेन्किन्स को अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि वह अँगरेज़ों के साथ पूर्ववत् सम्बन्ध बनाये रक्खेगा। सन् १८१६ की २८ वीं मई को एक नई सन्धि हुई। उस सन्धि के अनुसार परसोजी को अँगरेज़ों की घुडसवार सेना तथा तोपखाना के सहित छः दल पैदल सेना रखनी पडी और इसके खर्च के लिए उसे साढे सात लाख रुपये वार्षिक देना पडा। इसके सिवा युद्ध में अँगरेज़ों की सहायता करने के लिए उसे खुद २००० घुडसवार और २००० पैदल सेना रखनी पडी। सन् १८१७ के अप्रैल में आवश्यक राज्य-सम्बन्धी कार्य के बहाने अप्पा साहब राजधानी से चांदा चला गया। उसके चले जाने के कुछ दिनों बाद एक दिन परसोजी अपने बिस्तरे पर मरा पाया गया। किन्तु बाद को यह प्रमाणित हो गया कि उसे अप्पा साहब ने विष दिलवा दिया था।

परसोजी के कोई सन्तान न थी। उसने किसी और को गोद भी न लिया था। फलतः उसके अत्यधिक समीप का

सम्बन्धी अप्पा साहब ही सिंहासन पर बैठा। इस समय से अँगरेजो के साथ उसके व्यवहार मे शीघ्र परिवर्तन होगया।

सीताबाल्दी का युद्ध–भारत के इतिहास मे सन् १८१७ का वर्ष स्मरणीय है। अँगरेजों की प्रधानता के प्रश्न का निर्णय एक बार फिर इस वर्ष हुआ था। इस समय डाकुओ का एक भयङ्कर दल बहुत अधिक शक्तिशाली हो गया था। वे लोग पिण्डारी कहलाते थे। वे लोग सदा किराये पर काम करने को तैयार रहते थे। जिस राजा को उनकी सहायता की आवश्यकता होती थी वह उन्हे किराये पर बुला लेता था, किन्तु शर्त यह जरूर रहती थी कि वह उनकी लूट खसोट मे बाधा न दे। विशेष करके सन्धिया और होल्कर ने उनको आश्रय दे रक्खा था तथा उनमें से कुछ को जागीरें तक प्रदान की थीं। क्योकि अपने लगातार के युद्धों मे वे इनसे बडी सहायता लिया करते थे। एक अवसर पर वे लोग युद्धक्षेत्र मे ६०,००० सवार एकत्र करने मे समर्थ हुए थे। उन लोगो के पास कई एक तोपखाने भी थे। अँगरेजो के साथ उनकी मुठभेड का ताजा कारण यह था कि उन्होंने सन् १८१६ मे उत्तरी सरकार के जिलों पर धावा किया था। इस धावे मे उन्होंने ३३९ गाँवो से ऊपर नष्ट भ्रष्ट कर डाले थे। तब गवर्नर-जनरल ने बडे समारोह के साथ तैयारी की। क्योंकि वह जानता था कि छिपे छिपे उन्हे मरहठा राजाओ से सहायता मिलती है। सन् १८१७ के नवम्बर मे बाजीराव पेशवा ने खुल्लमखुल्ला उनका पक्ष लिया

और पूना की रेजीडेन्सी पर आक्रमण किया। रेजीडेन्ट मिस्टर एलिफन्स्टन किरकी की ओर हट गये। यह समाचार सन् १८१७ की १४ वीं नवम्बर को नागपुर पहुँचा। अप्पा साहब ने नागपुर के रजीडन्ट मिस्टर जेन्किन्स को सूचना दी कि पेशवा ने मुझको सोनहले झण्डे तथा सेनापति की पदवी के सहित एक खिलत भेजी है। उनके स्वीकार करने को मैं एक उत्सव करना चाहता हूँ। अतएव उसमें सम्मिलित होने के लिए तुमको निमन्त्रण दिया जाता है। मिस्टर जेन्किन्स ने यह कह कर विरोध किया कि पेशवा इस समय अँगरेजो के विरुद्ध हथियार उठाये है, अतएव उन मर्यादावर्द्धक पदवियो का स्वीकार करना सन्धि की शर्तों के विरुद्ध होगा। राजा ने इस बात पर ध्यान न दिया और आम दरबार करके खिलत स्वीकार की। इस पर रेजीडन्ट ने अपनी सेनाएँ सङ्गठित कीं और सीताबल्दी पर अधिकार कर लिया। सन् १८१७ की २६ वीं नवम्बर की शाम को मरहठो ने अँगरेजों पर गोलाबारी करके युद्ध छेड दिया। शत्रु की अधिक सख्या के कारण पहले अँगरेज दब गये। मरहठों की सैन्यसख्या १८,००० थी। इसमे चौथाई के लगभग अरबी सैनिक थे। इधर अँगरेज सङ्ख्या मे केवल १८०० ही थे। अन्त मे अँगरेजो की ही विजय हुई और अप्पा साहब को आत्मसमर्पण करना पडा।

नागपुर का युद्ध—कुछ मरहठे सरदारो ने अपने राजा का अनुसरण नहीं किया। उन्होंने नागपुर की

सम्बन्धी अप्पा साहब ही सिंहासन पर बैठा। इस समय से अँगरेजों के साथ उसके व्यवहार में शीघ्र परिवर्तन होगया।

सीताबाल्दी का युद्ध–भारत के इतिहास में सन् १८१७ का वर्ष स्मरणीय है। अँगरेजों की प्रधानता के प्रश्न का निर्णय एक बार फिर इस वर्ष हुआ था। इस समय डाकुओं का एक भयङ्कर दल बहुत अधिक शक्तिशाली हो गया था। वे लोग पिण्डारी कहलाते थे। वे लोग सदा किराये पर काम करने को तैयार रहते थे। जिस राजा को उनकी सहायता की आवश्यकता होती थी वह उन्हें किराये पर बुला लेता था, किन्तु शर्त यह जरूर रहती थी कि वह उनकी लूट खसोट में बाधा न दे। विशेष करके सेन्धिया और होल्कर ने उनको आश्रय दे रक्खा था तथा उनमें से कुछ को जागीरें तक प्रदान की थीं। क्योंकि अपने लगातार के युद्धों में वे इनसे बड़ी सहायता लिया करते थे। एक अवसर पर वे लोग युद्धक्षेत्र में ६०,००० सवार एकत्र करने में समर्थ हुए थे। उन लोगों के पास कई एक तोपखाने भी थे। अँगरेजों के साथ उनकी मुठभेड़ का ताजा कारण यह था कि उन्होंने सन् १८१६ में उत्तरी सरकार के जिलों पर धावा किया था। इस धावे में उन्होंने ३३९ गाँवों से ऊपर नष्ट भ्रष्ट कर डाले थे। तब गवर्नर-जनरल ने बड़े समारोह के साथ तैयारी की। क्योंकि वह जानता था कि छिपे छिपे उन्हें मरहठा राजाओं से सहायता मिलती है। सन् १८१७ के नवम्बर में बाजीराव पेशवा ने खुल्लमखुल्ला उनका पक्ष लिया

हाबाद को भेजा गया । परन्तु मार्ग में वह रक्षकों को कुछ दे-लेकर बच निकला । वह महादेव नाम की पहाड़ियों पर भाग गया । वहाँ वह अन्तिम पिण्डारी सरदार से मिल गया । वहाँ से पहले वह असीरगढ पहुँचा और फिर उत्तरी भारत को, जहाँ सन् १८६० में वह राजपूताने में मर गया ।

रघुजी तृतीय—गद्दी पर से अप्पा साहब के उतार दिये जाने पर, भूतपूर्व रघुजी का नाती मसनद पर बिठाये जाने को चुना गया । यह उस कन्या का पुत्र था जो नानागूजर के साथ ब्याही गई थी । मराठा रवाज के अनुसार यह आवश्यक था कि पहले उसे पिछले राजा की विधवा गोद ले तब कहीं भोसला नाम धारण करने का वह अधिकारी हो । तदनुसार वह गोद लिया गया । वह उन्हीं शर्तों के अनुसार राजा रघुजी तृतीय के नाम से स्वीकार किया गया जो अप्पा साहब के साथ मञ्जूर हो चुकी थीं । एक रीजेन्सी स्थापित की गई, जिसकी प्रधान रघुजी द्वितीय की विधवा रानी बकाबाई बनाई गई । वह नव-युवक राजा की देख रेख करती थीं और राज्य के प्रत्येक विभाग का प्रबन्ध रेजीडेन्ट अपनी इच्छा के अनुसार नियुक्त अधिकारियों के द्वारा करता था । सन १८३० में माननीय आर० केवेन्डिश की रेजीडेन्टी के समय राजा को वास्तविक शासनभार ग्रहण करने की आज्ञा मिल गई । राजा की नाबालिगी के समय जब देश का प्रबन्ध अँगरेज अधिकारी करते थे तब कोई ऐसी घटना नहीं हुई जिससे देश की शान्ति भङ्ग हुई हो ।

रचा दृढता के साथ की। तीसवीं दिसम्बर को एक छोटी मुठभेड के उपरान्त नगर को भी आत्मसमर्पण करना पडा और इस तरह भोसला-राज्य से युद्ध बन्द हुआ। एक नई सन्धि हुई। इसके अनुसार अप्पा साहब फिर मसनद पर बिठाये गये और उसको नर्मदा के उत्तरी किनारे का सम्पूर्ण देश तथा दक्षिणी किनारे का भी कुछ देश अँगरेजों को दे देना पडा। इसके सिवा सहायतार्थ कर तथा सेना के मावावजे में वरार, गोविलगढ, सरगुजा, और जशपुर के सारे अधिकार छोड देने पडे। राजा ने अँगरेज रेजीडेन्ट के परामर्शानुसार राज-काज करने की प्रतिज्ञा की और उन किलों को अँगरेजों को दे देना स्वीकार कर लिया जो उससे मागे जायँ। इस तरह युद्ध के समाप्त हो जाने पर जनरल डवटन, होल्कर और पेशवा के विरुद्ध पश्चिम ओर बढा। जनरल डवटन की सेना को नागपुर छोडने मे देर भी न हुई थी कि इधर अप्पा साहब ने फिर षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया। उसने गोडों को उभाडा और किलेदारों को गुप्त सूचना देदी कि वे लोग किले अँगरेजो के सिपुर्द न करें। इसके बाद उसने बाजीराव से सहायता की प्रार्थना की। अपने भतीजे को मरवा डालने मे उसका शामिल रहने का भेद इसी समय प्रकट हुआ। सर आर० जेन्किन्स ने राजा को गिरिफ्तार कर लिया और यह निश्चय हुआ कि वह जन्म भर के लिए हिन्दुस्तान मे कैद कर दिया जाय। वह थोडे से सैनिकों की निगरानी में इला-

दूसरा अध्याय

पण्डित-वंश, सन् १७३४—१८१८

जब भोसला राजा नागपुर में शासन कर रहे थे उसी समय मरहठा शासकों का एक पण्डित घराना पेशवा की ओर से सागर तथा उससे मिले हुए देश का प्रबन्ध करता था। उसका शासन अठारहवीं सदी से प्रारम्भ हुआ था। पन्ना के प्रसिद्ध बुन्देला राजा छत्रसाल ने सत्रहवीं सदी में चढ़ाई करके सागर तथा उससे मिले हुए देश पर अधिकार कर लिया था। सन् १७३३ में इलाहाबाद का सूबेदार मुहम्मदखाँ बंगश मुगल-साम्राज्य की ओर से मालवा का सूबेदार बनाया गया। थोड़े ही समय के बाद उसने छत्रसाल के देश पर चढ़ाई कर दी। छत्रसाल ने पूना के बाजीराव पेशवा से सहायता माँगी, जो तुरन्त दी गई। पेशवा ने मुहम्मदखाँ बंगश को बुन्देलखण्ड परित्याग करने को बाध्य किया। इस सहायता से छत्रसाल पेशवा से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने झाँसी के पास के जिले तथा एक किला पेशवा को प्रदान किया। इन जिलों का राजस्व सवा दो लाख वार्षिक था। यही नहीं, किन्तु राजा ने अपनी मृत्यु के बाद पेशवा को अपना दत्तक पुत्र ठहराया। थोड़े ही समय के बाद राजा की मृत्यु भी हो गई। अतएव पूर्व निर्णय के अनुसार उसके राज्य का तृतीयांश पेशवा को

सन् १८४२ में रवो भाई भारती नाम के एक धोखेबाज गोसाईं ने अपने को अप्पा साहब होने का ढोंग किया और बरार में उसने बलवा करा दिया। परन्तु यह बलवा नागपुर तक न फैल पाया। रघुजी तृतीय सन् १८५३ के दिसम्बर में मर गया। वह निस्सन्तान मरा। उसके दत्तक पुत्र भी नहीं था। अतएव उस समय के गवर्नर जनरल मारक्वीस आव डलहौजी ने घोषणा की कि नागपुर-राज्य अँगरेजी-राज्य मे मिला लिया गया। इस घोषणा पर ईस्ट इन्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने तथा तत्कालीन सम्राट् ने भी अपनी अपनी स्वीकृति द दी। नागपुर-राज्य एक अँगरेजी प्रदेश हो गया।

दूसरा अध्याय

पण्डित-वंश, सन् १७३४—१८१८

जब भोसला राजा नागपुर में शासन कर रहे थे उसी समय मरहठा शासकों का एक पण्डित घराना पेशवा की ओर से सागर तथा उससे मिले हुए देश का प्रबन्ध करता था। उसका शासन अठारहवीं सदी से प्रारम्भ हुआ था। पन्ना के प्रसिद्ध बुन्देला राजा छत्रसाल ने सत्रहवीं सदी में चढ़ाई करके सागर तथा उससे मिले हुए देश पर अधिकार कर लिया था। सन् १७३३ में इलाहाबाद का सूबेदार मुहम्मदखाँ बगश मुगल-साम्राज्य की ओर से मालवा का सूबेदार बनाया गया। थोड़े ही समय के बाद उसने छत्रसाल के देश पर चढ़ाई कर दी। छत्रसाल ने पूना के बाजीराव पेशवा से सहायता मागी, जो तुरन्त दी गई। पेशवा ने मुहम्मदखाँ बगश को बुन्देलखण्ड परित्याग करने को बाध्य किया। इस सहायता से छत्रसाल पेशवा से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने झाँसी के पास के जिले तथा एक किला पेशवा को प्रदान किया। इन जिलों का राजस्व सवा दो लाख वार्षिक था। यही नहीं, किन्तु राजा ने अपनी मृत्यु के बाद पेशवा को अपना दत्तक पुत्र ठहराया। थोड़े ही समय के बाद राजा की मृत्यु भी हो गई। अतएव पूर्व निर्णय के अनुसार उसके राज्य का तृतीयांश पेशवा को

मिला। अवशिष्ट दो भाग राजा के दो पुत्र जगत्रय और हिर्देश को मिले। सन् १७३४ मे मुगल सम्राट् की गुप्त स्वीकृति के अनुसार मालवे का शासन-भार बाजीराव को सौप दिया गया। तव वाजीराव का जगत्रय और हिर्देश के साथ घनिष्ट मेल हो गया।

गोविन्दराव पण्डित—जब पेशवा ने सागर का परित्याग किया तब उसने उस देश का शासन करने को, जो उसे मिला था, गोविन्दराव पण्डित नाम के एक व्यक्ति को नियुक्त किया। कहा जाता है कि पहले गोविन्दराव, जिसके सम्बन्ध मे कई एक किंवदन्तियाँ अब भी प्रचलित हैं, पेशवा का रसोइयाँ था। वाजीराव कोकणस्थ ब्राह्मण था। एक दिन वह यात्रा कर रहा था। उपवास का दिन था, अतएव भोजन के लिए दोपहर मे उसने पडाव न डाला। गोविन्दराव करहेद ब्राह्मण था। उसने यह उपवास नहीं किया था, अतएव भोजन तैयार करने के लिए उसने वाजीराव से दस मिनट की छुट्टी मागी। छुट्टी मिलने पर गोविन्दराव नदी के किनारे चला गया। वहाँ एक चिता पर लाश जल रही थी। उसीपर वह अपना भोजन पकाने लगा। उसका वह काम देखकर वाजीराव ने कहा कि जो आदमी ऐसा कर सकता है वह सब कुछ कर सकता है और उसी समय से उसने उसका मर्तवा शीघ्रता के साथ बढाना शुरू कर दिया।

गोविन्दराव बुन्देला कहलाता था। अतएव वह बुन्देलखण्ड

के सूबेदार के अनुरूप ही शासक प्रमाणित हुआ। सन् १७३५ और सन् १७६० के बीच उसने सागर के समीपवर्ती देश तथा दमोह जिला को जीत लिया। पहले उसने अपना सदर मुकाम रेहली के समीप रनगिरि नाम के एक छोटे गाँव में नियत किया था। किन्तु बाद को ऊदनगिस के बनाये हुए पुराने किले की जगह पर उसने सागर का नवीन किला बनवाया। उसने उस शहर को खूब उन्नत किया तथा उसे सजाया। वह उस प्रदेश की राजधानी बन गया। पानीपत के युद्ध में सन् १७६० में गोविन्दराव मारा गया था। उसने एक छोटी सी सेना लेकर अफगान-सेना की रसद पर धावा किया था। इसी लड़ाई में उसकी मृत्यु हुई। कहा जाता है कि वह इतना मोटा था कि विना किसी की सहायता के वह घोड़े पर सवार न हो सकता था। इसी कारण उस लड़ाई में भागकर बच निकलने में वह असमर्थ रहा। उसकी अच्छी सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप पशवा ने उसके परिवार को सागर तथा उसके पास का देश माफी में प्रदान कर दिया। गोविन्दराव का उत्तराधिकारी उसका पुत्र रघुनाथराव हुआ, किन्तु आम तौर से यह अप्पा साहब के नाम से पुकारा जाता था। सन् १७७९ में अमीरखाँ पिण्डारी ने सागर को लूटा। इसके बाद यशवन्तराव होल्कर की बारी आई। लगभग एक महीने तक होल्कर की सेना इस अभागे नगर के समीप पड़ी रही और लगातार भयङ्कर लूट मार जारी रही। सागरनिवासी नर नारियों पर

तीसरा अध्याय

मरहठा-शासन मे प्रजा की दशा का साधारण विवरण

सैनिक रूप में मरहठा जाति—मरहठा जाति सैनिक गुणों से बनी थी। यह बात सम्भव मालूम पडती है कि औरङ्गजेब के विरुद्ध जिन्होंने शिवाजी का साथ युद्धों मे दिया था और उसकी ओर से हथियार उठाया था वे लोग कुनबी थे। उनकी वह परिश्रमशील तथा लडाकू प्रकृति जरा भी नष्ट नहीं हुई थी जिसके लिए ह्वेन्स्टाङ्ग के दिनो में वे लोग प्रसिद्ध थे। मरहठे घुडसवारों के सम्बन्ध में जनरल हिसूलप इस तरह लिखते हैं—मरहठे घुडसवारी में असाधारण कुशल होते हैं। उन्हें अपने घोडो के सम्बन्ध मे स्वाभाविक जानकारी होती है। इन जानवरों को सरपट दौडाते समय भी वे लोग उन्हे रोक और मोड सकते हैं एव उनसे सब तरह का काम ले सकते हैं। उसी तरह भाला चलाने में भी वे बडे निपुण होते हैं। कभी कभी सरपट दौड के समय अपने भाले से जमीन के निशान को शीघ्रता के साथ मार कर दिखा देते हैं। इस पर भी भाले के दस्ते को पकडे हुए वे अपने घोडे मे एकाएक चक्कर भी काट देते हैं। इस तरह वे भाले को निशान पर गडाये हुए बार बार अर्द्ध चन्द्राकार बनाते रहते हैं। उसी तरह उनके घोडे भी उस वर्ग को या उस व्यक्ति को नहीं

छोड़ते जिसके वे होते हैं। यहाँ तक कि यदि सवार धक्का भी खा जाय तो वह अपने सवार को लिए ही कूद जाते हैं । वे कभी उसे अपनी पीठ से गिरने नहीं देते।

शासन-व्यवस्था—सन् १८०३ तक मरहठों का शासन सफल रहा। क्रम से क्रम प्रथम चार भोंसले राजा सैनिक सरदार थे और सैनिकों की कठोर प्रकृति उनमें विद्यमान थी। वे खुद कृषक जाति के थे अतएव वे किसानों पर दया करते थे। राजा अनियन्त्रित नहीं होता था। उसका सारा राज्य उसके भाई-बन्धुओं में जागीर के रूप में बँटा रहता था। ये लोग अपनी अपनी जागीरों में स्वाधीन राजा की भाँति शासन करते थे। इसके सिवा राज परिवार के निकट सम्बन्धियों की बात सारे आवश्यक कार्यों में चलती थी। जिन उमराओं को दरबार में स्थान मिला था वे मानकरी कहलाते थे। इनमें से कुछ लोग वास्तव में पेशवा के हित की रक्षा किया करते थे।

राज्याधिकारी—राज्याधिकारियों में दीवान ही प्रधान अमात्य होता था। वह राज्य के प्रत्येक विभाग में राजा के प्रतिनिधि-स्वरूप कार्य करता था। राजस्व का मन्त्री फडनवीस होता था। भूमिकर का उत्तरदायित्व बरार पाण्ड्या पर था। चिटनवीस सर्वप्रधान मन्त्री होता था। वैदेशिक कार्यों का भार मुंशी पर रहता था। राजमुहर सिक्कानवीस के पास रहती थी। साधारण तौर पर ये विभाग खान्दानी हो गये थे। यदि कभी खान्दानी अधिकारी अयोग्य होता था तो

भूमि-कर का प्रबन्ध—सारा देश कई परगनों में विभक्त था और प्रत्येक परगना अनिर्धारित सङ्ख्या के गाँवों में। गोंडों के शासन-काल में परगनो का प्रबन्ध देशमुख तथा देशपाण्ड करते थे। मरहठों ने इन्हें खारिज कर दिया। केवल प्रधान प्रबन्धक को ही रहने दिया। उन्होंने उसकी पदवी भी बदल दी। वे उसे कमाइशदार कहने लगे। इसके सिवा फड़नवीस तथा बरार पाण्ड्या भी रक्खे गये। फडनवीस का काम सरकारी हिसाब-किताब-रखना था और बरार पाण्ड्या का काम गाँव का हिसाब-किताब-लिखना था। प्रत्येक गाँव मे एक पटेल होता था। यह सरकार का प्रतिनिधि होता था। गाँव की सारी भूमि लगान पर उठाना तथा उसे वसूल करना इसी का काम था। इसको अपने काम मे पाण्ड्या या हिसाब किताब-लिखनेवाले तथा कोटवार या चौकीदार से सहायता मिलती थी। पटेल अपनी मेहनत के एवज मे सरकारी हिस्से के राजस्व का चौथाई भाग पाता था। इसे यह रकम या तो नक़द रुपयों के रूप मे मिलती थी या वह बिना लगान की भूमि पा जाता था। बहुधा पटेलो के पुत्र ही उनके उत्तराधिकारी होते थे। परन्तु इस बात से नहीं कि उनका यह खान्दानी हक़ था, किन्तु सरकारी आज्ञा से। राजस्व की जाँच-पडताल प्रत्येक वर्ष होती थी। पहले सारे परगने के राजस्व की रकम निश्चित होजाती थी, और तब पटेलों की सलाह से कमाइशदार या परगने का प्रधान अधिकारी परगने भर के गाँवो मे उस

रकम को यथाविधि बाँट कर नियत कर देता था । भूमि पर न तो पटेलों का ही खान्दानी अधिकार था और न रैयतों ही का था । पटेल लोग रैयत को केवल एक वर्ष के लिए भूमि देते थे । इनमें से किसी को भी वही भूमि सदा जोतते रहने का अधिकार नहीं था जो उसे एक बार मिल जाती थी । और न यह चलन ही था कि उसी भूमि का पट्टा उन्हे एक वर्ष की अपेक्षा अधिक समय के लिए दिया जाय ।

व्यापार—मरहठों के शासन काल में देश की निकासी के व्यापार का मुख्य माल अन्न, तेलहन तथा देशी कपडे थे । इसके बदले में यहाँ कोकण से नमक तथा बुन्देलखण्ड, मिर्जापुर और उत्तर से रेशम, शक्कर और यारप का माल आता था । बाहरी लडाइयों तथा भीतरी गोलमाल से उपस्थित दुरवस्था के समयों को छोड कर मरहठों के शासन में साधारण तौर पर व्यापार का झुकाव वृद्धि की ओर था । परन्तु उसकी शीघ्र समुन्नति को रोकने के लिए तीन प्रधान कारण उपस्थित थे । देश की दुर्गम प्राकृतिक अवस्था पहला कारण था । यह देश भारत के दूसरे हिस्सों से बिलकुल अलग सा था । देश के बडे बडे भू-भाग अगम्य जङ्गलों से आवृत थे । वहाँ प्रसिद्ध नगर भी नहीं थे । इसके सिवा आवागमन के साधन भी खराब थे । राज्य के शासकों तथा उनके अमलों के लोभ तथा पिण्डारियों की लूट खसोट से भी लोगो को अपनी रक्षा के सम्बन्ध मे सशयात्मक भावना दूसरा

सद्व्यवहार करते थे। ये लोग अपने मालिकों के पास दासो की अपेक्षा किराये पर के नौकरों की भाँति अधिक सुख से रहते थे। अपनी दासता सूचित करने के लिए इन्हें कोई बिल्ला नहीं पहिनाया जाता था। सन् १८१८ और १८१९ में अकाल में अनेक दीन किसान अपने बाल-बच्चे बेच डालने को बाध्य हुए थे और जब अन्न फिर सस्ता हुआ तब वे अपने बच्चे वापस माँगने लगे। इस पर बच्चों के खरीददारो में से कुछ ने तो दया करके और कुछ ने नाम मात्र की रकम लेकर वापस कर दिया। हिन्दू-कुटुम्बों में दासियों की सन्तान, जो कुटुम्बी के किसी सम्बन्धी या स्वयम् कुटुम्बियों सेही जन्म पाती थी, एक प्रकार की निज की सम्पत्ति समझी जाती थी। जिस कुटुम्ब स्वामी का स्वत्व उनपर रहता था वह न तो उन्हें बेच सकता था और न किसी दूसरे आदमी को किराये पर ही दे सकता था। फलत यह बात सरलता से सिद्ध हो सकती है कि दासता, जैसा कि उसका शब्दार्थ योरप में लिया जाता है, इस देश में नहीं प्रचलित थी और जिस दशा का नाम दासता पड़ा और जिस दुरवस्था तथा कठिनाइयो के कारण वह उपस्थित हुई थी उसे यहाँ की श्रमजीवी जनता ने आदरणीय तथा सुखप्रद माना।

सती—यद्यपि मरहठो ने सती के रवाज को उत्तेजन नहीं दिया तो भी उसे बन्द करने के लिए उन्होने कोई कानून भी नहीं बनाया। अपने आप मिट जाने के लिए उन्होने इसे जारी रहने दिया।

जादू-टोना—यहाँ जादूगरी तथा मन्त्र-तन्त्रो की खूबी में सब लोगो की श्रद्धा थी । इसके कारण अनेक दु ख-जनक घटनाएँ हो जाती थीं । करीब करीब बुड्ढी औरते इस विद्या की ज्ञाता समझी जाती थीं ! इस सम्बन्ध में लोगों को इतना अधिक अन्ध विश्वास था कि वे इन बुड्ढी औरतो को इस बात के लिए वाध्य करते थे कि ये अपने को टोना जादू के ज्ञाता होना ठहराएँ और जब तब टोनाहिन होना स्वीकार करें । इनके इस बात के स्वीकार करने का यह परिणाम होता था कि इन्हें तुरन्त मृत्यु का दण्ड दिया जाता था अथवा ये जाति से वहिष्कृत कर दी जाती थीं या इन्हें और किसी तरह का कठोर दण्ड दिया जाता था । यह ध्यान मे रखने की बात है कि इस देश के बहुत पिछड़े हुए भागों में जादू टोने म लोगों का विश्वास अभी तक है ।

शपथ की प्रथा—भारत के दूसरे भागो के सदृश छत्तीसगढ में भी किसी बात के सम्बन्ध मे, जिसमें उसका हित रहता था, किसी व्यक्ति के कथन मात्र पर ही उसका विश्वास नहा कर लिया जाता था । इस कारण एक प्रथा का प्रचार हो गया । यह प्रथा अँगरेजी अधिकार होने के समय तक प्रचलित रही । इसके अनुसार लोगों के कथन की सत्यता इस प्रकार जाँची जाती थी । वादी प्रतिवादियो में से एक, साधारण तौर पर वादी ही अपने दोनो हाथों में पीपल की सात पत्तियाँ रखता और उन्हे तागे से बाँधता फिर वह उसके

ऊपर मक्खन चुपडता । इसके बाद कोई तीन सेर तौल का लोहे का एक खूब दहकता गोला अपने हाथों मे लेकर वह सात कदम चलता था । यदि इस जाँच के समय उसकी हथेली न जलती तो उसका कथन सच ठहरता और उसके दावे के अनुसार उसके मामले का निर्णय हो जाता था । यदि उसकी हथेली जल जाती थी तो उसका दावा झूठा समझा जाता था और या तो उसका मामला खारिज कर दिया जाता था या असत्य बोलने के लिए उसे दण्ड मिलता था ।

विधवा-विक्रय—सागर और नर्मदा के प्रदेशों पर अँगरेजी अधिकार हो जाने के उपरान्त तथा एजेन्सी शासन प्रचलित करने के पहले, जबलपुर मे एक क्षणिक शासन व्यवस्था स्थापित की गई थी । इस शासन-व्यवस्था के सभापति मेजर ओब्रायन बनाये गये थे । इन्होंने इङ्गलिया के राजा रघुनाथराव को सूबेदार नियत किया था । सूबेदार ने इस आशय का एक आवेदन पत्र उपस्थित किया कि क्या कुछ नियम तथा विधान, जिन्हें मरहठों ने जारी किए थे, अब भी जारी रहे ? इन कायदो मे एक इस आशय का कायदा था कि सारी विधवाएँ बेंच दी जायँ तथा उनका मूल्य सरकारी खजाने में जमा हो (Vide Old C P Gazetteer 1868, p. 178)। सम्भवत. इसी प्रमाण के आधार पर सन् १८०? के मध्यप्रदेश के गजेटियर के लेखक ने लिख दिया था कि मरहठों के शासन में विधवाएँ सरकारी सम्पत्ति समझी

जाती थीं और वे अपनी उम्र तथा योग्यता के अनुसार कमोवेश मूल्य में बेंची जाती थीं। सब से ऊँचा मूल्य १०००) तक पहुँचता था (Vide C P Gazetteer 1908, p 223), किन्तु भिन्न भिन्न कारणों से हम यह कहने को बाध्य हुए हैं कि पूर्वोक्त कथन वास्तव में निराधार है। नागपुर-दरबार के अँगरेज रेजीडेन्ट सर रिचर्ड जेन्किन्स ने, जिसकी सन् १८२७ की रिपोर्ट के आधार पर सारे सरकारी कागज पत्र लिखे गए हैं और जो मरहठा शासन के समय वर्तमान रीति-रवाजों का बड़ा चतुर निरीक्षक था, उस समय इस बात का उल्लेख अपने कागजों में नहीं किया था। मध्यभारत के मेजर जनरल सर जान मालकम के मेम्वायर्स में भी हमें इस दूषित रवाज का जिक्र नहीं मिलता। इन दोनों अधिकारियों के कथनानुसार मरहठों का व्यवहार स्त्री जाति के प्रति अच्छा रहा है—"सम्मानित वर्ग के लोगों के घर की स्त्रियाँ साधारण तौर पर पढ़ाई लिखाई जाती थीं और अपने सम्बन्धियों पर उनका अधिक प्रभाव रहता था। गरीब स्त्रियाँ अपने पतियों की सहायता करती थीं और परिश्रम तथा जोखिम के समय उनका साथ देती थीं। आज्ञाकारिणी पत्नियाँ तथा माताएँ होने की कीर्ति उन्हें प्राप्त थी। इस कारण यह बात बुद्धि में नहीं बैठती कि मरहठों ने ऐसी दूषित प्रथा को चलने दी होगी। यदि ऐसी प्रथाएँ सरहदी जिलों में जैसे कि मण्डला और जबलपुर में चलती भी रहीं

होगी तो भी हमारा यह विचार करना उचित है कि प्रधान सरकार ने ऐसी प्रथाओ की अनुमति न दी होगी।"

अँगरेजी काल

पहला अध्याय

मध्य-प्रदेश के बनने के पहले का अँगरेजी शासन

सन १८१८-१८६१

सागर और नर्मदा के सूबे—हमने पूर्व के अध्याय में लिखा है कि लार्ड हेस्टिंग्स ने पेशवा के पदच्युत किये जाने पर सागर और दमोह का राज्य सन् १८१८ में अँगरेजी राज्य में मिला लिया था। हमने यह भी लिखा है कि सन् १८१८ के नागपुर के युद्ध के बाद अप्पा साहब अँगरेजों को मण्डला, बेतूल, सिवनी और नर्मदा की तराई दे देने के लिए बाध्य हुआ था। सन् १८२० में यह सारा भूभाग सागर और नर्मदा के देश के नाम से गवर्नर-जनरल के एजन्ट के अधीन कर दिया गया। इसके बाद सन् १८३१ में पश्चिमोत्तर प्रदेश की रचना हुई और सागर और नर्मदा का देश उसी में सम्मिलित कर दिया गया।

बीस साला बन्दोबस्त, सन् १८३५—हमने पहले लिखा है कि मरहठों के शासन के समय जमीन का बन्दोबस्त प्रत्येक वर्ष होता था। भूमि पर स्थायी स्वत्व न तो पटेलों को और न रैयत को ही प्राप्त था। नीलाम में सबसे अधिक ऊँची

बोली बोलनेवाले के अधिकार में मौजे हो जाते थे। रुतबों और खिलतो के लालच में आकर पटेल परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध बोली बोल कर रुपया चढा देते थे। और इस तरह बारी बारी से उन लोगों को धोखा दिया जाता और उनसे खूब रुपया ऐंठा जाता था। इसका परिणाम यह होता कि उन लोगों की ऐसी बुरी दशा हो जाती थी कि वे फिर किसी काम के न रह जाते थे। जब अँगरेजी शासन प्रारम्भ हुआ तभी अँगरेज कर्मचारियों ने भूमिकर-सम्बन्धी इस व्यवस्था की अनुपयोगिता समझ ली। सर रिचर्ड जेन्किन्स ने सन् १८२७ की अपनी रिपोर्ट में इस बात का जिक्र किया है और उसमें एक निर्दिष्ट कालिक लम्बी मियाद के बन्दोबस्त की सिफारिश भी की है। उनका कथन है कि भूतकालिक कुशासन और दुर्दशा के प्रभावों से देश को सुस्थिर करने के लिए यह सर्वोत्कृष्ट उपाय है। यही नहीं, इस व्यवस्था से लोगों को अपनी अवस्था के स्थिरत्व का विश्वास भी हो जायगा। मिस्टर मारटीन बर्ड ने, जो सन् १८३३-३४ में सागर और नर्मदा के देशों की राजस्व-सम्बन्धी व्यवस्था जाँचने के लिए नियुक्त किये गये थे, सिफारिश की थी कि नर्म शर्तों पर बीस वर्ष का बन्दोबस्त होना चाहिए। तदनुसार मिस्टर फ्रेजर को बीस साला बन्दोबस्त करने का भार दिया गया, जिसे उन्होंने सन् १८३५ मे पूर्ण किया। लोग लगान का निर्ख स्वीकार करने मे प्रसन्न मालूम पड़े और खुशदिल होकर वे भूमि की उन्नति करने मे लग गये। क्योंकि बन्दोबस्त

का अफसर अपनी रिपोर्ट के लिखते समय यह उल्लेख करने मे समर्थ हो गया था कि भूमि की आबपाशी के लिए कई एक इलाकों मे पुख्ता कुएँ वन गये हैं।

बुन्देलो का विद्रोह, सन् १८४२–सन् १८४२ के मार्च में बुन्देलो ने विद्रोह किया। झिकनी के समीप के चन्द्रपुर मौजे का जवाहिर सिह बुन्देला और नरहुत के मधुकरशाह तथा गणेशजी ने सागर जिले के उत्तर मे घाटो पर बलवा कर दिया। सागर की मुल्की अदालत ने उन लोगों पर डिग्री कर दी थी, इस कारण वे बिगड उठे। उन्होंने पुलिस के कई एक आदमियो को मार डाला और खिमलसा, खुरई, नरियाली, बमोनी, बिनेकी नामक मौजो को लूट लिया। नरसिहपुर के दिलनशाह नाम के एक गोड सर्दार ने भी बलवा कर दिया। लगभग उसी समय ललितपुर की डोंगरी का दौलतसिंह नाम का एक बुन्देला डकैत प्रसिद्ध हो रहा था। इस विद्रोह का दमन करने मे एक वर्ष लग गया। मधुकरशाह कैद हो गया और उसे फाँसी दी गई। ग्रामीण कविता में लोगो ने उसे नायक माना। उसकी लाश सागर-जेल के पिछवाडे जला दी गई थी। उसकी स्मृति के लिए एक चबूतरा या मन्दिर बनाया गया, जिसे गोपालगञ्ज महल्ले के निवासी आज भी पूजते हैं और उसकी स्मृति अभी तक बनाये हैं। गणेशजी भी गिरिफ्तार कर लिया गया और उसे कालापानी की सजा दी गई। इन उपद्रवो के फल स्वरूप लार्ड एलेनबरा ने सागर और

नर्मदा के प्रदेश गवर्नर-जनरल के एजेन्ट के अधीन फिर कर दिये। परन्तु इस प्रबन्ध से भी अच्छा काम चलता न दिखा, इसलिए ये प्रदेश सन् १८५२ मे पश्चिमोत्तर प्रदेश मे फिर मिला दिये गये और सन् १८६१ में मध्यप्रदेश के नया प्रान्त बनने तक उसके साथ इनका भी प्रबन्ध होता रहा।

नागपुर के प्रदेश—हमने पहले एक अध्याय में लिखा है कि नागपुर के प्रदेश सन् १८५३ में अँगरेजी राज्य में तब शामिल किये गये थे जब रघुजी तृतीय सन्तानहीन या बिना दत्तक सन्तान मर गया था। इन प्रदेशो का शासन,-जिनके अन्तर्गत वर्तमान नागपुर डिवीजन, छिंदवाडा और छत्तीसगढ थे, भारत सरकार की अधीनता में एक कमिश्नर द्वारा सन् १८६१ तक होता रहा। इसके बाद मध्यप्रदेश नाम का एक नया प्रान्त बनाया गया। होशङ्गाबाद जिले का जो भाग नागपुर-राज्य के अन्तर्गत था उसे भी नागपुर राज्य के साथ ही अँगरेजों ने प्राप्त कर लिया था।

सन् १८४४ मे होशङ्गाबाद जिले के हँडिया और हरदा के इलाके सेन्धिया ने ग्वालियर कान्टिन्जेन्ट के व्यय के लिए अँगरेजी सरकार को दे दिय थे। और सन् १८६० में वे इलाके उसे सदा के लिए दे दिये गये। अतएव वे भी अँगरेजी राज्य में शामिल हो गय। नीमार जिले के कनापुर और बेरिया के इलाके सन् १८१८ मे पेशवा ने अँगरेजी सरकार को दे दिया था। नीमार जिले का उत्तरी भाग अँगरेजी सरकार के अधीन तब हुआ जब

सन् १८२३ मे सेन्धिया के साथ सन्धि हुई थी । सन् १८६० मे यह इलाक़ा तथा जैनाबाद और मुञ्जरोद के परगनो के सहित बुरहानपुर का पूर्ण अधिकार सेन्धिया ने अँगरेजी सरकार के सिपुर्द कर दिया । सन् १८६४ मे नीमार मध्यप्रदेश म मिला लिया गया ।

सतनामी चमार, सन् १८२०—१८३०

सन् १८२०–१८३० में छत्तीसगढ के चमारो ने एक विलक्षण तथा मनोहर धार्मिक तथा सामाजिक विद्रोह खडा कर दिया । उत्तरी भारत में चमारो के सदृश घृणित कोई दूसरी जाति नही है । वे लोग एक बडी सख्या में दीर्घ काल से छत्तीसगढ में आबाद हैं । वे बडे परिश्रमी तथा उद्यमी कृषक हैं । ग्राम्याधिकारियो तथा कृषकों के मजबूत अधिकार उन्हे प्राप्त थे । सन् १८२० में उन्होने ब्राह्मणो के अत्याचारो के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । इस उपद्रव का नेता घोसीदास नाम का एक चमार था । अपनी जाति के लोगो की भाँति वह भी निरक्षर था । परन्तु वह रोबीला, समझदार गम्भीर आदमी था । लोग उसे अलौकिक शक्ति से सम्पन्न समझते थे । छत्तीसगढ के गिरोद नामक गाँव की एक पहाडी पर वह ६ महीने तक एकान्त वास करता रहा । वहाँ से वह एक सन्देश लेकर वापस आया, जिसे उसने अपने अनुयाइयो को सुनाया ।

इस सन्देश के अनुसार मूर्तिपूजा बिलकुल वर्जित होगई

श्रीर बिना किसी चिह्न या प्रतिनिधि के सृष्टिकर्ता की उपासना का आदेश हुआ। इसी के साथ ही साथ सामाजिक समानता के नियमों की घोषणा भी कर दी गई। इसी सन्देश के अनुसार घासीदास इस मत का प्रधान आचार्य माना गया। उसकी पदवी को छत्तीसगढ की सम्पूर्ण चमार-जाति ने शिरोधार्य किया और वे लोग अपने आपको सतनामी अर्थात् सत्नाम या सच्चे ईश्वर के उपासक कहने लगे। इस मत के प्रचार के प्रारम्भिक काल मे इसे विनष्ट कर देने का प्रयत्न किया गया था, परन्तु वह निष्फल हुआ। सन् १८५० में घासीदास की मृत्यु हो गई और बालोकदास उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने समानता-सम्बन्धी विचारो की सीमा बहुत ऊँची कर दी। उसने यज्ञोपवीत पहन कर सारे हिन्दू समाज को क्रुद्ध कर दिया। सन् १८६० में कुछ लोगो ने उसे मार डाला। कहा जाता है कि वे लोग राजपूत थे, परन्तु उन लोगो का पता न लगा।

स्वामीनारायण मत, सन् १८००-१८४०

लगभग इसी समय स्वामीनारायण नामक एक दूसरे धार्मिक सुधारक ने पश्चिमी भारत में एक नवीन वैष्णव धर्म का प्रचार किया। अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँची बनाने की दृष्टि से नीमार के तेलियों ने इस मत को स्वीकार किया। बुरहानपुर मे स्वामीनारायण का एक मन्दिर है। इस मत का संस्थापक सहजानन्द नाम का एक सरयूपारी ब्राह्मण था।

इसका जन्म अयोध्या के समीप सन् १७८० में हुआ था। बीस वर्ष की उम्र में वह रामानन्दी साधु हो गया। उसने अपने मत का प्रचार गुजरात में बड़ी सफलता के साथ किया और बहुत शीघ्र रामानन्द का उत्तराधिकारी हो गया। उसने एक ईश्वर की उपासना की घोषणा की। उसके ईश्वर का नाम कृष्ण या नारायण था, जिसे वह सूर्य के रूप में मानता था। कहा जाता है कि वह अपने शिष्यों को अलौकिक शक्तियाँ दिखलाता था। जब किसी शिष्य के ऊपर वह अपनी दृष्टि डालता तब वह उसे देख कर मुग्ध हो जाता और उसके मन में यह भाव उठता कि वह महजानन्द को कृष्ण भगवान के रूप में देख रहा है। वे पीताम्बर धारण किये हुए हैं। इसके सिवा, चक्र गदा एवं भगवान् के दूसरे आयुध भी लिये हुए हैं। उसके मत के अनुसार जीववध, मांसभक्षण और किसी भी अवसर पर मद्यादिक द्रव्यों का सेवन वर्जित हो गया। व्यभिचार, आत्महत्या, चोरी तथा डकैती और झूठे अभियोग आदि दुराचार भी गर्हित ठहराये गये। उसके सदाचार-सम्बन्धी उपदेशों से काल, भील जैसी नीच जातियों के लोगों को बड़ा लाभ पहुँचा। यहाँ तक कि बम्बई के गवर्नर ने उनकी उपयुक्तता स्वीकार की और उन जातियों के बीच इस सुधार-सम्बन्धी कार्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। क्योंकि उसके उपदेशों के कारण वे जातियाँ शान्तिप्रिय और कानून माननेवाली हो गई थीं। सन् १८३० की २६ वीं फरवरी को

गवर्नर महोदय ने स्वामीजी को बुलवा कर भेंट की। स्वामीजी की शिक्षाओं को जान कर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्हे एक जोडा दुशाला भेंट मे दिया।

पहले के अकाल, सन् १८१८-१९—सन् १८१८-१९ मे नागपुर प्रदेश और नर्मदा के उत्तर के जिले मे अकाल पड गया। इस अकाल के पडने का कारण यह था कि कुँवार मे पानी ही न बरसा और इधर जाडे के दिनों मे अतिवृष्टि हुई। इस प्रदेश में और जबलपुर मे महीनो तक घोर दुर्भिक्ष रहा। गेहूँ प्रति रुपया चार सेर बिका। कहा जाता है कि बहुसङ्ख्यक गरीब किसानों ने अपने बाल बच्चो को भी बेंच डाला था।

सन् १८२३-१८२७ का दुर्भिक्ष—सन् १८२३ से लगाकर सन् १८२७ तक सिवनी और मण्डला के जिलों में बाढ, ओले और गेरुई आदि के कारण लगातार फसलों को हानि पहुँचती रही। अनेक गाँव उजड गये। जनश्रुति के अनुसार सन् १८२५-१८२६ मे इस दुर्भिक्ष के कारण नागपुर मे बहुत आदमी मरे।

सन् १८२३—२६ का दुर्भिक्ष—सन् १८२३—२६ मे रायपुर और बिलासपुर मे दुर्भिक्ष पड गया। एक रुपया का १२ सेर से १५ सेर तक अन्न बिका।

सन् १८३२-३३ का दुर्भिक्ष—सन् १८३२-३३ मे नर्मदा की तराई के जिलो, नागपुर प्रदेश और बरार में अतिवर्षण के बाद अवर्षण हो जाने मे घोर दुर्भिक्ष पड गया। बेतूल

मे बहुत अधिक जनहानि हुई। नागपुर शहर मे कोई ५०००
आदमी मरे। वर्धा मे तो पाँच सेर अन्न पर बच्चे बिके थे।
इसके दूसरे वर्ष कुँवार मे जल न बरसने के कारण जबलपुर
जिले मे चैती फसल की बोनी ही न हुई और इससे प्रति रुपया
८ सेर अन्न बिका। सिवनी और मण्डला मे सरकारी एजन्टो
की मार्फत अन्न लाया गया।

सन् १८३४-३५ का दुर्भिक्ष—सन् १८३४-३५ मे
छत्तीसगढ की आंशिक फसल मारी गई। यद्यपि अन्न की
रफ़्तनी बन्द कर दी गई थी, तोभी साधारण दर से अन्न की दर
पन्द्रह या बीस गुनी अधिक हो गई थी। सन १८४५ के दुर्भिच्च से
नीमार और छत्तीसगढ मे बडा सङ्कट उपस्थित हा गया। सन्
१८५४—५५ मे टिड्डीदल ने उत्तरी जिलों की गेहूँ की फसल
चौपट कर दी। यह घटना लोगों को अभी तक याद है। वे कहते
हैं कि वह आपदा उससे किसी प्रकार कम नहीं थी जो
सन् १८६४—६५ में उनके आगमन से उपस्थित हुई थी।
दमोह में तो लोगों ने अपने बाल बच्चे तक बेच डाले और
सागर में इस सम्बन्ध की अनेक मृत्युएँ लिखी गईं।

ठग—अपने शासन के आरम्भ में अँगरेज़ी सरकार को
शान्ति और व्यवस्था के स्थापित करने में भिन्न भिन्न कठिनाइयों
का सामना करना पडा था। इस समय ठग लोग देश की एक
आपदा बन गये थे। वे लोग विभिन्न जातियो के थे। उनके
दल में मुसलमान भी सम्मिलित थे। परन्तु अधिक संख्या

गवर्नर महोदय ने स्वामीजी को बुलवा कर भेंट की। स्वामीजी की शिक्षाओं को जान कर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें एक जोडा दुशाला भेट में दिया।

पहले के अकाल, सन् १८१८–१९—सन् १८१८–१९ मे नागपुर प्रदेश और नर्मदा के उत्तर के जिले मे अकाल पड गया। इस अकाल के पडने का कारण यह था कि कुँवार मे पानी ही न बरसा और इधर जाडे के दिनों में अतिवृष्टि हुई। इस प्रदेश में और जबलपुर में महीनों तक घोर दुर्भिक्ष रहा। गेहूँ प्रति रुपया चार सेर बिका। कहा जाता है कि बहुसंख्यक गरीब किसानों ने अपने बाल बच्चो को भी बेंच डाला था।

सन् १८२३–१८२७ का दुर्भिक्ष—सन् १८२३ से लगाकर सन् १८२७ तक सिवनी और मण्डला के जिलों में बाढ, ओले और गेरुई आदि के कारण लगातार फसलों को हानि पहुँचती रही। अनेक गॉव उजड गये। जनश्रुति के अनुसार सन् १८२५–१८२६ मे इस दुर्भिक्ष के कारण नागपुर मे बहुत आदमी मरे।

सन् १८२३—२६ का दुर्भिक्ष—सन् १८२३—२६ मे रायपुर और बिलासपुर मे दुर्भिक्ष पड गया। एक रुपया का १२ सेर से १५ सेर तक अन्न बिका।

सन् १८३२–३३ का दुर्भिक्ष—सन् १८३२–३३ मे नर्मदा की तराई के जिलो, नागपुर प्रदेश और बरार में अतिवर्षण के बाद अवर्षण हो जाने से घोर दुर्भिक्ष पड गया। बेतूल

में बहुत अधिक जनहानि हुई। नागपुर शहर में कोई ५००० आदमी मरे। वर्धा में तो पाँच सेर अन्न पर बच्चे बिके थे। इसके दूसरे वर्ष कुँवार मे जल न बरसने के कारण जबलपुर जिले में चैती फसल की बोनी ही न हुई और इससे प्रति रुपया ८ सेर अन्न बिका। सिवनी और मण्डला में सरकारी एजन्टों की मार्फत अन्न लाया गया।

सन् १८३४-३५ का दुर्भिक्ष—सन् १८३४-३५ में छत्तीसगढ की आगिक फसल मारी गई। यद्यपि अन्न की रफ्तनी बन्द कर दी गई थी, तोभी साधारण दर से अन्न की दर पन्द्रह या बीस गुनी अधिक हो गई थी। सन् १८४५ के दुर्भिक्ष से नीमार और छत्तीसगढ में बडा सङ्कट उपस्थित हो गया। सन् १८५४—५५ में टिड्डीदल ने उत्तरी जिलों की गेहूँ की फसल चौपट कर दी। यह घटना लोगो को अभी तक याद है। वे कहते हैं कि वह आपदा उससे किसी प्रकार कम नहीं थी जो सन् १८६४—६५ में उनके आगमन से उपस्थित हुई थी। दमोह मे तो लोगों ने अपने बाल बच्चे तक बेच डाले और सागर में इस सम्बन्ध की अनेक मृत्युएँ लिखी गई।

ठग—अपने शासन के आरम्भ में अँगरेजी सरकार को शान्ति और व्यवस्था के स्थापित करने में भिन्न भिन्न कठिनाइयों का सामना करना पडा था। इस समय ठग लोग देश की एक आपदा बन गये थे। वे लोग विभिन्न जातियो के थे। उनके दल मे मुसलमान भी सम्मिलित थे। परन्तु अधिक सख्या

अस्तु इस प्रदेश के उस भाग मे विद्रोह से कुछ अधिक हानि नहीं हुई। यहाँ के लोग एक प्रकार से बिलकुल ही नहीं उभड। वास्तव मे विद्रोह कुछ असन्तुष्ट सेनाओ तथा कुछ राजद्रोही राजाओ, जिनकी व्यक्तिगत शिकायतें थी, तक ही परिमित रहा। पूरा पञ्जाब और मदरास राजभक्त बना रहा। भय का कारण होने के स्थान मे वे शक्ति के साधन प्रमाणित हुए। विद्रोह क समय उसके दमन की सहायता के लिए इन्हीं प्रदेशो से राज भक्त सेनाएँ प्राप्त हुई थीं।

दूसरा अध्याय

मध्यप्रान्त के बन चुकने के बाद का अँगरेजी शासन

मध्य-प्रान्त की रचना—विद्रोह के अनन्तर नागपुर राज्य और सागर तथा नर्मदा के प्रदेशो के सुशासन के लिए एक नवीन प्रान्त की रचना का निश्चय हुआ। क्योंकि स्थानिक सरकार के मदर से दूर पडने के कारण इन प्रदेशों के शासन की व्यवस्था समुचित रीति से न हो सकती थी। अतएव सन् १८६१ में उक्त निश्चय काम मे परिणत किया गया। इस प्रान्त के उत्तर तथा पश्चिमोत्तर में मध्यभारत के देशी राज्य स्थित हैं और सागर जिले का एक छोटा टुकडा संयुक्त प्रदेश से घिरा है, पश्चिम मे भूपाल तथा इन्दौर-राज्य और बम्बई का खानदेश जिला स्थित है, दक्षिण में बरार, निजाम का राज्य और मदरास हाते की बडी बडी जमींदारियाँ हैं। पूर्व-अध्यायों मे यह बात हमें पहलेही मालूम हो गई है कि अँगरेजों ने इस सीमा के भीतर के भूमि-क्षेत्र को कैसे और कब प्राप्त किया था। बरार इस प्रान्त में सन् १९०३ में सम्मिलित किया गया है। इस प्रान्त का प्रबन्ध एक चीफकमिश्नर को सौंपा गया था। वह तीन मन्त्रियो, दो उपमन्त्रियो तथा एक सहकारी

मन्त्री की सहायता से शासन करता है। शासन की इस व्यवस्था का नाम 'नान-रेगुलेटेड-सिस्टम' है। आगे उन चीफ-कमिश्नरों की नामावली दी गई है जिन्होंने इस प्रान्त की रचना के बाद से इसका शासन किया है।

१	कर्नेल ई० के० इलिअट	१८६१
२	लेफटिनेन्ट कर्नेल जे० के० स्पेन्स, अस्थायी	१८६२
३	मिस्टर रिचर्ड टेम्पेल, अस्थायी	१८६२
	कर्नेल ई० के० इलिअट	१८६३
४	मिस्टर जे० एस० कैम्पवेल, अस्थायी	१८६४
	" रिचर्ड टेम्पल	१८६५
५	" जे० एच० मोरिस, सी० एस० आई०, अस्थायी	१८६७
६	" जी० कैम्पवेल	१८६७
	" जे० एच० मोरिस, सी० एस० आई०, नियुक्त	१८६८
७	कर्नेल आर० एच० कीटिंग, वी० सी०, सी० एस०-आई०, अस्थायी	१८७०
	मिस्टर जे० एच० मोरिस, सी० एस० आई०	१८७२
८	" सी० ग्रान्ट, अस्थायी	१८७८
	" जे० एच० मोरिस, सी० एस० आई०	१८७९
९	" डब्ल्यू० बी० जोंस, सी० एस० आई०	१८८३
१०	" सी० एच० टी० क्रास्थवेट, अस्थायी	१८८४
	" सी० एच० टी० क्रास्थवेट, नियुक्त	१८८५
११	" डी० फिट्जपेट्रिक	१८८५

१२ मिस्टर जे० डब्ल्यू० नील, अस्थायी		१८८७
१३ " ए० मैकेञ्जी, सी० एस० आई०		१८८७
१४ " आर० जे० क्रास्थवेट		१८८६
" जे० डब्ल्यू० नील, अस्थायी		१८६०
१५ " ए० पी० मैकडानेल, सी० एस० आई०		१८६१
१६ " जे० उडबर्न, सी० एस० आई०, अस्थायी		१८६३
" " " नियुक्त		१८६३
१७ सर सी० जे० लायल, के० सी० एस० आई०, सी० आई० ई०		१८६५
१८ दि आन० मिस्टर डी० सी० जे० इबटसन, सी० एस० आई०		१८६८
१६ " " सर ए० एच० एल० फ्रेजर, के० सी० एस०– आई०, अस्थायी		१८६६
" " " " नियुक्त		१६०२
२० " " मिस्टर जे० पी० ह्वीवेट, सी० एस० आई०, सी०- आई० ई०, अस्थायी		१६०२
" " " " नियुक्त		१६०३
२१ " " सर एफ० एस० पी० लेली, सी० एस० आई०, के० सी० एम० आई०, अस्थायी		१६०४
" " " , नियुक्त		१६०४
२२ " " मिस्टर जे० ओ० मिलर, सी० एस० आई०		१६०५

सर रिचर्ड टेम्पल की सड़क बनाने की नीति—इस प्रान्त की रचना के पहले देश का यह भाग भारत के दूसरे भागों से पूर्णतया अलग था। पहले समय के कागज़ पत्र यह बात प्रकट करते हैं कि अच्छी फसल होने पर भी प्रान्त के अनेक स्थानों मे अन्न पड़ा सड़ा करता था। प्रान्त भर मे कई एक पुख्ता सड़कें थीं, पर छोटी छोटी सड़कों का अभाव था। सन् १८६२ मे उस समय के चीफकमिश्नर सर रिचर्ड टेम्पल ने सड़क बनाने की अपनी नीति को कार्य मे परिणत किया। अनेक छोटी छोटी सड़कें बनाई जाकर बड़ी बड़ी सड़कों से जोड़ दी गई और बाद के वर्षों मे अकाल सहायक प्रबन्ध के अनुसार सड़क बनाने की नीति अधिक उपयोग में लाई गई।

रेलवे, सन् १८६७—इसके थोड़े ही समय बाद रेलवे के खुल जाने से यह प्रान्त भारत के दूसरे भागों की पहुँच मे आ गया। पहले पहल सन् १८६७ मे भोसावल से नागपुर और जबलपुर से इलाहाबाद तक रेल बनाई गई थी। इसके थोड़े ही समय बाद सन् १८७० मे भोसावल-जबलपुर लाइन बनाई गई। रेलवे के निर्माण तथा सड़क बनाने की जिस नीति को सर रिचर्ड टेम्पल ने जारी किया था उससे देश की उपज की मॉग तुरन्त बढ गई और इसके साथ ही साथ उसके मूल्य मे भी असाधारण वृद्धि हुई।

अमरीका का घरेलू युद्ध—जो दूसरी घटना इस

समय सङ्कटित हुई थी और जिसने देश के व्यापार को असाधारण उन्नत कर दिया था वह अमरीका का घरेलू युद्ध था। इस युद्ध के कारण अमरीका से योरपीय बाजारों मे रुई का जाना बन्द हो गया था, फलत भारत से रुई अधिक परिमाण में बाहर भेजी गई। सन् १८६३ से १८६८ तक जो रुई इस प्रान्त से भेजी गई थी उसका मूल्य लगभग एक करोड रुपया तक पहुँच गया था।

इस व्यापार में विशेष करके बरार को लाभ हुआ। रुई की खेती को यहाँ असाधारण उत्तेजना मिली। कृषकों ने अपने खाने के लिए अन्न दूसरे स्थानों से इसलिए मँगाया जिसमें वहाँ की सारी भूमि में अधिक लाभदायक फसल बोई जाय। इस समय व्यापार की बहुत अधिक वृद्धि हुई। सन् १८६३-१८६६ के बीच निर्यात माल का औसत मूल्य कोई डेढ करोड रुपया और आयात माल का कोई दो करोड रुपया था। इन वर्षों में, यहाँ तक कि सन् १८६८ तक, यहाँ की फसल भी लगातार अच्छी होती रही। पर सन् १८६८ मे बुन्देलखण्ड मे अकाल पड गया और इस प्रदेश के एक भाग पर भी उस विपत्ति का प्रभाव पडा। इस तरह हम देखते हैं कि इस प्रान्त की रचना के बाद ही एक के बाद दूसरी कई एक ऐसी घटनाएँ उपस्थित हुई जिनके कारण देश की समृद्धि प्रशसनीय रीति से उत्तरोत्तर बढती गई।

प्रान्तिक अर्थ व्यवस्था की पद्धति का प्रचलन,

के लिए बढ़ाया जाना—प्रान्त की विशेष अवस्था के विचार और बार बार दुर्भिक्षों के पडने से सन् १८९७-९८ का प्राविंशियल फिनैन्शियल कन्ट्रैक्ट सन् १९०५—०६ तक के लिए बढा दिया गया और बडी सरकार के साथ लगभग दवामी ढङ्ग का एक नवीन बन्दोबस्त किया गया। इस बन्दोबस्त के अनुसार प्रान्तिक खजाने मे आधा भूमि-कर, स्टाम्प, आबकारी, असेस्ड टैक्सेज और जङ्गलों आदि की आय तथा प्रधान सरकार के भूमि-कर के भाग से सत्ताइस लाख की एक निश्चित वार्षिक रकम प्रॉविंशियल फण्ड को दे दी गई। मध्यप्रदेश और बरार की कूती गई प्रान्तिक आमदनी सन् १९०६—०७ के साल के लिए १८९ लाख रुपया और कूता गया खर्च १८८ लाख रुपया था।

बरार के सम्बन्ध में निजाम के साथ समझौता, सन् १९०२—सन् १९०२ मे बरार के सम्बन्ध में निजाम के साथ एक नया समझौता किया गया। इस समझौते से बरार पर निजाम-सरकार का स्वत्व पुन समर्थित हुआ और उक्त प्रदेश भारत सरकार को सदा के लिए पचीस लाख रुपये वार्षिक राजस्व पर दे दिया गया। यह प्रदेश अभी तक अनिश्चित रूप से उसके अधिकार मे था। इसके सिवा इस समझौते के अनुसार भारत सरकार को यह भी अधिकार मिल गया कि वह अपने इच्छानुसार उस प्रदेश का शासन करे। इसके साथ ही साथ हैदराबाद कान्टिन्जेन्ट को अपनी इच्छा के अनुसार घटाने,

बढ़ाने, उसे मानने और उसका प्रबन्ध करने का अधिकार भी उसे मिल गया। इस समझौते में एक यह शर्त भी मिला दी गई, जैसा कि सन् १८५३ की सन्धि में थी, कि वह निज़ाम के राज्य की रक्षा भी करे। इस समझौते के अनुसार सन् १९०३ में उक्त कान्टिन्जेन्ट सेना भङ्ग होगई और वह भारतीय सेना में सम्मिलित कर ली गई। सन् १९०३ के अक्टूबर में बरार मध्यप्रदेश के चीफ़कमिश्नर के शासनाधीन कर दिया गया। वर्तमान समय में उस रकम से, जो निज़ाम सरकार को वार्षिक कर स्वरूप देना पडती है, दस लाख रुपये उस कर्ज़ में मुजरे जाते हैं। जो दुर्भिक्ष निवारण के लिए भारत सरकार ने कर्ज लेकर बरार में खर्च किये थे और जो उसके दुर्भिक्ष तथा दूसरी बातों के लिए निज़ाम-सरकार को कर्ज़ में दिये थे। जब ये सारे कर्ज़े भुगत जायँगे तब निज़ाम-सरकार को पूरे २५ लाख रुपये वार्षिक मिला करेंगे।

सम्भलपुर का बङ्गाल में मिलाया जाना, सन् १९०५—सन् १९०५ में सम्भलपुर ज़िले का एक बहुत बड़ा भाग, बामडा, रैराखोल, सोनपुर, पटना और कालाहण्डी की पाँच देशी रियासतों के सहित, बङ्गाल में मिला दिया गया और ऐसे ही पाँच देशी रियासतें चङ्गभाकर, कोरिया, सरगुजा, उदयपुर और जशपुर आदि बङ्गाल से मध्यप्रदेश के अन्तर्गत कर दी गईं।

देशी रियासतें

पहला अध्याय

बस्तर

उपोद्‌घात—इस प्रान्त का इतिहास उसकी देशी रियासतों के इतिहास के बिना पूरा नहीं हो सकता है। इस प्रान्त मे १५ देशी रियासतें हैं। इन सबका क्षेत्रफल ३१,१८८ वर्ग मील और इनकी आबादी १६,३१,१४० है। इस तरह ये रियासते इस प्रान्त का एक महत्वपूर्ण भाग हैं। अतएव इन रियासतो का इतिहास इस पुस्तक के अन्तर्गत दिया जाता है। इन रियासतों मे मकराई नाम की एक रियासत होशङ्गाबाद जिले में है। शेष सब छत्तीसगढ की कमिश्नरी के अन्तर्गत हैं। भौगोलिक स्थिति के अनुसार छत्तीसगढ की रियासते तीन समूहों में बँटी हैं। पहले मे बस्तर और कांकेर है। दूसरे मे नांदगाँव, खैरागढ, छुइखदान और कवर्धा की रियासते हैं। तीसरा समूह दो उप-समूहों मे बाँटा जा सकता है। पहले मे तीन रियासतें शामिल हैं, जो पहले चीफकमिश्नर के समय से मध्यप्रान्त के शासनाधीन रही हैं। इनके नाम रायगढ, सक्ती और सारङ्गगढ हैं। दूसरे मे पाँच रियासते शामिल हैं, जिनको बङ्गाल-सरकार ने सन १९०५ में इस प्रदेश

के अन्तर्गत कर दिया था। इनके नाम सरगुजा, उदयपुर, जशपुर, कोरिया और चङ्गभकर हैं।

ब्रिटिश सरकार के साथ इन रियासतो का जो सम्बन्ध है वह एक पोलिटिकल एजन्ट की देख रेख में रहता है। ये रियासते रकबे और महत्व के अनुसार एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न हैं। सक्ती का रकबा, जो सबसे छोटी है, १३८ वर्गमील है और बस्तर का रकबा, जो सबसे बडी है, १३,०६२ वर्गमील है। इनका शासन वंशपरम्परागत राजाओं द्वारा होता है। इन्हें ये रियासते इस शर्त पर मिली हैं कि इनके राजा बृटिश सरकार के भक्त बने रहे, अपनी रियासतो का सुशासन करें और सरकार के साथ ईमानदारी का व्यवहार करें। इन रियासतो के राजा अपनी रियासतो के प्रबन्ध में स्वतन्त्र हैं। इनके भीतरी शासन प्रबन्ध में सरकार केवल मृत्यु दण्ड को छोडकर और किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करती। मृत्यु दण्ड देने के उपरान्त इन रियासतो के स्वामियो को चीफ कमिश्नर की स्वीकृति लेनी पडती है। परन्तु वस्तुत ब्रिटिश सरकार ने बहुधा इन रियासतो की बहुत कुछ देख भाल की है। उसे अधिक अवसरो पर इनका प्रत्यक्ष शासन करना पडा है। परन्तु यह अवसर तभी आया है जब उसका राजा या तो नाबालिग रहा है या उसकी चाल ढाल अच्छी नहीं रही है। जब किसी रियासत का राजा नाबालिग होता है तब उसका शासन पोलिटिकल एजन्ट के

अधीन एक सुपरिन्टेन्डेन्ट द्वारा होता है। किसी नये राजा को उसके गद्दी पर बैठने की स्वीकृति देते समय किसी किसी के मामले मे सरकार उस राजा को यह आज्ञा देती है कि तुम अपना दीवान उस अफसर को बनाओ जिसे सरकार मनोनीत कर। जब राजा सरकार की इस आज्ञा को मान लेता है तब उसे गद्दी मिलती है। इन रियासतो के सुपरिन्टेन्डेन्ट और दीवान के पद के लिए सरकार आम तौर मे अपने कर्मचारियो ही को चुनती हैं। जैसे महत्व की रियासत होती है उसी के अनुसार ये लोग विशेष कर प्रान्तिक या निम्न विभाग के अधिकारियों मे से चुने जाते है। कई एक रियासतों में समुचित रीति से जमीन की पडताल की गई है और मालगुजारी की जैसी व्यवस्था सरकारी इलाकों मे की गई है वही इनमें भी प्रचलित की गई है। मालगुजारी का वन्दोवस्त गॉव के मुखिया के साथ किया जाता है। परन्तु इसे भूमि पर किसी तरह का स्वत्व नहीं प्राप्त रहता है। इसे केवल आमदनी का कुछ वॅधा हिस्सा मिलता है। ये रियासते सरकार को कर देती हैं। सन् १९०४ में इस रकम का जोड २ ४३ लाख था।

वस्तर—इस रियासत का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकार में है। इसके प्रसिद्ध दीवान रायवहादुर पण्ड्या वैजनाथ द्वारा खोजे गय उत्कीर्ण लेखों और ताम्रपत्रो से यह मालूम पडता है कि रियासत के मध्य का भूभाग तेरहवीं सदी में चित्रकूट राज्य के नाम से प्रसिद्ध था। इस राज्य के शासक नागवशी राजा

थे। उनकी राजधानी वस्तर थी और शायद चित्रकूट के समीप कुरुसपल मे भी थी । इन उत्कीर्ण लेखों से इस नागवशी घराने का जो इतिहास हमें मिलता है वह आगे दिया जाता है। वस्तर के नागवशियों का येलबुर्गा के सिन्दा घराने से बहुत निकट का सम्बन्ध है । इन दोनों घरानो के पुरखे तथा विरुद करीब करीब एक ही हैं। इन लोगो के वश का नाम नागवश इसलिए पड गया कि उसके आदि पुरुष की उत्पत्ति नागराज से मानी जाती है । इस नागराज का नाम एक उत्कीर्ण लेख में धरणीन्द्र लिखा है । इस घराने के सम्बन्ध के एक दर्जन से अधिक शिलालेख बस्तर में ही खोज निकाले गये हैं। इनमे से बहुसङ्ख्यक तेलुगू भाषा मे उत्कीर्ण हैं । इनमे सबसे पहले का लेख इरोकोट में मिला था और उसपर शक सवत् ९४५ अङ्कित है, जो ईसवी सन् १०२३ होता है ।

नागवशी राजाओं का वशवृत्त, जो हमें इन उत्कीर्ण लेखों से प्राप्त हुआ है, इस तरह है—

नृपतिभूषण

|

जगदेकभूषण महाराज उपनाम-राजभूषण महाराज
(गुन्दद महादेवी के साथ विवाह किया)

|

राजभूषण महाराज

|

सोमेश्वर प्रथम
|
कौपरदेव

नृपतिभूषण शक संवत् ९४५ में अर्थात् सन् १०२३ में राज करता था।

कुछ विद्वानों का मत है कि दूसरा राजा जगदेकभूषण या राजभूषण और धारावर्ष, जिसने चक्रकूट या चित्रकूट पर शासन किया था, एक ही व्यक्ति है।

इसी समय मधुरान्तकदेव नाम का एक दूसरा नागवंशी राजा बस्तर-राज्य के दूसरे भाग पर राज्य कर रहा था। एक उत्कीर्ण दान पत्र मिला है जिससे प्रमाणित होता है कि इस राजा ने राजापुर नाम का एक गाँव दान में दिया था। दूसरे प्रमाणों से यह बात सिद्ध की गई है कि यह राजकीय दान नरमेधार्थ मनुष्य प्रस्तुत करने के लिए किया गया था। धारावर्ष ने गुण्डा महादेवी के साथ विवाह किया था। इस रानी से उसके सोमेश्वर प्रथम नाम का एक पुत्र हुआ। इस राजा के पाँच उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुए हैं। इनमें सबसे पहले का सन् १०७०–७१ के समय का है। सोमेश्वर के दो रानियाँ थीं। एक का नाम सरसन महादेवी और दूसरी का धरन महादेवी था। इस पिछली रानी के नाम का एक उत्कीर्ण लेख मिला है, जिससे प्रकट होता है कि सोमेश्वर प्रथम नागवंशी राजाओं में सबसे श्रेष्ठ था। उसने उद्दराय और वीरचोल

ताओं को जीता, वेगीदेश को जला डाला और कोशल को भूत किया था।

सन १११ के लगभग सोमेश्वर प्रथम का उत्तराधिकारी का पुत्र कान्हरदेव हुआ। सोमेश्वर की रानी गुण्डा महाती ने नारायण के मन्दिर के लिए नारायणपुर नाम का एक व लगाया था। यह मन्दिर नारायणपुर में अभी तक द्यमान है। कान्हरदेव के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में न राजाओं को छोड कर हमें किसी अन्य राजा के नाम का ा नहीं लगता है। एक का नाम सोमेश्वरदेव द्वितीय है। सका उपनाम जगदेकभूषण था। दूसरा राजा जगदेकभूषण रसिंह देव था और तीसरा राजा, जो इस वंश का अन्तिम जा था, राजाधिराज महाराज जयसिंहदेव था। यह बात यान देने योग्य है कि जिस समय नागवशी राजा शक्तिशाली उस समय वस्तर राज्य का उत्तरी भाग काँकेर के राजाओं े अधिकार में था।

काकतीय-सूर्यवंशी राजपूत—अन्त में चक्रकूट-राज्य काकतीय घराने के अधिकार में आगया। इस घराने के राजा वारङ्गल में शासन करते थे। ये लोग चालुक्य राजाओं के सामन्त राजा थे। विदर्भ के इतिहास में हमने चालुक्य राजाओं का हाल लिखा है। काकतीय घराने का प्रतापरुद्र अत्यन्त प्रसिद्ध राजा था। काकतीय लोग सूर्यवशी राजपूत थे। वे शिक्षाप्रचार के वडे प्रेमी थे और प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ

ने उन्ही के आश्रय में रहकर कीर्ति प्राप्ति की थी। सन् १४२४ में अहमदशाह बहमनी के साथ युद्ध मे प्रतापरुद्र मारा गया और उसका राज्य जाता रहा। परन्तु ऐसा मालूम पडता है कि राजधानी और उसके आसपास का कुछ देश इस घटना के बाद कोई १५० वर्ष तक अपनी स्वाधीनता बनाये रहा। राजा के भाई अन्नमदेव ने वारङ्गल को छोड दिया और बस्तर मे अपना राज्य कायम किया। कुछ लोगों का कहना है कि अन्नमदेव को उसके भाई ने निकाल दिया था। चाहे जो बात हो, परन्तु यह वही व्यक्ति था जो वारङ्गल से आया था और जिसने बस्तर के वर्तमान राजघराने को स्थापित किया था।

जब काकतीय लोग वारङ्गल मे आबाद हुए तब वे अपनी कुलदेवी माणिक्यदेवी या दन्तेश्वरी को, जैसा कि वह बस्तर में इस नाम से पुकारी जाती है, अपने साथ लेते आये थे। कहा जाता है कि जब वे लोग बस्तर में आये तब देवी ने उन्हे एक खड्ग प्रदान की जो अभी तक बस्तर मे पूजी जाती है। दन्तेश्वरी देवी आज भी इस राजघराने की कुलदेवी है। राजा उस देवी का प्रधान पुरोहित समझा जाता है। अन्नमदेव सन् १४१५ मे मर गया और हमीरदेव उसका उत्तराधिकारी हुआ।

सन् १५०२ में प्रतापराजदेव सिंहासन पर बैठा। इसने डोंगर के आसपास के १८ किलों को जीत लिया और उन्हे उसने अपने भाई को जागीर मे दे दिया। ऐसा मालूम पडता

है कि इस घटना के तीन पुश्त के भीतर ही वस्तर का घराना अस्त हो गया और उसके बाद डोगर और वस्तर दोनो राजपालदेव के अधिकार मे हो गये । यह राजा वस्तर के छोटे घराने का उत्तराधिकारी था । राजकीय उत्सवों के अवसर पर इस बात का सङ्केत इस समय भी किया जाता है जब कि छडी बरदार ढाही बोलते समय 'लहुरगजपति, सलामत लहुर' का उच्चारण करते हैं । राजपालदेव के दो रानियाँ थीं । एक बघेलिन और दूसरी चन्देलिन । पहली रानी से जो पुत्र हुआ उसका नाम दक्षिणदेव था । दूसरी रानी से दो पुत्र हुए थे । एक का नाम दलपतिदेव और दूसरे का प्रतापसिंह । बघेलिन रानी अपनी सौत और उसके पुत्रो से बडी ईर्ष्या रखती थी । जब राजपालदेव की मृत्यु हो गई तब उसने अपने भाई को गद्दी पर बिठा दिया और इस तरह सच्चे हकदार दलपतिदेव को निकाल बाहर किया । कुछ समय के लिए दलपतिदेव को वस्तर से चला जाना पडा । उसने यह काम अपने प्राण बचाने के लिए किया था । वह जयपुर-राज्य को भाग गया । इसके बाद उसने बस्तर राज दरबार के लोगो को अपनी ओर मिलाने लगा । जब वे लोग मिल गये तब वह अपने मामा की वश्यता स्वीकार करने के लिए उसके पास आया और अपने मेलियो की सहायता से उसने रक्षाबन्धन के दिन बल-पूर्वक सिंहासन पर अधिकार कर लेनेवाले अपने मामा को मार डाला । दलपतिदेव के सात रानियाँ थीं । उसकी बडी रानी से, जो कांकेर

के घराने की राजकन्या थी, अजमेरसिंह नामका एक पुत्र था। नागपुर-सेना के नीलू पण्डित नामक एक व्यक्ति ने वस्तर पर चढाई की और उसकी बडी रानी को कैद कर ले गया। परन्तु वह अपने कैद होने के थोडे दिन बाद ही पुरी में मर गई। दलपतिदेव अपनी राजधानी वस्तर से जगदलपुर को हटा ले गया और तब से वही राज्य का सदर है। इस घटना के तीन वर्ष बाद दलपतिदेव मर गया। उसकी दूसरी रानी से उत्पन्न उसके पुत्र दरियाराव और अजमेरसिंह में युद्ध ठन गया। परन्तु अजमेरसिंह ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। वह केवल दो ही वर्ष राज्य कर पाया था कि दरियाराव ने जयपुर के राजा की मदद से उसे निकाल बाहर किया। इस सहायता के बदले में सन् १७७७ में जयपुर के राजा को कुछ शर्तों पर कोटपद का इलाका दिया गया। इस युद्ध में रायपुर के शासक ने भी, जो उस समय नागपुर राज्य का एक भाग था, दरियाराव की मदद की थी। इसलिएँ दरियाराव को उसे अब वार्षिक कर देना पडा। पहले पहल इसी अवसर पर वस्तर-राज्य नागपुर के अधीन हुआ।

दरियाराव का शासन निर्वल था। गोदावरी के उत्तर ओर की तीन जमींदारियाँ उसके हाथ से निकल गई। वे हैदराबाद-राज्य में शामिल होगई। कहा जाता है कि उसने अपने भाई अजमेरसिंह को धोखे से मरवा डाला। इस घटना के बाद वह भी मर गया। राज्य का क्षेत्रफल और उसकी शक्ति दोनों

इसी राजा के शासन-काल में पहले पहल घटे । उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र महिपालदेव सिंहासन पर बैठा । इसके शासन काल में राज्य का और भी ह्रास हुआ । सलोइनगढ और अपरी तथा भैसाबाद के मौजे उसके पिता दरियाराव द्वारा किय गये कर्ज के भुगतान के लिए जयपुर के राजा को दे दिये गये । महिपाल की मृत्यु के बाद भूपालदेव सिंहासन पर आसीन हुआ । सन् १८३० मे उसे नागपुर-सरकार को सिहेवा का इलाका उस तकोली के स्थान मे दे देना पडा जो उसे उक्त राज्य को कर स्वरूप 'प्रति वर्ष देना पडती थी । सन् १८५४ मे नागपुर-राज्य ब्रिटिश सरकार के अधिकार मे आ गया । अतएव इस समय से बस्तर भी, जो नागपुर राज्य का अधीनस्थ राज्य था, अँगरेज-सरकार के अधीन हो गया । सन् १८५५ में ब्रिटिश सरकार ने देशी रियासतो के मर्तबे के सम्बन्ध में कुछ जाँच पडताल की थी । इसका फल यह हुआ कि पुरानी सनदें स्वाकार कर ली गईं । भूपालदेव का उत्तराधिकारी उसका पुत्र भैरवदेव हुआ । इसके शासन काल मे इसके दीवान की अयोग्यता के कारण राज्य के प्रबन्ध मे लगातार गडबड बना रहा । बस्तर और पडोसी राज्य जयपुर के बीच लगातार झगडा होता रहा, जिसके कारण राज्य में कई वर्ष तक मार काट मची रही । झगडे का खास कारण कोटपद का इलाका था । यह इलाका असल में बस्तर-राज्य का था परन्तु वह उस सहायता के बदले में जयपुर राज्य को दे दिया गया था जो कि बस्तर-राज्य को घरेलु

झगड़े के समय दी गई थी। अन्त में सन १८६३ में मध्यप्रदेश की सरकार ने यह इलाका जयपुर-राज्य को सौंप दिया और उसके बदले मे वह ३०००) वार्षिक कर जयपुर राज्य से लेने लगी। उक्त सरकार ने इस धन का दो तिहाई उस कर में मुजरा लिया जो बस्तर राज्य से प्रति वर्ष सरकार को मिला करता था। इस प्रबन्ध के कारण भूतपूर्व राजा की मृत्यु के समय तक बस्तर-राज्य का कर घटकर नाम मात्र को रह गया। इस राजा के शासन-काल मे बस्तर मे गोंड जाति के मुडिया लोगों ने बलवा कर दिया था। सन् १८७६ मे प्रजा ने राजा को घेर लिया। सन १८८३ मे कर्नल वार्ड ने राज्य के प्रबन्ध की जाँच की और यह निश्चय हुआ कि लाल कलिदल-सिंह राज्य के दीवान बनाए जायँ और एक तहसीलदार, जो सरकार का नौकर रह चुका हो, उन्हे उनके काम में सहायता करे। परन्तु यह प्रबन्ध बहुत दिन तक न चल सका। यह सन्देह किया गया कि राजा ने दन्तेश्वरीदेवी के मन्दिर में नरबलि होने दी है। इस कारण राजा गद्दी से उतार दिया गया, परन्तु जाँच होने पर मामला साबित न हो सका और सन् १८८६ मे उसे शासन करने का अधिकार फिर दे दिया गया। परन्तु एक सरकारी कमिश्नर दीवान नियुक्त किया गया और राज्य के सुप्रबन्ध का भार उस पर रक्खा गया। राजा के अधिकार इतना अधिक सङ्कुचित कर दिये गये कि बिना उच्च अधिकारियों की सम्मति के वह अपने दीवान को अपनी आज्ञा-

पालन करने के लिए वाध्य न कर सकता था। सन् १८६१ में भैरवदेव की मृत्यु ५२ वर्ष की उम्र में हो गई। उसके रुद्रप्रतापदेव नामक एक पुत्र था, परन्तु वह नावालिग था। अतएव उसकी नावालिगी के समय राज्य का प्रबन्ध ब्रिटिश सरकार ने किया। छ वर्ष तक दो योरपीय अधिकारी प्रबन्धक के पद पर रहे, परन्तु सन १९०४ में उक्त पद तोड दिया गया और एक देशी कर्मचारी राज्य का सुपरिन्टेन्डेन्ट बनाया गया। सन् १९०८ में बालिग हो जाने पर रुद्रप्रतापदेव अपने राज्य की गद्दी पर बिठाया गया। उसका विवाह नामडा के राजा स्वर्गवासी सर सुबलदेव, के० सी० आई० ई०, की कन्या के साथ हुआ है और उसे रायपुर के राजकुमार कालेज में शिक्षा मिली है।

दन्तेश्वरीदेवी, नरबलि—हमने ऊपर लिखा है कि दन्तेश्वरीदेवी वस्तर के राजा की कुलदेवी है। शङ्खिनी और डङ्किनी नदियों के सङ्गम पर उसका मन्दिर है। राजा ही उसका प्रधान पुजारी है। हिन्दू और गोंड दोनों उसकी पूजा करते हैं। देवी के सामने नरवलि उस समय तक होती रही थी जब कि सर रिचर्ड जेन्किन्स ने सन् १८२७ में अपनी रिपोर्ट लिखी थी। वे अपनी रिपोर्ट में इस तरह लिखते हैं, 'वस्तर में दन्तेश्वरीदेवी के लिए नरवलि अभी हाल तक होती रही है और राजा की आज्ञा से खुले आम होती रही है। परन्तु इस दूषित प्रथा के अब बिलकुल बन्द हो जाने की आशा की जाती है।

युद्ध के कैदी, अपराधी और कभी कभी निर्दोष आदमी तक देवी के आगे बलि कर दिये जाते थे। गोड राजाओं का सजा देने का यह एक साधारण ढङ्ग था कि दण्डित मनुष्य किसी देव विशप के सामने प्रार्थना करने के लिए ले जाया जाता और ज्योंही वह उस देवता का साष्टाङ्ग दण्ड प्रणाम करने लगता त्योंही उसका सिर धड से अलग कर दिया जाता था।" परन्तु यह प्रथा अब बन्द कर दी गई है। सन् १८४२ के बाद कई वर्षों तक एक गारद उस मन्दिर में तैनात रही थी और इस प्रथा को बिलकुल बन्द कर देने के लिए स्वयम् राजा जिम्मेदार माना गया था।

विधवाओं की बिक्री—मिस्टर चैपमैन सन् १८६८ के अपने नोट में एक दूसरी विचित्र प्रथा के सम्बन्ध में लिखते हैं—"राजा की आमदनी का साधन एक दूसरा अधिकार था। उसे इस बात का अधिकार था कि वह सुन्दी, कलार, धोबी और पनार इन चार धनी जातियों की विधवा और परित्यक्ता स्त्रियों को बेच ले। वह इस बात की खोज के लिए अपने दूत भेजा करता था कि ऐसी विधवा स्त्रियाँ कहाँ कहाँ हैं। वे अपने परगना के सदर में बुलाई जाती था और उनका नीलाम होता था। खरीददार उसी जात का होता था जिस जाति की बेची जानेवाली स्त्री होती थी। यह प्रथा बैटीपोनी के नाम से प्रसिद्ध थी, जिसका अर्थ कुटुम्ब की बहाली है। यदि विधवा का बहनोई राजा को थोडा बहुत नजराना देना स्वीकार

करलेता तो वह स्त्री उसको मिल जाती थी। राजा को इस बात का पूरा अधिकार था कि वह उस स्त्री को अधिक दाम लगाने वाले को दे दे। जब कोई स्त्री अपने पति के साथ दुर्व्यवहार करती थी तब कभी कभी उसका नाराज पति अपनी स्त्री नीलाम कर देने के लिए खुद ही राजा को दे देता था। परन्तु अब यह प्रथा बन्द कर दी गई है।

———

दूसरा अध्याय

सरगुजा

महत्व की दूसरी रियासत सरगुजा है। इसका क्षेत्रफल ६०८९ वर्गमील है। सन् १९०५ तक यह रियासत बङ्गाल के छोटा नागपुर की रियासतों के अन्तर्गत रही। इसके उत्तर में मिर्ज़ापुर का जिला तथा रीवाँ रियासत, पूर्व में पालामऊ तथा राची के जिले, दक्षिण मे जसपुर, उदेयपुर की रियासतें तथा बिलासपुर का जिला है और पश्चिम मे कोरिया रियासत है। इसके प्राकृतिक सुन्दर स्थानों में मैनपेठ और जमीरपेठ उल्लेख-योग्य हैं। मैनपेठ इसकी दक्षिणी सीमा पर एक उच्च-समभूमि है और जमीरपेठ इसकी पश्चिमी सीमा की एक लम्बी टेकरी का नाम है। परम्परागत कथाओ के अनुसार यह रियासत असल में कई भू-भागो में बँटी हुई थी और वहाँ द्राविडी जातियाँ बसी थीं। इन जातियों के आपने अपने राजा थे और वे लोग बिलकुल पुराने ढङ्ग से रहते, जङ्गली वृक्षों की जड़ें खाते और पत्तियो से अपना शरीर ढँकते थे। वे छोटे छोटे सरदार गृह-युद्ध में लिप्त रहते थे। अन्त मे पाला-मऊ जिले के कुण्डरी राजपूतों ने इन्हे अपने वशीभूत किया। यह घटना लगभग १७०० वर्ष बीते हुई थी। वर्तमान राजा इसी

वश मे है। एक समय सरगुजा का राजा सारी पडोसी रियासतों का अर्थात् उदयपुर, जसपुर, कोरिया और चगभाकर का अधिपति था। उदयपुर सरगुजा घराने के छोटे भाई को जागीर मे मिला था, किन्तु जब इसके जागीरदार ने ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध जोड लिया तब वह उदयपुर का स्वाधीन राजा मान लिया गया। यह बात सन् १८६० मे हुई थी। जसपुर अब एक स्वतन्त्र रियासत है। जसपुर की रियासत पर सरगुजा के राजा का जो थोडा बहुत आधिपत्य रह गया है वह केवल यही है कि जसपुर के राजा जो कर ब्रिटिश सरकार को देते हैं वह सरगुजा के राजा की मार्फत दिया जाता है। कोरिया और चङ्गभाकर तो अब पूरी तरह से स्वाधीन हैं। सरगुजा का आधिपत्य उनपर कुछ भी नहीं रह गया है। कहा जाता है कि मुगलों के समय में सरगुजा पर पटना, मुङ्गेर, मुर्शिदाबाद और दिल्ली से भी कई बार चढाइयाँ हुई थीं। खलीफा नामक एक आक्रमणकारी ने अपनी विजय के उपलक्ष में इस राज्य की प्रजा को ताँबे के पैसे बाँटे थे, परन्तु सरगुजा के राजा ने उन सब पैसों को अपनी प्रजा से वापस ले लिया था जिनमे दो पैसे इस समय भी वर्तमान राजा के पास विद्यमान हैं। यह चढाई सन १३४६ के लगभग हुई थी। सन् १७५८ से हमें इस रियासत की विश्वसनीय बातों का सिलसिला मिलता है। इसी वर्ष एक मरहठा सेना ने इस राज्य पर चढाई की और यहाँ के राजा को बरार के राजा की अधीनता स्वीकार करने को

विवश किया। सन् १७९२ मे वही राजा, जिसका नाम अजीतसिंह था, अँगरेजो के विरुद्ध एक वलवे मे शामिल हो गया और रॉची जिले के वरवे परगना पर अधिकार कर लिया। अँगरेजी सरकार की प्रार्थना पर बरार के मरहठा राजा ने हस्तक्षेप किया, पर कोई फल न हुआ। अजीतसिंह मर गया और उसके भाई लाल सग्रामसिंह ने अजीतसिंह की विधवा को मार कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। अँगरेजों ने कर्नल जोन्स को शान्ति स्थापित करने के लिए एक सेना के साथ सरगुजा भेजा। शान्ति स्थापित होगई और अँगरेज सरकार से महाराज की सन्धि होगई।

वलभद्रसिंह नामक अजीतसिंह का एक नाबालिग लडका सिंहासन पर वैठाया गया और राज्य के प्रबन्ध का भार उसके चचा जगन्नाथसिंह को सौंपा गया। परन्तु ज्योंही अँगरेजी सेना वहाँ से चली आई त्योंही लाल सग्रामसिंह फिर आ उपस्थित हुआ। उसने जगन्नाथसिंह को मार भगाया और उस नाबालिग राजा के नाम से सन् १८१३ तक राज्य का शासन किया। जगन्नाथसिंह और उसके लडके ने अँगरेजी राज्य मे भागकर शरण ली। सन् १८१३ में पोलिटिकल एजन्ट सरगुजा मेजर रफसीज गया और राज्य के मामलों को सुधारना चाहा। परन्तु नवयुवक राजा शक्तिहीन था, इसलिए राज्य का प्रबन्ध एक दीवान को सौंप दिया गया। पर यह राजकर्मचारी शीघ्र ही मार डाला गया। इस पर जो अँगरेजी गारद वहाँ नियुक्त थी

उसकी मदद से राजा तथा उसकी दो रानियों के पकड़ने का प्रयत्न किया गया, परन्तु सफलता न हुई।

इस तरह सन् १८१८ तक राज्य मे लगातार अन्धेर मचा रहा। इसी साल जब इस रियासत को बरार के माधोजी भोसला ने अँगरेजी सरकार को दे दिया तब शान्ति तुरन्त प्रतिष्ठित हो गई। अमरसिंह सिंहासन पर बिठाया गया और सन १८२६ में उसे महाराजा की पदवी प्रदान की गई। अपने जीवन के पिछले दिनों में इस राजा पर इसके पुत्र विन्ध्यश्वरीप्रसाद-सिंह का बहुत अधिक प्रभाव था। राजा के दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी के पुत्र का नाम इन्द्रजीतसिंह था। वह शासन करने के अयोग्य था, अतएव विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह को छोटी रानी का जो पुत्र था उसे राजप्रबन्ध सौंप दिया गया था। अमरसिंह के बाद इन्द्रजीतसिंह का पुत्र रघुनाथशरणसिंहदेव सन् १८८२ मे सिंहासन पर बैठा। कहा जाता है कि जब रघुनाथशरणसिंह पैदा हुआ था तब विन्ध्यश्वरीप्रसादसिंह ने सरकार को यह सूचना दी थी कि जो बच्चा पैदा हुआ है वह लड़की है और इस तरह अपने लिए सिंहासन पाने की आशा की थी। परन्तु उसका यह प्रयत्न विफल हुआ। सन् १८६५ में इस राजा को महाराजा बहादुर की व्यक्तिगत पदवी प्रदान की गई। इस रियासत का राजा सरकार को २५००) वार्षिक कर देता है।

कोयले की खान—सरगुजा में लगभग ८०० वर्गमील

भूमि के घेरे मे कोयले की विस्तृत खान है। लोगो की धारणा है कि उससे अधिक परिमाण में अच्छा कोयला निकाला जा सकता है। यह खान रियासत के मध्य भाग में स्थित है। उसे एक बहुत भारी ऊँची जमीन ढके हुए है। अभी तक खान खोदी नहीं गई है। भूगर्भ विद्या की रिपोर्टों मे यह स्थान विश्रामपुर के कोयले की खान के नाम से प्रसिद्ध है जो रियासत की राजधानी विश्रामपुर के निकट स्थित है। भारतीय पूँजी लगा कर देश की समृद्धि बढाने के लिए यहाँ बहुत अच्छी सुविधा है।

रामगढ़ पहाड़ी के खोह का मन्दिर—इस रियासत मे रामगढ पहाडी एक बहुत रमणीक स्थान है। इस पहाडी की आकृति समकोण है और यह रेतीले पत्थर की है। लक्ष्मण-पुर गॉव से लगभग १२ मील पश्चिम ओर यह पहाडी मैदान से बिलकुल उजडी हुई मालूम पडती है। इसमे पुरातत्व-सम्बन्धी कई एक स्थान हैं। अस्तु यह प्रमाणित होता है कि देश का यह भाग प्राचीन समय मे किसी बहुत ही सभ्य जाति द्वारा जरूर आबाद रहा होगा।

इस पहाडी की अत्यन्त आश्चर्यजनक प्राकृतिक रचनाओं में एक विचित्र नाला है। इसका नाम हाथीपोल है और उक्त पहाडी के उत्तरी सिरे पर है। जैसा उसका नाम है एक हाथी उससे होकर निकल जा सकता है। वहाँ पत्थर के कई एक ऐसे फाटक हैं जो अत्यन्त सुन्दर इमारतों के चिह्न-

स्वरूप माने जाते हैं। ये फाटक 'पौरी दवरी सिंह दरवाजा,' 'रावण दरवाजा' के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ प्राचीन काल के खोह-मन्दिर भी है। जिस घाटी मे हाथीपाल नाम का नाला गिरता है उसमे दो खोह हैं। इनमे दूसरी सदी के लेख उत्कीर्ण हैं। इनमें से एक जोगीमार नाम का खोह है। उस की छत पर २००० वर्ष की पुरानी चित्रकारी के चिह्न पाये जाते हैं। सीताबेंग नाम के दूसरे खोह क सम्बन्ध मे यह विश्वास किया जाता है कि उसके हॉल मे नाटक खेले जाते थे और कविताएँ पढ़ी जाती थीं। एक दूसरी खोह का नाम वशिष्टगुम है। इसके सम्बन्ध मे यह अनुमान किया जाता है कि रामचन्द्र के गुरु वशिष्ट वहाँ रहे थ।



तीसरा अध्याय

जसपुर

सरगुजा के बाद महत्व की रियासत जसपुर है। इसका क्षेत्रफल १६४८ वर्गमील है। सन् १६०५ तक यह बंगाल की छोटा नागपुर की रियासतों के अन्तर्गत थी। इसके उत्तर और पश्चिम में सरगुजा की रियासत, पूर्व में राँची का जिला और दक्षिण मे भङ्गपुर, उदयपुर और रायगढ स्थित हैं। जसपुर के 'ऊपर घाट' मे एक बहुत बड़ी उच्च समभूमि है। समुद्र की सतह से इसकी औसत ऊँचाई लगभग २२०० फुट है। यह रियासत पहाड़ियों से व्याप्त है। इनकी ऊँचाई किसी किसी स्थान मे १००० फुट तक पहुँच गई है। परम्परागत कथाओं के अनुसार इस प्रान्त का यह भाग पहले जमाने मे डोम राजाओं के अधीन था। इन्हीं मे मे राजभाड नाम के एक राजा को वर्तमान राजा के पूर्वज सुजानराय ने निकाल बाहर किया था। सुजानराय सूर्यवंशी क्षत्री और सोनपुर के राजा का ज्येष्ठ पुत्र था। असल में उसका घराना राजपूताना के बाँसबाडा राज्य मे निकला है। उसके पिता की मृत्यु उस समय हुई थी जब वह आखेट-यात्रा में था। उसकी अनुपस्थिति में राजा का दूसरा पुत्र सिंहासन पर बैठ गया। जब

सुजानराय लौट आया तब उसके छोटे भाई ने उसके लिए सिंहासन परित्याग करना चाहा, पर यह बात सुजानराय को मञ्जूर न हुई। वह सन्यासी हो गया और इधर उधर भ्रमण करता हुआ खुरिया जा पहुँचा। इस स्थान में डोमराज की प्रजा उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थी। सुजानराय स्वयम् उनका नेता बन गया और डोमराज को मार कर सिंहासन पर बैठ गया। इस घटना के कुछ समय बाद जसपुर का राजा नागपुर के भोंसला राजा का करदाता हो गया। कर-स्वरूप उसे भैंस के २१ बच्चे देने पड़ते थे। सन् १८८८ में सरगुजा रियासत-समूह की शेष रियासतों के साथ इसको भी माधोजी भोंसला ने अँगरेज सरकार को दे दिया। किसी किसी बात में जसपुर पहले सरगुजा का अधीन राज्य माना जाता था। उसका जो कर सन् १८९९ में १२५०) वार्षिक निर्दिष्ट हुआ था वह आज भी उसी रियासत की मार्फत अदा किया जाता है। परन्तु इस रियासत का राजा सरगुजा राज्य के प्रति किसी प्रकार के सामन्तिक कर्त्तव्य पालन करने को बाध्य नहीं है। राज्य कर के भुगतान की बात के सिवा यह रियासत अब एक स्वतन्त्र रियासत के रूप में मानी जाती है। जसपुर-वालों का कहना है कि यह राज्य कर पहले प्रत्यक्ष रीति से भेजा जाता था। परन्तु सन् १८२६ में जसपुर के राजा रामसिंह को, जो उस समय बिलकुल लड़का था, सरगुजा देखने के लिए वहाँ के राजा ने बुलाया था और वह रामसिंह को तब तक

बन्दी बनाये रहा जब तक उसने सरगुजा के राजा को अपना अधिपति न स्वीकार किया। इस रियासत के राजा और अगरजी सरकार के साथ जो सम्बन्ध है वह सन् १८१९ और सन् १९०५ की सनदो द्वारा निर्धारित है। इस सनद के अनुसार अगरेजी सरकार ने उसे राजा स्वीकार किया है और कुछ निर्धारित शर्तों के अनुसार उसे अपनी रियासत का शासन करने का अधिकार दे दिया है और आगे के बीस साल के लिए १२५० रुपये वार्षिक कर नियत कर दिया गया है। रियासत की प्रबन्ध-सम्बन्धी सारी प्रधान बातो के लिए राजा छत्तीसगढ के कमिश्नर की निगरानी मे है।

खुरिया रानी—इस रियासत मे खुरिया रानी के नाम से प्रसिद्ध देवी का एक मन्दिर सन्ना के समीप एक दुर्गम चट्टान पर है। मन्दिर की मूर्ति बुद्ध की मूर्ति प्रतीत होती है और मन्दिर भी बौद्ध इमारतों के सदृश बना हुआ मालूम पडता है। यह अजीब बात है कि उस देवता का स्त्रित्वबोधक नाम होने पर भी मूर्ति पुरुष देवता की है, देवी की नहीं है। अज्ञानता तथा भीरुता के प्रभाव में आकर लोग एक देवता को दूसरा देवता किस तरह बना लेते हैं, इस बात के उदाहरणों में यह एक उदाहरण है।

चौथा अध्याय

कोरिया

कोरिया-रियासत का क्षेत्रफल १६३१ वर्गमील है। इसके उत्तर में रीवाँ, पूर्व में सरगुजा, दक्षिण मे बिलासपुर का जिला और पश्चिम में चङ्गभकर और रीवाँ-राज्य है। यह रियासत पहाड़ियो से परिपूर्ण है मानो एक पहाड़ी दूसरी पर जमा दी गई है। इन पहाड़ियों पर खूब घना जङ्गल है। अभी कुछ समय पहले तक इसकी राजधानी सोनहट थी। परन्तु यह स्थान अस्वास्थ्यकर प्रमाणित हुआ, अतएव अभी हाल ही मे राजधानी इस स्थान से सोलह मील दक्षिण हटा कर वैकुण्ठपुर में क़ायम की गई है। परम्परागत कथाओं के अनुसार इस रियासत का राजा कोलराजवंशी था, जो कोरियागढ नाम की पहाड़ी पर रहता था। यह पहाड़ी चिरमी के पश्चिम ओर लगभग छ. मील की दूरी पर मैदान से उभड़ी हुई है। इस कोलराजवंश को राजा धर्ममल्लशाह ने अधिकारच्युत किया था। वह उस समय जगन्नाथ की यात्रा करके इस रियासत से हो कर लौट रहा था। इस बात को हुए लगभग १८ सदियाँ हो चुकी हैं। राजा धर्ममल्ल इस रियासत के वर्तमान राजा का पूर्व पुरुष है। उसकी राजधानी नागर में थी।

इसके बाद नागर से राजधानी उठकर वजली को चली गई, जहाँ से सोनहट और अन्त में वह वैकुण्ठपुर में कायम हुई। सन् १८६७ में राजा धर्ममल्लशाह का वंश उच्छिन्न हो गया। वर्तमान राजा, जो राजा शिवमङ्गलसिंहदेव का पुत्र है, भूतपूर्व राजा के दूर के वंश का है। नागपुर के भोसला राजा ने इस रियासत को सन १८१८ में अँगरेजों को दे दिया था। उस समय के राजा गरीबसिंह ने सन् १८१९ में एक कबूलियत लिख दी, जिसके अनुसार उसने ४००) वार्षिक कर देना स्वीकार किया था। राजा शिवमङ्गलसिंह ने फिर एक सनद लिख दी, जिसके अनुसार बीस वर्ष के लिए ५००) वार्षिक कर देना नियत हो गया। खरगवाँ जिमींदारी में एक बडा भारी साल का जङ्गल है। यह भोलानाथ वर्मा नामक एक व्यक्ति को पट्टे पर दे दिया गया है। भोलानाथ एक ठेकेदार है। वह रेलवे कम्पनियों को काठ की पटरियाँ प्रस्तुत करने का व्यवसाय करता है।

पाँचवाँ अध्याय

रायगढ

रायगढ भी महत्व की रियासत है। इसका क्षेत्रफल १४८६ वर्गमील है। इसके पूर्व तथा पश्चिम में सम्भलपुर तथा विलासपुर, उत्तर में छोटा नागपुर और दक्षिण में महानदी है। रियासत की राजधानी रायगढ है। वह बङ्गाल-नागपुर रेलवे पर एक स्टेशन है। वर्तमान राजा का घराना चाँदा के पुराने गोंड-राजवंश से निकला है। इस राजवंश का वंशवृक्ष इस तरह है —

मदनसिंह
|
तख्तसिंह
|
बेथसिंह
|
द्रिपसिंह
|
जुझारसिंह
|
देवनाथसिंह

धनश्यामसिंह

भूपदेवसिंह | नारायणसिंह | गजराजसिंह

कहा जाता है कि इस रियासत का संस्थापक मदनसिंह चाँदा जिले के वैरागढ नाम के गाँव से आया था। वह फुलझर में अपने चाचा के घर रहने लगा। यहाँ से वह रायगढ रियासत के वड्डा नामक गाँव में जा वसा। कुछ कारणो से वह वड्डा से निकल कर रायगढ मे जा वसा। इसके बाद उसने वड्डा में कभी कदम तक न रक्खा और तबसे आज तक इस रीति का पालन उसके वंशधर करते आये हैं। उनकी धारणा है कि इस रीति का उल्लङ्घन करने से उन पर उस ग्राम मे स्थापित देवता का कोप हो जायगा। मदनसिंह की मृत्यु के उपरान्त तख्तसिंह सिंहासन पर वैठा और उसकी मृत्यु के बाद वेथसिंह उत्तराधिकारी हुआ। इसके बाद द्रिपसिंह के हाथ में राज्य का शासन आया और तदनन्तर उसका ज्येष्ठ पुत्र सिंहासन पर वैठा। सन् १८०० के लगभग ईस्ट इन्डिया कम्पनी के साथ इस राजा की सन्धि हुई। इसी समय सम्भलपुर को मरहठों ने अपने राज्य मे मिला लिया। रायगढ सम्भलपुर का सामन्त राज्य था, अतएव यह भी मरहठो की अधीनता में आ गया। जुझारसिंह को पदमपुर परगना छोड

देना पडा । यह परगना इसे सम्भलपुर की रानी ने दिया था । जुझारसिंह के ज्येष्ठ पुत्र देवनाथसिंह ने उस विद्रोह का दमन किया जिसे बडगढ के राजा अजीतसिंह ने अँगरेजो के विरुद्ध खडा किया था । यह घटना सन् १८३३ की है । इस कार्य के पुरस्कार स्वरूप बडगढ की जमींदारी इसे दे दी गई । सन् १८५७ के विद्रोह के समय देवनाथसिंह ने सम्भलपुर के सुन्दरसई और उदयपुर के प्रसिद्ध शिवराजसिंह के पकडने में बहुत भारी काम किया । सन १८६० में उसकी मृत्यु हुई और उसका ज्येष्ठ पुत्र घनश्यामसिंह सिंहासन पर बैठा । सन १८६५ में राजा घनश्यामसिंह को गोद लेनेवाली सनद दी गई । यही सनद इसी साल कालाहण्डी, पटना, सोनपुर, रैराखोल और बामडा के राजाओं को भी दी गई । सन् १८६७ में उसे एक दूसरी सनद दी गई, जिसके अनुसार सामन्तिक राजा-सम्बन्धी उसका मर्तबा निर्दिष्ट हो गया । सन् १८८५ में इस रियासत का प्रबन्ध अँगरेजी सरकार ने अपने हाथ में ले लिया, क्योंकि राजा अपनी रियासत का प्रबन्ध अच्छी तरह से न कर सकता था । सम्भलपुर के डिप्टी कमिश्नर की प्रत्यक्ष निगरानी में एक सुपरिन्टेन्डेन्ट द्वारा रियासत का प्रबन्ध होता था । राजा घनश्यामसिंह सन् १८६० में मर गया और उसका पुत्र भूपदेवसिंह, जो सन् १८६६ में पैदा हुआ था, उसका उत्तराधिकारी हुआ । परन्तु रियासत का प्रबन्ध अँगरेजी सरकार के हाथों में सन् १८६४ तक बना

रहा। इसी वर्ष राजा भूपदेवसिंह को अपनी रियासत के शासन का पूर्ण अधिकार दे दिया गया और वह स्वयम राज्य का प्रबन्ध करने लगा। वह सुशिक्षित है और सारे सार्वजनिक कार्यों की खुद निगरानी रखता है। रियासत का सदर स्थान रायगढ है। यह रियासत टसर के काम के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ से टसर का माल मदरास के बहरामपुर को बहुत भेजा जाता है। टसर के बने कपडे रायगढ से बाहर को भेजे जाते हैं। बङ्गाल-नागपुर-रेलवे की खुरसिया स्टेशन से लगभग ८ मील दूर इस रियासत की माँद की घाटी मे कोयला पाया जाता है।

छठा अध्याय

काङ्केर

काङ्केर-रियासत का क्षेत्रफल १४२६ वर्गमील है। इसके उत्तर में द्रुग और रायपुर के जिले, पूर्व में रायपुर का जिला, दक्षिण में वस्तर और पश्चिम में चाँदा है। इस रियासत का सदर काङ्केर बङ्गाल नागपुर-रेलवे की उपशाखा रायपुर-धमतरी रेलवे की धमतरी स्टेशन से ३६ मील दूर है। रियासत का अधिकांश क्षेत्रफल पहाड़ियों और जङ्गलों से आच्छन्न है। इस रियासत का राजवंश सोमवंशी राजपूत है। परम्परागत कथाओं के अनुसार इस राज्य का संस्थापक वीर कान्हरदेव था। वह पहले उड़ीसा में जगन्नाथपुरी का राजा था। उसके कुष्ट रोग हो गया था। अतएव उसने सिंहासन परित्याग कर दिया। नीरोग होजाने के लिए वह भिन्न भिन्न स्थानों में भ्रमण करता रहा और अन्त में धमतरी तहसील के सिहावा में शृङ्गी ऋषि की कुटी पर जा पहुँचा। एक दिन यहाँ एक पोखर में स्नान करने से उसका रोग तुरन्त ही जाता रहा। इस चमत्कार का प्रभाव सिहावा-निवासियों पर इतना अधिक पड़ा कि उन लोगों ने उसे अपना राजा बना लिया। उसके वंशज कुछ समय तक

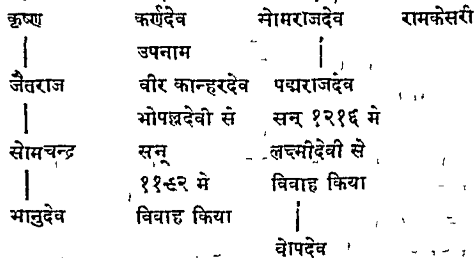
सिहावा में शासन करते रहे। यह बात सन् ११९२ के उत्कीर्ण लेख से सिद्ध होती है, जो वहाँ पाया गया है।

उत्कीर्ण लेखो से कांकेर के राजाओ का निम्नलिखित वंशवृत्त जाना जा सकता है।

सिंहराज

व्याघ्रराज उपनाम बाघराज

वोपदेव



कर्णदेव उपनाम वीर कान्हरदेव शिव का बडा भक्त था। उसने शिव के अनेक मन्दिर बनवाये और उनके नाम पर अनेक

तालाब खुदाये। वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। इस राजवंश की परम्परागत कथा के अनुसार इस घराने में अठारह राजा हुए हैं। इस वंश का तीसरा राजा सिहावा से काङ्केर को राजधानी उठा ले गया और चौथे ने धमतरी तालुका को अपने राज्य में मिला लिया। छत्तीसगढ़ के हैहयवंशी घराने के उन्नति काल के एक पुराने उत्कीर्ण लेख से यह बात प्रकट होती है कि काङ्केर राज्य हैहयवंशी राजाओं के अधीन एक सामन्त राज्य था। जब मरहठों का सितारा चमका तब काङ्केर के राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार की। आवश्यकता पड़ने पर ५०० सैनिक प्रस्तुत करने की शर्त पर मरहठों ने उन्हें अपने राज्य पर शासन करने का अधिकार दे दिया। यहाँ के राजाओं में रुद्रदेव नाम के एक राजा ने धमतरी के पास महानदी पर एक शिवालय बनवाया और उसका नाम रुद्रेश्वर का मन्दिर रक्खा। उसने रुद्री नामक एक गाँव भी उसी स्थान में बसाया। उसने धमतरी का किला भी बनवाया, जिसकी बाहरी खाई आज भी वर्तमान है। इस राजा के चौथे उत्तराधिकारी हरपालदेव ने अपनी कन्या बस्तर के राजा को ब्याह दी और सिहोरा परगना दहेज में दे दिया। हरपाल का चौथा उत्तराधिकारी भूपदेव था। भूपदेव ने बस्तरके राजा को उस समय सहायता दी जब मरहठों ने उस पर चढ़ाई की थी। इस कारण स्वयम् उसी पर आपदाएँ आ पहुँचीं और उनके कारण वह बिलकुल

तबाह हो गया था। पहले तो मरहठों के साथ युद्ध में वे लोग विजयी हुए, पर अन्त में भूपदेव को धमतरी तहसील के झरिया गाँव में भाग जाना पड़ा। उसके साथ उसकी रानी भी भाग गई थी। वहाँ उसके पद्मसिंह नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सन् १८०६ से सन् १८१७ तक वह झरिया में रहा, परन्तु सन १८१८ में अँगरेज़ी सरकार के रेज़ीडेन्ट ने, जो नागपुर के राज्य का प्रबन्ध करता था, ५००) वार्षिक कर देने की शर्त पर उसे काङ्केर का राज्य दे दिया। परन्तु सन् १८२३ में जब अँगरेज़ी सरकार ने उस रियासत के एक ख़ास इलाके की कर-व्यवस्था अपने हाथ में कर ली तब यह वार्षिक कर लेना बन्द कर दिया गया और तब से इस रियासत से सरकार को किसी तरह का कर नहीं मिलता है। वर्तमान राजा लाल कमलदेव महाराजाधिराज की अपनी वंशगत पदवी के सहित सन १६०४ में गद्दी पर बैठा था।

सातवाँ अध्याय

उदयपुर

उदयपुर का क्षेत्रफल १०५२ वर्गमील है। इस रियासत के उत्तर मे सरगुजा, पूर्व मे जशपुर तथा रायगढ की रियासतें, दक्षिण मे रायगढ़ और पश्चिम मे बिलासपुर का जिला है। पहले यह रियासत छोटा नागपुर की रियासतो में शामिल थी, परन्तु सन १९०५ से यह मध्यप्रदेश मे मिला दी गई है।

मालूम पडता है कि यह रियासत खनिज पदार्थों से परिपूर्ण है। कोयला, सोना, लोहा, अभ्रक और, चूना का अस्तित्व इस रियासत में है। परन्तु आज तक इस सम्बन्ध मे किसी तरह की नियमबद्ध जाच पडताल नहीं की गई है। इस बात को मानने के लिए कारण हैं कि रियासत मे अधिक परिमाण मे कोयला विद्यमान है।

धर्मजयगढ के पूर्व दो मील की दूरी पर कोयले की भूमि है, परन्तु उससे ईंट बनाने का काम लिया जाता है। धर्मजयगढ के पश्चिम चार मील के लगभग मांद नदी की तह मे भी कोयला पाया जाता है। अभी हाल मे रियासत के दक्षिणी भाग मे मांद नदी के समीप लाट नामक गाँव में कोयले की एक तह मिली है। गैस के रूप में काम

प्रारम्भ कर दिया गया है, परन्तु काफी तौर से इस सम्बन्ध मे विशेष उन्नति नहीं हुई है । रियासत की राजधानी धर्मजयगढ़ बङ्गाल-नागपुर-रेलवे की खुरसिया स्टेशन से ६६ मील की दूरी पर है । उदयपुर तब से सरगुजा का एक भाग है जब से उसे रकसेल राजपूतों ने विजय किया था । यह रियासत सरगुजा राजघराने की उपशाखा की जागीर थी ।

सन् १८१८ मे अँगरेजों का जो सुलहनामा माधोजी भोंसला के साथ हुआ था उसके अनुसार सरगुजा के साथ यह रियासत भी अँगरेजों को दे दी गई थी । अङ्गरेजो के अधीन होजाने पर उदयपुर के शासक कल्यानसिंह अपना राज्य-कर सरगुजा के द्वारा अदा करते थे ।

सन १८५२ मे इस रियासत का राजा और उसके दो भाई नर-हत्या के अपराध मे अभियुक्त हुए और उन्हे कैद की सजा मिली और रियासत को सरकार ने जब्त कर लिया । गदर के समय राजा और उसके भाई उदयपुर भाग गये और उन्होने वहाँ अपना शासन फिर जारी करने का प्रयत्न किया । सन् १८५९ मे दोनों भाइयों मे से जो जिन्दा बच गया था वह कतल और विद्रोह के अपराध में अभियुक्त हुआ और उसे जीवन भर के लिए कालापानी की सजा दी गई । तत्पश्चात् सन् १८६० में उक्त राज्य सरगुजा के राजा के भाई विन्ध्येश्वरीप्रसाद को दे दिया गया जिन्होंने सन् १८५७ के गदर मे सरकार की अच्छी सेवा की थी ।

यह सरदार गरतावपुर में रहता था, जो सरगुजा रियासत से उसे जागीर में मिला था ।

विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह बडा योग्य तथा दृढ स्वभाव का राजा था। सन् १८७१ में उसने कोइनफर रियासत के बलवे के दबाने में सरकार को सहायता दी, जिसके लिए सरकार ने उसको कामदार झूल के सहित एक हाथी, सोने की एक घडी और एक चेन पुरस्कार में दी । उसे राजा बहादुर की व्यक्तिगत पदवी भी प्राप्त हुई और वह सी० एस० आई० भी बना दिया गया । सन् १८७६ में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र धर्मजीतसिंहदेव उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह उदयपुर के रवकाव में रहने लगा और उसने उसका नाम धर्मजयगढ रख दिया। सन् १९०० में वह मर गया। उसके चन्द्रशेखरप्रसादसिंह नामक एक पुत्र है, जिसे रायपुर के राजकुमार कालेज में शिक्षा दी गई है । चन्द्रशेखरप्रसादसिंह की नाबालिगी में रियासत का प्रवन्ध सरकार के हाथ में रहा । पहले तो इसका प्रबन्ध छोटा नागपुर के कमिश्नर के अधीन रहा और बाद को (सन १९०५ से) छत्तीसगढ के कमिश्नर के हाथ आगया ।

सन् १८९९ में जो सनद इस राजा को दी गई थी उससे इसका और सरकार के बीच का सम्बन्ध निर्धारित हो गया और वही सनद सन् १९०५ में कुछ साधारण परिवर्तनो के साथ रियासत के मध्य प्रान्त में शामिल किये जाने के कारण

फिर नये रूप में दी गई। इस सनद के अनुसार सरकार ने रियासत पर राजा का अधिकार स्वीकार किया और निश्चित शर्तों के अनुसार उसे अपनी रियासत पर शासन करने का अधिकार प्रदान किया और २० वर्ष के लिए कर भी नियत हो गया, जो उस समय के बाद घटाया बढाया जा सकता है।

इस रियासत की आबादी मे कौरन नामक आदिम जाति का महत्वपूर्ण भाग है। उसकी सङ्ख्या १८ हजार है। वे लोग अपनी उत्पत्ति उन कौरवो से बतलाते हैं जिन्हें पाण्डवों ने कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र मे हराया था और जो तत्पश्चात् अपने वर्तमान वासस्थान को चले आय। बागबहार का जमींदार इस जाति का स्थानिक सरदार है और उसने अभी हाल मे अपने अनुयाइयो को शराब पीने तथा मुर्गी पालने या खाने से मना कर दिया है। यह काम इस बात का लक्षण है कि वे लोग सामाजिक दर्जे में अपनी उन्नति करने के प्रयत्न में हैं।

आठवाँ अध्याय

खैरागढ़

इस रियासत का क्षेत्रफल ९३१ वर्गमील है। इसमें अलग अलग तीन इलाके शामिल हैं। सबसे बड़ा खैरागढ़ और डोनगढ़ की तहसीलों का भाग है, जिसमें नाँदगाँव का एक भाग शामिल है। यह इलाका उत्तर ओर छुइखदान रियासत और परपोदी जिमींदारी से, पूर्व ओर दुर्ग और नांदगाँव से, पश्चिम ओर भण्डारी और बालाघाट के जिलों से घिरा है। दूसरा इलाका समरिया नाम का है। यह छुइखदान, कवर्धा की रियासत, सिलपेटी जमींदारी, महगाँव परगना और दुर्ग जिले से घिरा है। तीसरे इलाका का नाम खोलवा है। यह लोहारागन्दी तथा सिलपेटी की जमींदारी, दुर्ग तथा बालाघाट के जिलों और छुइखदान की रियासत से घिरा है। खैर और गढ़ इन दो शब्दों से इस रियासत का नाम खैरागढ़ हुआ है। यह नामकरण इस कारण से हुआ है कि इस रियासत के उसी स्थान पर खैर का बड़ा घना जङ्गल था जहाँ अब रियासत की राजधानी है। इस रियासत के राजघराने की उत्पत्ति छोटा-नागपुर के नागवंशी राजपूत राजा सभासिंह से हुई है। इस राजा के दो पुत्र थे। इनमें छोटा लड़का खालवा चला आया

और यहीं रहने लगा। सन १७४० में इस राजघराने का वंशज श्यामसिंह खोलवा का जिमींदार था। उसने लञ्जी के सरदारों की सहायता की, जब वे मण्डला के राजा महराजशाह के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। वह और लञ्जी के सरदार युद्ध में हारे। लञ्जी को मण्डला के राजा ने स्वाधिकार भुक्त कर लिया, परन्तु श्यामसिंह को मण्डला के राजा ने अपना सामन्त स्वीकार किया और उसे अपना राज्य स्थापित करने की आज्ञा मिल गई। श्यामसिंह की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी दरियावसिंह हुआ। उसने थोड़े ही समय तक शासन किया। उसका पुत्र अनूपसिंह गद्दी पर बैठा। उसके समय में रियासत में १३२ गाँव थे, जो कि वर्तमान समय के खोलवा, खैरागढ और लछना के तीन परगनों में शामिल हैं। अनूपसिंह के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र माधवसिंह हुआ और इसके बाद उसका पुत्र खड़गराय गद्दी पर बैठा। इसके शासन-काल में लञ्जी के जमींदारों ने नागपुर के भोंसला राजा की सहायता से खोलवा पर चढ़ाई की और खड़गराय को दब जाना पड़ा। परन्तु इसे भोंसला राजा ने अपने यहाँ बुलाकर खिलअत प्रदान की और अपना सामन्त राजा बना लिया। अब खड़गराय को ५०० रुपये वार्षिक कर देना पड़ा। इस समय रियासत की राजधानी खोलवा थी, जहाँ खड़गराय ने एक महल और एक घाट बनवाया था। परन्तु बाद को वह अपनी राजधानी खैरागढ उठा ले गया। जब नागपुर का राजा मर गया तब जो कर खैरागढ राज्य को देना पड़ता

था वह सन् १७५५ मे बढाकर १५००) कर दिया गया। खरगराय के मर जाने पर उसका पुत्र टिकैतराय उत्तराधिकारी हुआ इसके समय मे राज्य कर २०००) कर दिया गया। खैरागढ मे रुखार स्वामी का एक प्राचीन मन्दिर है। कहते हैं कि इसे टिकैतराय ने बनवाया था। इस सम्बन्ध मे यह कथा प्रचलित है कि एक बार टिकैतराय जङ्गल मे शिकार खेल रहा था। वहाँ उसे ध्यानमग्न महात्मा के दर्शन हो गये। बाद को यही महात्मा रुखार स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्वामी के दिव्य तेज से मुग्ध हो कर टिकैतराय ने उसके लिए एक कुटी बनवा दी जो कि बाद को मन्दिर बना दिया गया। स्वामी अपनी दैवी शक्तियो के लिए प्रसिद्ध था और भविष्य बातें जानने की उसकी विलक्षण गति थी। उसने इस बात की ठीक भविष्यद्वाणी की थी कि टिकैतराय के अभी दो पुत्र और होगे। टिकैतराय का पहला पुत्र मर चुका था और उस समय उसकी उम्र ६० बरस की थी। बाद को वह साधु कही चला गया, परन्तु वह उस समय फिर प्रकट हुआ जब टिकैतराय अपने शत्रुओ से बहुतही अधिक पीडित था। उस साधु ने टिकैतराय को ऐसे उपाय बतला दिये जिनसे उसने अपने शत्रुओ को हरा दिया। कहा जाता है कि उसने समाधि ले ली थी अर्थात् अपने आपको जीवित ही जमीन में दफन करवा लिया था। सन् १७८४ में खमरिया परगना के अधिकार के सम्बन्ध मे कबर्धा के उजियारसिंह और सरदारसिंह के बीच झगडा हो गया। टिकैतराय

ने सरदारसिंह को धन-जन दोनो से सहायता दी। उसका फल यह हुआ कि उक्त परगना सरदारसिंह के कब्जे में आगया। परन्तु वह उसके अधिकार में न रह सका। अतएव टिकैतराय ने ऋणशोध के रूप मे उक्त परगने को ले लिया। इस तरह कवर्धा रियासत का एक भाग खैरागढ के राजा के हाथ आगया और इस बात की स्वीकृति नागपुर के राजा से भी मिल गई।

रियासत का कर क्रमश बढता गया था और सन् १८१४-में वह ३५०००) वार्षिक पहुँच गया। सन् १६१६ मे डोंगरगढ का जमींदार नागपुर राजा के विरुद्ध खडा हो गया। नागपुर के राजा ने टिकैतराय को विद्रोह शान्त करने की आज्ञा दी, जिसे उसने नॉदगॉव के राजा की सहायता से दवा दिया। पहले तो उक्त सारी जमींदारी खैरागढ के राजा को सैनिक सेवा के पुरस्कार-स्वरूप प्रदान की गई थी, परन्तु रियासत की इस वृद्धि के कारण उसका वार्षिक कर ४४०००) रुपये कर दिया गया। टिकैतराय की मृत्यु ७५ वरस की उमर में हुई। उसका नाबालिग पुत्र दिग्पालसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसके समय में नॉदगॉव के राजा ने डोंगरगढ जमींदारी के हिस्से के लिए अपना दावा पेश किया। अतएव उक्त जमींदारी उसको आधी बाट मिली। खैरागढ के राजा को उक्त जमींदारी का एक भाग बॉट देना पडा था। फलत उसका वार्षिक कर ६०००) घटा दिया गया। सन् १८२३ में

दिग्पालसिंह मर गया। तब उसके भाई महिपालसिंह ने कुछ महीनों तक शासन किया, परन्तु वह भी मर गया। तब उसका पुत्र लाल फतेहसिंह सिंहासन पर बैठा। सन् १८५४ में जब नागपुर-राज्य अँगरेजी राज्य में मिला लिया गया तब इस राज्य का कर ३६०००) वार्षिक निर्धारित कर दिया गया। सन् १८६५ में यह रियासत सामन्त राज्यों में मान ली गई और राजा को एक सनद दी गई। फलत उसने तत्सम्बन्धी अधीनता की प्रतिज्ञा की। सन् १८६७ में रियासत का कर ४६०००) निर्धारित हुआ। सन् १८८८ में यह कर बढ़ाकर ७००००) कर दिया गया और सन १६०६ में यह कर बढ़ कर ८००००) हो गया, जो ३० वर्ष तक के लिए निर्धारित किया गया था। इस तरह यह मालूम पड़ता है कि इस राज्य का कर निरन्तर बढ़ाया और जाँचा गया है। सन् १८७३ में सरकार ने लाल फतेहसिंह के कुप्रबन्ध के कारण रियासत को अपने प्रबन्ध में कर लिया था। यह प्रबन्ध सन् १८८३ तक जारी रहा। सन् १८७४ में फतेहसिंह की मृत्यु हो गई। सन् १८८३ में उसका ज्येष्ठ पुत्र लाल उमरावसिंह गद्दी पर बिठाया गया। सन् १८८७ में उसे राजा की व्यक्तिगत पदवी प्रदान की गई। वह सन् १८६० के नवम्बर में मर गया और तब उसका पुत्र कमलनारायणसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। सन् १८६६ में इसे भी राजा की व्यक्तिगत पदवी दी गई और दो वर्ष बाद यह पदवी वंशगत कर

दी गई। सन् १६०८ के अक्टूबर में राजा कमलनारायणसिंह मर गया और उसका ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकारी स्वीकार किया गया। किन्तु उसके नाबालिग होने के कारण रियासत का प्रबन्ध सरकार ने फिर अपने हाथों में ले लिया।

इस रियासत के खनिज पदार्थों की पूरी खोज कभी नहीं हुई। बरौरा और गटापानी के जगलों मे कच्चा लोहा पाया जाता है। कलकत्ते की एक भारतीय मगानीज कम्पनी ने तीस साल के लिए कच्चा लोहा निकालने के लिए पट्टा लिखा लिया है। रियासत मे शिक्षा की बहुत उन्नति है। इसमे २५ मदरसे हैं। सन् १८६२ मे एक अँगरेजी मिडिल स्कूल खोला गया था। सन् १६०० में वह हाई-स्कूल के दर्जे के बराबर कर दिया गया। वहाँ दो कन्या पाठशालाएँ भी हैं। रियासत मे दो अस्पताल भी हैं, एक तो खैरागढ मे और दूसरा डोंगरगढ मे।

नवाँ अध्याय

चङ्गभकर

इस रियासत का क्षेत्रफल ६०४ वर्गमील है। सन १९०५ तक यह छोटा नागपुर के अन्तर्गत रही। यह छोटा नागपुर के बिलकुल पश्चिमी सिर पर स्थित है और एक प्रकार से मध्य-भारत के रीवाँ राज्य में घुसती गई है। रीवाँ राज्य इसे उत्तर, पश्चिम और दक्षिण से घेरे हुए है। इसके पूर्व ओर कोरिया-रियासत है। यह रियासत पहले इसी के अधीन थी। इस की राजधानी भरतपुर है, जो बङ्गाल नागपुर-रेलवे के बरहर स्टेशन से ४५ मील है।

यह रियासत टेढ़ी-मेढ़ी पहाड़ियों से व्याप्त है। इसकी भूमि, नालो तथा उच्चसम भूमि के भू भागों से आवृत है। उन पर साल के घने जङ्गल हैं और बीच बीच में छोटे छोटे गाँव आबाद हैं। इस रियासत के प्राकृतिक दृश्यों में कुछ भी अनोखापन नहीं है। बड़ी पहाड़ियों पर पहाड़ियाँ जिनपर साल वृक्षों के घने जङ्गल खड़े हैं, रियासत भर में फैली हुई हैं। यद्यपि बाहरी आक्रमणों से रियासत की रक्षा बहुत कुछ उसकी प्राकृतिक वनावट के कारण होजाती थी, तो भी पहले समय में मरहटों और पिण्डारियो की चढ़ाइयों से इसकी बहुत हानि हुई। इसी कारण इसके राजा को सीमावर्ती आठ गाँव रीवाँ के

प्रभावशाली राजपूतों को इन लुटेरों के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए दे देना पड़ा था। कोरिया-राजघराने से इस रियासत के राजा का सम्बन्ध है। सन् १८१६ में जब पहले पहल कोरिया की रियासत अँगरेज़ी सरकार के अधीन हुई तब उसके सुलहनामे में यह रियासत भी शामिल कर ली गई थी। परन्तु सन १८४८ में इस रियासत के साथ अलग सुलहनामा किया गया। यहाँ के राजा की पदवी भैया है।

सन् १८४८ से नीचे लिखे हुए राजाओं ने इस रियासत का शासन किया —

(१) मानसिंह
(२) जनजीतसिंह
(३) बलभद्रसिंह और
(४) महावीरसिंह

महावीरसिंह सन् १८७६ में पैदा हुआ था। वह अपने चाचा भैया बलभद्रसिंह की मृत्यु के बाद सन् १८६६ के सितम्बर में सिंहासन का उत्तराधिकारी हुआ। वह उस समय नाबालिग था, अतएव उसके नाम से लाल बजरङ्गसिंह नाम का एक व्यक्ति रियासत का प्रबन्ध करता था। परन्तु उसका शासन सन्तोषदायक नहीं था। अतएव सन् १६०० की जुलाई में महावीरसिंह ने अपनी रियासत का भार अपने ऊपर ले लिया। महावीरसिंह का पुत्र लाल जगदीशप्रसादसिंह राज्य का उत्तराधिकारी था। सामन्त राज्य की स्वीकृति-

सम्बन्धी पहली सनद सन् १८९९ में महावीरसिंह को प्रदान की गई थी। बीस वरस के लिए ३२७) वार्षिक कर नियत हो गया। सन् १९०५ मे एक दूसरी सनद प्रदान की गई।

इस रियासत के घाघरा गाव में सीतामढ़ी नाम की एक खोह है। इससे प्राचीन समय की कुछ बातो का पता लग सकता है। रियासत की उत्तरी सीमा के समीप मुवाही नदी पर स्थित हरचोका गाँव मे एक विस्तृत चट्टान के भग्नावशेष हैं। सन १८७०-७१ मे यह पता लगा था कि ये भग्नावशेष उन मन्दिरों और मठों के हैं जो उस चट्टान से तराश कर बनाये गये थे। ये इमारते रियासत के वर्त्तमान निवासियो की अपेक्षा अधिक सभ्य लोगो द्वारा बनाई गई मालूम पडती हैं।

इस रियासत की एक जाति का नाम मुआसी है। ये लोग जङ्गली हैं और द्रविडी मालूम पडते हैं। य लोग चितावर नाम के पौधे की पूजा करते हैं। इस जाति का दूसरा देवता घैसामी है। अनुमान है कि घैसाम एक गोड राजा का नाम था, जिसे उसके विवाह के समय चीते ने खा डाला था।

दसवाँ अध्याय

नाँदगाँव

छत्तीसगढ की रियासतों मे यह सबसे अधिक समुन्नत रियासत है। इसका क्षेत्रफल ५८७१ वर्ग मील है। इस रियासत मे नाँदगाँव और डोंगरगढ नाम के दो परगने हैं। ये खैरागढ के दक्षिण चाँदा और द्रुग जिलों के बीच मे है। परन्तु पण्डादाह, पल्ली और मोहगाँव नाम के तीन इलाके इसके उत्तर मे स्थित हैं। ये इलाके उन दोनों परगनों से अलग हैं, क्योंकि इनके बीच में खैरागढ और छुइखदान के हिस्से तथा द्रुग जिला आ गया है। इसकी राजधानी राज नाँदगाँव है और यह बङ्गाल-नागपुर-रेलवे की एक स्टेशन है। 'नन्द' और 'गाँव' इन दो शब्दों से नाँदगाँव बना है। इसका अर्थ नन्द अर्थात् कृष्ण के पिता का गाँव है। इस रियासत का राजा कृष्णोपासक वैरागी सम्प्रदाय का है, अतएव जब यह रियासत इन लोगो के अधिकार में आई, शायद तभी इसकी राजधानी का नाम नाँदगाव पड़ा। वर्तमान नाँदगाँव-रियासत में चार परगने हैं, जो असल में पहले अलग अलग जमींदारियाँ थीं और वे नागपुर के भोसला राजा के अधीन थीं। अठारहवीं सदी के अन्तिम समय में पञ्जाब के सोहापुर का एक शालदुशाले का प्रह्लाददास नाम

का वैरागी व्यापारी प्राचीन रत्नपुर-राज्य के समय रत्नपुर आया और वहीं बस गया । अपने व्यापार में उसने खूब धन जमा किया । जब वह मर गया तब उसका शिष्य महन्त हरिदास उसकी सारी सम्पत्ति का अधिकारी हुआ । जिस मरहटा सरदार बिम्बाजी के अधिकार में रत्नपुर था, उसके ७ रानियाँ थीं । महन्त हरिदास इन रानियों का दीक्षा-गुरु था । अतएव रत्नपुर राज्य के प्रत्येक गाँव से उसे दो रुपया वसूल कर लेने के लिए आज्ञा मिल गई थी । इसके बाद हरिदास ने लेन देन का व्यवसाय शुरू किया और प्रदादाह के जमींदार की जमींदारी पर अपना रुपया लगाया । उक्त जमींदार कर्जा न भुगता सका । अतएव जमींदारी हरिदास के अधिकार में आगई । हरिदास मर गया और उसका चेला रामदास उसका उत्तराधिकारी हुआ । एक मुसलमान जमींदार का ऋण न भुगतने पर रामदास को नाँदगाँव की जमींदारी भी मिल गई ।

महन्त रामदास की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी महन्त रघुवरदास हुआ । इसके बाद हिमाचलदास गद्दी पर बैठा । यह महन्त बहुत उदार था । अपनी उदारता से इसने राज्य के कोष को ही खर्च कर डाला, इस कारण नागपुर के राजा को राज्य-कर न अदा कर सका । अतएव इसकी जवाबदेही के लिए इसकी तलबी नागपुर को हुई । परन्तु भोंसला राजा इसका गाना सुन कर इतना अधिक खुश हुआ कि उसने इसकी बाकी माफ कर दी । इसके सिवा उसने

मोहगाँव का परगना सन् १८३० में इसे माफी में दे दिया, परन्तु इसका उपभोग करने को यह अधिक दिन तक जीवित न रह सका। इसकी मृत्यु के बाद महन्त मञ्जीराम उत्तराधिकारी हुआ। डोंगरगाँव के जमींदार का विद्रोह महन्त मञ्जीराम दबाया था और इस सेवा के पुरस्कार-स्वरूप इसे डोंगरपुर का परगना मिला। इस तरह उपर्युक्त चार परगने प्राप्त हुए, जिन सब के मिलने से वर्तमान रियासत बनी है। महन्त मञ्जीराम के चेले का नाम घासीदास था। परन्तु उसने एक स्त्री के साथ विवाह कर लिया। जिससे घनराम नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस घराने में विवाह करने का यही पहला उदाहरण है। यह निहङ्ग गद्दी थी और इसके महन्त ब्रह्मचर्य-व्रत रखने को बाध्य थे।

मञ्जीराम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र घनराम गद्दी पर बैठा और उसने तीन बरस तक राज्य किया। घनराम के बाद महन्त घासीदास गद्दी पर बैठे। उनको सन् १८६५ में एक सनद मिली, जिसके अनुसार वे सामन्त राजा माने गये। इस राजा ने विवाह किया। इसके एक पुत्र था। सन् १८७९ में भारत-सरकार ने इसे इस बात की सूचना दी कि इसका पुत्र राज्याधिकारी होगा। घासीदास एक उद्यमी राजा था। उसने दो बाग और महल बनवा कर अपनी राजधानी की उन्नति की। उसने राज-नाँदगाँव में एक अच्छी बाजार खोली। अफगान-युद्ध के समय ११००००) की युद्ध-सामग्री बिना मूल्य लिए सरकार को उसने दी।

सन १८८३ में घासीदास मर गया और उसका नाबालिग पुत्र उसका उत्तराधिकारी हुआ। तब रियासत का प्रबन्ध उसकी माँ को सौंप दिया गया और उसकी सहायता के लिए एक दीवान भी नियुक्त किया गया। सन १८८७ में उस रियासत के राजा को राजा की व्यक्तिगत उपाधि प्रदान की गई। सन १८६१ में राजा बलरामदास गद्दी पर बिठाया गया और जिस दीवान को सरकार ने नियुक्त किया था वह भी अपने पद पर बना रहा। यह राजा भी बहुत उद्यमशील था। इसने एक अँगरेजी मिडिल स्कूल खोला और छात्रवृत्तियाँ देकर शिक्षा के प्रचार को उत्तेजना दी। रायपुर और राज-नाँदगाँव में जल कल का कारखाना खोलने में इसने उदारता के साथ धन दिया। इसने राज-नाँदगाँव में रानीबाग नामक पार्क बनवाई और सूत कातने तथा बुनने का एक पुतलीघर भी वहीं खोला। छत्तीसगढ़ में एक मात्र यही पहला पुतलीघर था। उसकी इन कारगुजारियों के कारण सरकार ने उसे सन १८६३ में राजा बहादुर की व्यक्ति गत पदवी प्रदान की। सन् १८६७ में वह मर गया और उसका पुत्र महन्त राजेन्द्रदास उत्तराधिकारी हुआ। रियासत एक सुपरिटेन्डेन्ट के प्रबन्ध में है जिसे सरकार ने नियुक्त किया है। महन्त राजेन्द्रदास को राजकुमार कालेज रायपुर में शिक्षा मिलती है।

ग्यारहवाँ अध्याय

कवर्धा राज्य

इस रियासत का क्षेत्रफल ७९८ वर्ग मील है। इसके पूर्व मे बालाघाट जिला, पश्चिम में रायपुर तथा बिलासपुर के जिले और उत्तर मे मण्डला का जिला है। कवर्धा कबीर-धाम का अपभ्रंश है अर्थात् कबीरपन्थी सम्प्रदाय के गुरु कबीर का यह स्थान है। इस रियासत का आधे से अधिक भाग जङ्गलों और पहाडियो से व्याप्त है। इसके जिस भाग में मैदान है वह पूर्व ओर है। इस रियासत का सदर स्थान कवर्धा बगाल-नागपुर-रलवे की निकटतम स्टेशन टिल्डा से ५४ मील है।

इस रियासत का वर्तमान राजघराना मण्डला के गोंड-राजघराने से अपनी उत्पत्ति बताता है। इन लोगो का सम्बन्ध बिलासपुर जिले के पण्डरिया के जमींदार-घराने से भी है। ये लोग पण्डरिया-घराने की उपशाखा मे हैं। यदि इस रियासत का राजा सन्तानहीन मरता है, तो पण्डरिया के जमींदार का कनिष्ठ पुत्र इस रियासत का उत्तराधिकारी होता है। असल मे यह रियासत भोंडा के जमींदार-घराने की थी, जो मण्डला के राजा के सामन्त राजा थे। बाद को मण्डला के राजा ने इस रियासत को उस समय के पण्डरिया के जमींदार पृथ्वीसिंह के भाई महाबलीसिंह को युद्ध-सम्बन्धी उन सेवाओ

के बदले में दे दिया था उसने सागर के राजा को पराजित करने में की थी। कहा जाता है कि महाबलीसिंह और भोडा के जमींदार दोनों ने सागर के राजा को पराजित करने में मण्डला के राजा की सहायता की थी, परन्तु जब वे दोनों पुरस्कार लेने के लिए बुलाये गये तब महाबलीसिंह ने भोडा के जमींदार को पिछड़े रहने को बाध्य किया और खुद अकेले मण्डला जा पहुँचा जहाँ उसने यह कहा कि भोडा का राजा भाग गया है और इस तरह उसने स्वयम् अकेले ही रियासत मार ली। इसी सम्बन्ध में एक दूसरा विवरण इस तरह है कि महाबलीसिंह ने नागपुर के भोंसला राजा से युद्ध सम्बन्धी सेवाओं के बदले में इस रियासत को प्राप्त किया है। उसने ५० वर्ष तक शासन किया और तब उसका पुत्र उजियारसिंह उत्तराधिकारी हुआ, जिसने ४६ वर्ष के लगभग शासन किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र तकसिंह उत्तराधिकारी हुआ परन्तु शीघ्रही वह बिना किसी सन्तान के मर गया। तब रियासत का प्रबन्ध तकसिंह की माता तथा उसकी विधवा रानी ने क्रमपूर्वक किया। विधवा रानी की मृत्यु के उपरान्त तकसिंह के भतीजे पण्डरिया के बहादुरसिंह गद्दी पर बैठे। वह भी बिना संतान के मर गया। उसका भतीजा रजपतसिंह उत्तराधिकारी हुआ परन्तु रजपतसिंह के नाबालिग होने से शासन-प्रबन्ध बहादुरसिंह की विधवा रानी करती रही। रजपतसिंह भी सन्तानहीन मर गया तब पण्डरिया का हाल का जमींदार

रजपतसिंह का पुत्र ठाकुर जगन्नाथसिंह उत्तराधिकारी स्वीकृत हुआ। जब ठाकुर जगन्नाथसिंह उत्तराधिकारी माना गया था तब वह केवल छ, वर्ष का था। अतएव अँगरेजी सरकार ने रियासत का प्रबन्ध एक सुपरिन्टेन्डेन्ट के सिपुर्द कर दिया। बालिग होने पर ठाकुर जगन्नाथसिंहको सन् १९०८ में नागपुर के एक दरबार मे गद्दी देने की आज्ञा हुई।

कवर्धा के सदर स्थान से लगभग ११ मील छपरी गाँव मे भोरमदेव का एक मन्दिर है। मन्दिर के भीतरी भाग में बहुत सुन्दर चित्रकारी है। उसमे कई एक उत्कीर्ण लेख भी हैं। उनमे ११ वीं सदी की घटनाएँ उत्कीर्ण हैं। उसी मन्दिर के लक्ष्मी-नारायण की मूर्ति के सिंहासन पर मकरध्वज योगी का नाम खुदा है। मॉडवा के महल मे एक लेख सस्कृत मे उत्कीर्ण है। इसमे नागवंशी राजाओ की उत्पत्ति तथा उनके वंश के कुछ राजाओ की नामावली उत्कीर्ण है।

कबीर पन्थ—कबीर पन्थ के सदर स्थानो में एक स्थान कवर्धा भी है। दूसरा स्थान बनारस है परन्तु ये दोनों एक दूसरे से कार्यत स्वतन्त्र मालूम होते हैं। इस सम्प्रदाय की बनारसवाली शाखा बाप के नाम से प्रसिद्ध है और कवर्धा-वाली शाखा माई के नाम से। कबीर या तो सन् १४४० मे या १४४८ में उत्पन्न हुआ था। वह जुलाहे के खानदान मे पाला पोसा गया था। उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अगणित कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा इस तरह है। वह एक ब्राह्मण

जाति की बालविधवा से उत्पन्न हुआ था। एक दिन उक्त विधवा प्रसिद्ध धर्मोपदेशक रामानन्द के दर्शनों को गई थी। रामानन्द ने उस बालविधवा को आशीर्वाद दिया कि उसके एक पुत्र होगा। महात्मा की बात असत्य नहीं हो सकती, अतएव उस विधवा को गर्भ रह गया और उसके एक बच्चा उत्पन्न हुआ। परन्तु कलङ्क से बचने के लिए उसने बच्चे को फेंक दिया, जिसे एक जुलाहे की स्त्री ने पाया और वह उसे अपने घर उठा ले गई। एक दूसरी कथा इस तरह है कि भगवान ने बिना जन्म लिए ही मनुष्य का रूप धारण किया, जिसे एक नव-विवाहिता जुलाहे की स्त्री ने एक तालाब में एक कमल के फूल पर खेलते हुए पाया था। कहा जाता है कि कबीर रामानन्द का चेला हो गया था, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। रामानन्द तो उसके जन्म के पहले ही मर चुका था। कबीर का मत उच्च ढङ्ग का था। उसने वेदों को ईश्वरकृत होना नहीं माना और हिन्दू-देव-देवियों की पूजा की निन्दा की। उसने जाति भेद भी दूर किया। वह सदाचार से रहता था और उसका जीवन नैतिक तथा शुद्ध था। उसके नये मत के कारण मुसलमान और हिन्दू दोनों से उसकी शत्रुता हो गई थी। अतएव उसकी शिकायत सम्राट् सिकन्दर लोदी से की गई। कहा जाता है कि सम्राट् की आज्ञा से उसको मार डालने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, परन्तु वह विलक्षणता के साथ बार बार बच जाता था।

अन्त में सम्राट् ने उसकी दैवी शक्ति को स्वीकार किया और उससे क्षमा माँगी । कबीर ने अपने तथा अपने मत के सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं लिखा । उसने बहु सङ्ख्यक साखियाँ कही हैं, जिनको उसके शिष्यों ने बीजक सुखनिधान तथा दूसरी पुस्तकों में लिख लिया है । नानकपन्थी और दादूपन्थी शिक्षाओं में कबीर के सिद्धान्त भरे हुए हैं । सब विवरण इस बात में एक मत हैं कि कबीर गोरखपुर जिले के मघर में मरे थे । उसकी लाश को यथा स्थान करने के लिए कठिनाई उठ खड़ी हुई । मुसलमान उसे गाड़ना चाहते थे और हिन्दू उसे जलाना चाहते थे । कहा जाता है कि जब दोनों पक्ष इस प्रश्न का निर्णय कर रहे थे तब कबीर स्वयम् आ उपस्थित हुआ और उन लोगों से उस कपड़े को उठाने को कहा जिसमें लाश लपेटी हुई थी । उन्होंने वही किया जो उन्हें आज्ञा दी गई थी और आश्चर्य की बात यह हुई कि उसके नीचे केवल फूलों का एक ढेर ही मिला । उनमें से आधे फूल हिन्दुओं ने ले लिया और उन्हें ले जाकर बनारस में जलाया । अवशिष्ट आधे फूलों को मुसलमानों ने मघर में दफन किया ।

बारहवाँ अध्याय

सारङ्गगढ

सारङ्गगढ एक महत्वपूर्ण रियासत है। इसका क्षेत्रफल ५४० वर्गमील है। इस रियासत का सदर स्थान सारङ्गगढ बँगाल नागपुर रेलवे की रायगढ स्टेशन से ३२ मील है। इसके उत्तर मे महानदी और चन्द्रपुर की जमींदारी है, दक्षिण मे फुलझर की जमींदारी पूर्व मे सम्भलपुर जिले की बरगढ की तहसील और पश्चिम में रायपुर जिले की भटगढ तथा बिलाईगढ की जमींदारियाँ हैं। इसके नाम का अर्थ बाँस का किला है। सारङ्ग का अर्थ बाँस और गढ का किला है। इस रियासत का राजघराना राजगोंड जाति का है। कहा जाता है कि य लोग भण्डारा जिले के लञ्जी से निकल कर वहाँ गये हैं। सारङ्गगढ उस सेवा के बदले मे रतपुर-राज्य का एक अधीनस्थ राज्य हो गया था जो उसने रघुजी भोसला को उस समय दी थी जब वे कटक जा रहे थे और उन पर सिङ्गोरा घाटी मे फुलझरवालों ने चढाई की थी। इसके बाद सम्भलपुर के अधीन गरहट की अठारह रियासतो मे एक यह भी परिणत हो गई। सारङ्गगट के राजा कल्यानसई को मरहठो ने राजा माना।

२०

इस घराने के राजाओं की सूची तथा उनके शासन का समय इस तरह है—

१ नरेन्द्रसई
२ वरहमीर (पुत्र)
३ वरवरसई (पुत्र)
४ धर्म्म (पुत्र)
५ उदयभान (पुत्र)
६. वीरभान (पुत्र)
७ उधोसई (पुत्र)
८ कल्यानसई (पुत्र) १७३६–१७७७
९ विश्वनाथसई (पुत्र) १७७८–१८०८
१० सुभद्रसई (पुत्र) १८०९–१८१५
११ भीखमसई (पुत्र) १८१६–१८२७
१२ टीकमसई (भाई) १८२८
१३ गजराजसिंह (सुभद्रसई का भाई) १८२९
१४ संग्रामसिंह (पुत्र) १८३०–१८७२
१५ भवानीप्रतापसिंह (पुत्र) १८७३–१८८८
१६. रघुवीरसिंह (संग्रामसिंह का भतीजा) १८८९–१८९०
१७. राजा जवाहिरसिंह

कल्यानसई सन् १७७७ में मर गया और उसका पुत्र विश्वनाथसई उसका उत्तराधिकारी हुआ। विश्वनाथसई वीर और दयालु शासक था। सन् १७७८ में अलेक्ज़ेन्डर इलिअट

को बङ्गाल सरकार ने एक महत्वपूर्ण मामले के सम्बन्ध में नागपुर के राजा के पास भेजा था। जब वह छत्तीसगढ़ की रियासतों से होकर यात्रा कर रहा था तब ज्वर रोग से सन् १७७८ की १२ वीं सितम्बर में वह मर गया। पड़ोस के राजा ने लाश दफन करने के लिए भूमि देने से इन्कार कर दिया, परन्तु विश्वनाथसई ने कब्र के लिए भूमि देना स्वीकार कर लिया और इलिअट की लाश मालेर में दफन की गई। वह कब्र आज भी अस्तित्व में है और ब्रिटिश सरकार के खर्च से उसकी मरम्मत होती रहती है। इस दयापूर्ण कार्य के लिए सारङ्गगढ़ के राजा को एक हाथी और खिलअत दी गई। सन् १७८१ में विश्वनाथसई को एक सनद मिली। उसके अनुसार उसे उन युद्ध-सम्बन्धी सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप ५४ गावों का मरिया परगना मिला जो उसने सम्भलपुर के राजा जैतसिंह की की थी। युद्ध-सम्बन्धी सेवाओं के उपलक्ष में नागपुर के नानासाहब ने भी उसे एक हाथी, ज़ीन से सजा घोड़ा, नगाड़ा और गदा प्रदान किया था। वह सन् १८०८ में मर गया और उसका पुत्र सुभद्रसई उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने केवल सात वर्ष तक शासन किया। उसके बाद भीखमसई और टीकमसई नाम के उसके दो पुत्रों ने क्रमपूर्वक कुछ समय तक शासन किया। उनका चाचा गजराजसिंह सन् १८२६ में गद्दी पर बैठा। परन्तु वह केवल एक वर्ष राज्य कर के मर गया। उसके पुत्र संग्रामसिंह ने ४२ वर्ष के लगभग राज्य किया। यही पहला राजा था

जिसे अँगरेज़ सरकार ने अपना सामन्त राजा माना। इसे सन् १८६५ में गोद लेने वाली सनद मिली और सन् १८६७ मे वह सनद इसे मिली जिसके अनुसार उसका मर्तबा सामन्त राजा के रूप मे निर्धारित हुआ। सन १८७२ में राजा सग्रामसिंह मर गया। इसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र भवानीप्रतापसिंह सिंहासन पर बैठा। उसकी उम्र केवल १० वर्ष की थी। अतएव रियासत का प्रबन्ध उसकी माता और उसके भतीजे लाल रघुवीरसिंह ने किया। इस समय रियासत के प्रबन्ध मे बहुत वदइन्तिजामी हो गई, अतएव उसका प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया। सन् १८८५ में राजा भवानीप्रतापसिंह ने अपनी रियासत का प्रबन्ध करने के लिए पूर्ण अधिकार पाने की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना अस्वीकृत हुई, क्योकि इस बात की रिपोर्ट हुई थी कि वह अयोग्य है। सन् १८८९ मे राजा भवानीप्रतापसिंह मर गया। राजा जवाहिरसिंह का पिता रघुवीरसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। सन १९०९ मे राजा जवाहिरसिंह सामन्त राजा के रूप मे गद्दी पर विठाया गया।

इस रियासत मे कुछ प्राचीन मन्दिर हैं। इनसे पुरातत्व सम्वन्धी बातो का पता लगता है। पुजरीपली में महा पार्वती का एक मन्दिर है। उसी गाँव मे केवटिन का एक दूसरा मन्दिर है। ये दोनो मन्दिर पुरातन स्थापत्य विद्या के मनोहर नमूने हैं। इस रियासत के राजा के पास शरभपुरी राजाओ का एक ताम्रपत्र है। ये राजा शवर की उत्पत्ति के थे। इस रिया-

सत में आज भी शवर है। वे लरिया और उरिया नाम के दो भागों में बटे हैं। वे लोग मूल निवासी जाति के है। इनके सम्बन्ध में विभिन्न सस्कृत ग्रन्थों में उल्लेख हुआ है। हमने उपोद्घात में लिखा है कि सस्कृत-साहित्य में गोडों की गणना अनार्यों में नहीं है, किन्तु शवरों की है। इस रियासत में मूल निवासी जाति की अपेक्षा शवर बहुत अधिक हैं। हमने पहले ही लिखा है कि शवर राजाओ के एक घराने ने प्राचीन समय मे छत्तीसगढ पर शासन किया था। सम्भलपुर सम्भवत शवरपुर का अपभ्रंश है। निस्सन्देह यह नाम शवर स ही निकला है।

खोंड लोगो का नर-यज्ञ—सारङ्गगढ रियासत, रायपुर जिले, सम्भलपुर और पटना तथा कालाहण्डी की रियासतों मे (पहले मध्यप्रदेश मे थीं, पर अब विहार और उडीसा मे हैं) खोंड नाम से प्रसिद्ध एक द्रविडी जाति है। खोंड शब्द की उत्पत्ति को या कू से है। तेलुगू भाषा मे यह शब्द पर्वतवाचक है। खोंड लोग अपने आपको कुईलोक या कुइञ्ज् के नाम से पुकारते हैं। (सम्भवत गोंड शब्द की उत्पत्ति खोंड शब्द मे है।) य जातियाँ तारीपेन्नू या वेरीपेन्नू के नाम से प्रसिद्ध अपनी देवी के सामने नरवलि नियम के साथ चढाती थीं। देवी को केवल वही वलि या मेरिअह स्वीकृत होती थी जो या तो मोल का होता था या जन्म मे ही वलि होता था अर्थात् वलि किये गये का पुत्र या अपने पिता या सरक्षक द्वारा वह लडका पहले से देवार्पित होता था। इनके जातिगत यज्ञों के

करने की विधि इस प्रकार थी—यज्ञ के दस या बारह दिन पहले बलि का मुण्डन होता था। इसके पूर्व उसके बाल नहीं बनाये जाते थे। झुण्ड के झुण्ड स्त्री और पुरुष यज्ञ देखने को एकत्र होते थे। कोई भी अनुपस्थित नहीं रहता था। क्योंकि यज्ञ सारी मानव-जाति के लिए किया जाता था। इसके पहले कई दिन तक खूब नाच-गाना तथा भोग-विलास होता था। यज्ञ के एक दिन पहले लोग मेरिअह भूमि पर गाते और बलि को नाचते हुए ले जाते थे। वे उसे एक खम्भे से बाँध देते थे और तेल, घी तथा हल्दी से उसका अभिषेक करते थे और उसे फूलों से विभूषित करते थे। वह किसी तरह का बल प्रयोग न करे, इसलिए कभी कभी उसकी हड्डियाँ तोड दी जाती थीं। उसे मार डालने की साधारण विधियों में से एक यह थी कि वह दम घोंट कर या गला दबा कर मार डाला जाता था। एक हरे पेड की शाखा में मध्य से कई फुट नीचे की ओर एक छेद किया जाता था। उसी छेद में बलि की पीठ घुसेड दी जाती थी। पुरोहित अपने सहकारियों की सहायता से अपना सारा बल लगा कर बलि को उस छिद्र में घुसेडने की चेष्टा करता था। तब वह अपने फरसे से बलि को थोडा सा घायल करता था। इस पर उस अभागे बलि पर भीड टूट पड़ती थी और उसकी हड्डियों से माँस काट लेती थी। कभी कभी वह जीवित ही काट लिया जाता था।

यज्ञ की एक दूसरी बहुत साधारण विधि यह थी कि बलि

समीप था। तुलसीदास की मृत्यु के उपरान्त लछमनदास गद्दी पर बैठा। अँगरेज सरकार ने उसे अपना सामन्त राजा माना और सन् १८६५ में गोद लेनेवाली सनद उसे मिली। इस रियासत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक और दूसरी कथा है। इसके अनुसार रूपदास उदयपुर के महाराज का निकट सम्बन्धी बताया जाता है। वह वैरागी हो गया था और पारिवारिक कलह के कारण उसने अपना कुटुम्ब परित्याग कर दिया था। वह पानीपत में जा बसा, उसने अनेक शिष्यों को जमा किया और वह बहुत से घोड़े खरीदकर उन्हें बेचने के लिए नागपुर के भोंसला राजा के पास लाया। राजा ने घोड़े खरीद लिए और उसे अपने घुड़सवार सेना में सरदार बनाकर रख लिया। इस बात की इत्तला हुई कि कोंडका का जमींदार नागपुर के राजा के विरुद्ध विद्रोह करने का मसूबा गाँठ रहा है। उस विद्रोह का दमन करने को रूपदास भेजा गया। उसने कोंडका के जमींदार को मार डाला, अतएव नागपुर के राजा ने उसे वह जमींदारी पुरस्कार में देदी।

सन् १८६७ में श्यामकिशोरदास गद्दी पर बैठा। उसका शासन अन्यायपूर्ण और कठोर था। अतएव सरकार को पोलिटिकल एजेन्ट की सूचनाओं के अनुसार कुछ सुधार करने के लिए एक दीवान नियुक्त करना पड़ा। सन् १८९८ में श्यामकिशोरदास मर गया और उसका पुत्र राधावल्लभकिशोरदास उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु राधावल्लभ और उसके एक पुत्र को दो वर्ष

तेरहवाँ अध्याय

छुइखदान

छुइखदान की रियासत के उत्तर मे लोहरा तथा सिलहेटी की जमींदारियाँ और खैरागढ की रियासत, पश्चिम मे सिलहेटा जमींदारी, खैरागढ तथा नॉदगॉव तथा ठाकुर टोला की जमींदारी, दक्षिण मे परपोटी की जमींदारी तथा खैरागढ और पूर्व मे नॉदगाँव की रियासत है। छुइखदान नाम की उत्पत्ति छुइ की खदान से है। इसका क्षेत्रफल १५४ वर्गमील है। परम्परागत कथा के अनुसार इस राजघराने का सस्थापक महन्त रूपदास था। असल में उसने कोडका नाम का एक छोटा इलाका अठारहवीं सदी के मध्य-भाग के लगभग रेहन मे पाया था। परन्तु यह बात उन दोनों परिवारो के बीच शत्रुता का कारण होगई और महन्त रूपदास के उत्तराधिकारी ब्रह्मदास ने उस जमींदार को मार डाला। परन्तु उस जमींदार के पुत्र ने ब्रह्मदास को मार कर अपना बदला ले लिया। इसके बाद ब्रह्मदास के पुत्र तथा उत्तराधिकारी तुलसीदास गद्दी पर बैठा। वह नागपुर के भोसला राजा की शरण गया, जिसने उसे सन् १७८० मे नियमानुसार जमींदारी के अधिकार प्रदान कर दिये। अब तुलसीदास कोंडका से अपना सदर छुइखदान ले आया, क्योंकि कोंडका परपोटी के बहुत ही

समीप था। तुलसीदास की मृत्यु के उपरान्त लछमनदास गद्दी पर बैठा। अँगरेज सरकार ने उसे अपना सामन्त राजा माना और सन् १८६५ में गोद लेनेवाली सनद उसे मिली। इस रियासत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक और दूसरी कथा है। इसके अनुसार रूपदास उदयपुर के महाराज का निकट सम्बन्धी बताया जाता है। वह वैरागी हो गया था और पारिवारिक कलह के कारण उसने अपना कुटुम्ब परित्याग कर दिया था। वह पानीपत में जा बसा, उसने अनेक शिष्यों को जमा किया और वह बहुत से घोड़े खरीदकर उन्हें बेचने के लिए नागपुर के भोंसला राजा के पास लाया। राजा ने घोड़े खरीद लिए और उसे अपने घुड़सवार सेना में सरदार बनाकर रख लिया। इस बात की इत्तला हुई कि कोंडका का जमींदार नागपुर के राजा के विरुद्ध विद्रोह करने का मसूबा गाँठ रहा है। उस विद्रोह का दमन करने को रूपदास भेजा गया। उसने कोंडका के जमींदार को मार डाला, अतएव नागपुर के राजा ने उसे वह जमींदारी पुरस्कार में दे दी।

सन् १८६७ में श्यामकिशोरदास गद्दी पर बैठा। उसका शासन अन्यायपूर्ण और कठोर था। अतएव सरकार को पोलिटिकल एजेन्ट की सूचनाओं के अनुसार कुछ सुधार करने के लिए एक दीवान नियुक्त करना पड़ा। सन् १८९६ में श्यामकिशोरदास मर गया और उसका पुत्र राधावल्लभकिशोरदास उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु राधावल्लभ और उसके एक पुत्र को दो वर्ष

बाद किसी सम्बन्धी ने सङ्खिया खिला कर मार डाला। अपराधी तथा उसके खिलानेवाले पर एक विशेष अदालत में मुकदमा चला और वे अपराधी प्रमाणित हुए। उन्हें फाँसी दी गई। इसके बाद राधावल्लभ का ज्येष्ठ पुत्र दिग्विजयकिशोरदास गद्दी पर बैठा। इसकी उम्र १५ वर्ष की थी, अतएव इसकी नाबालिगी में रियासत का प्रबन्ध करने को सरकार ने एक सुपरिंटेन्डेन्ट नियुक्त कर दिया। सन् १९०३ में दिग्विजय, जो बहुत ही निर्बल था, मर गया और उसका छोटा भाई महन्त भूधरकिशोरदास उत्तराधिकारी हुआ। इस राजा को रायपुर के राजकुमार कालेज में शिक्षा मिली है।

चौदहवाँ अध्याय

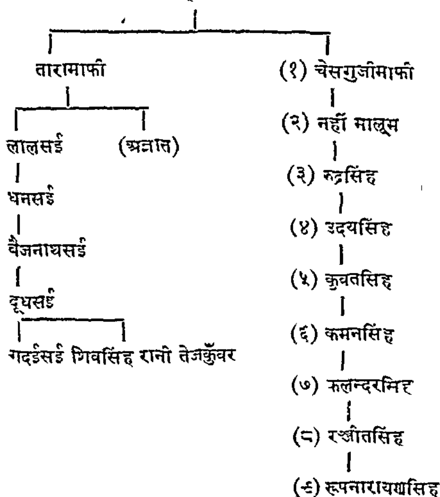
सक्ती

छत्तीसगढ की रियासतों में सक्ती सब से छोटी है। इसका क्षेत्रफल १३८ वर्गमील है। इसके उत्तर, दक्षिण, और पश्चिम मे विलासपुर जिला और पूर्व ओर रायपुर जिला है। शक्ति का अर्थ बल है। इसकी परम्परागत कथा इस तरह है। एक बार राजा का एक सर्वप्रथम पूर्व-पुरुष जगल मे शिकार खेलने गया था। उसने देखा कि एक हिरन उसके एक कुत्ते का पीछा कर रहा है। इस बात से उसे यह विश्वास हुआ कि उक्त भूमि शक्ति की भूमि है। अतएव उसने उसका नाम शक्ति रख दिया। रियासत का सदर सक्ती कस्बा है।

सक्ती कस्बे से १४ मील दूर गुञ्जी नाम के एक गाँव मे एक कुण्ड के समीप चट्टान पर एक विचित्र शिलालेख है। मिस्टर हीरालाल के मत से वह शिलालेख पाली अक्षरों मे उत्कीर्ण किया गया मालूम पडता है और उसकी तिथि पहली सदी है।

परम्परागत कथा के अनुसार वर्तमान राजघराने के

पूर्व पुरुष, जिनकी जाति राजगोड है, दो जोडिया भाई हरि और गूजर नाम के थे ; वे दोनो सम्भलपुर के राजा कल्याणसिंह के सैनिक थे। उनकी तलवारें काठ की थी। इस बात को जानकर राजा ने उन्हे बुलाया और उन तलवारों को देखने के विचार से उसने उन्हे उस भैंसा को मारने की आज्ञा दी जो दशहरा के दिन देवी के सामने बलि दिये जाने को था। दोनों भाइयो को बडी चिन्ता हुई और उन्होंने देवी से प्रार्थना की। स्वप्न मे देवी उनके पास आई और उन्हे विश्वास दिलाया कि सब अच्छा ही होगा। जब समय आ पहुँचा तब उन्होंने अपनी काठ की तलवारों का वार किया और भैंसे का सिर अलग होगया। राजा इस कौतुकपूर्ण कार्य से बहुत खुश हुआ और उन्हे जो इच्छा हो माँगने की आज्ञा दी। उन्होंने कहा कि हमको उतनी भूमि दी जाय जितनी हम एक दिन मे चल कर घेर सकें। प्रार्थना स्वीकृत हुई। राजा ने समझा था कि इस तरह से केवल थोडी ही भूमि वे पा सकेंगे। परन्तु जितना चक्कर वे लगा सके उसके भीतर वर्तमान सक्ती की रियासत का रकबा आ गया। वे तलवारें इस राजघराने के पास आज दिन भी हैं और प्रति दशहरा को उनकी पूजा होती है। इस घराने का वंशवृत्त आगे दिया जाता है—



हरि और गूजर से उत्पन्न इस घराने की बड़ी शाखा की समाप्ति शिवसिंह से हो गई, जो कि सन्तानहीन मर गया था। उसकी विधवा रानी तेजकुवर ने कलन्दरसिंह को गोद लिया। कलन्दरसिंह को ब्रिटिश सरकार ने सामन्त राजा के रूप में स्वीकार किया। कलन्दरसिंह की मृत्यु के बाद उसका

पुत्र रञ्जीतसिंह उत्तराधिकारी हुआ। उसका शासन अन्याय-पूर्ण और कठोर था। अतएव सन् १८७५ में उसके अधिकार छीन लिये गये और ब्रिटिश सरकार ने रियासत का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। सन् १८६२ में पदच्युत राजा के ज्येष्ठ पुत्र रूपनारायणसिंह को सख्ती की राजगद्दी दी गई। उसने ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त दीवान की निगरानी में शासन करना स्वीकार कर लिया। बाद को यह रुकावट दूर कर दी गई। पर सन् १९०२ में यह आज्ञा फिर कर दी गई।



पंद्रहवाँ अध्याय

मकराई

केवल एक यही रियासत इस प्रान्त मे है, जो छत्तीसगढ कमिश्नरी के बाहर है। यह होशङ्गाबाद जिले की हरदा तहसील के अन्तर्गत है। इसका क्षेत्रफल १५५ वर्ग मील है। इसमे कुछ सम्पन्न गॉव हैं। रियासत का सदर स्थान मकराई है, जो भारङ्गी स्टेशन से १५ मील और हरदा से १९ मील है। इसका राजघराना राजगोंड जाति का है। वे लोग अपने को बहुत प्राचीन समय के बतलाते हैं, परन्तु इस बात की पुष्टि के लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। सेन्धिया और पेशवा ने उसकी रियासत का एक भाग अर्थात् कलीलातिव और चरवा ले लिया था। वर्तमान शासक राजा लचूशाह उपनाम भरतशाह सन् १८४६ मे उत्पन्न हुआ था। सन् १८६६ मे वह गद्दी पर बैठा था। कहा जाता है कि सन् १८९० मे कुप्रबन्ध के कारण रियासत को ब्रिटिश सरकार ने अपने प्रबन्ध में कर लिया था। सन् १८९३ मे इस बात के स्वीकार करने पर कि वह उसी आदमी को दीवान बनावेगा जिसे चीफ कमिश्नर मनोनीत करेंगे, वह फिर गद्दी पर बिठाया गया। इस

रियासत में गोंड और कोरकू लोग बहुत अधिक बसते हैं। इस रियासत से ब्रिटिश सरकार को किसी प्रकार का कर नहीं मिलता है।

❀ इति ❀